उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के वाग्गेयका
तथा इनका योगदान

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल (संगीत)

उपाधी हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोध निर्देशिका

डा० गीता बनर्जी

पूर्व अध्यक्षा

मगीत एव प्रदर्शन कला विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्री

सुस्मिता देब

संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
सन् 2001

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री सुस्मिता देव ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से डी.फिल (संगीत) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध कार्य " उत्तर **भारतीय शास्त्रीय संगीत** के **वाग्गेयकार तथा इनका योगदान** " मेरे निर्देशन में स्वयं संपन्न किया है। प्रस्तुत शोध सामग्री पूर्णत मौलिक एवं शोध-परक है। साथ ही इन्होने विश्वविद्यालय के नियमानुसार निर्धारित उपस्थिति भी पूर्ण की है।

अत: मैं इस शोध प्रबन्ध को परीक्षण हेतु प्रेषित करने की संस्तुति करती हूँ।

शोध निर्देशिका

गीता बनर्जी

दिनांक :- 18. 6. 2001

(डॉ गीता बनर्जी)
पूर्व विभागाध्यक्ष
संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

विषयानुक्रमणिका

द्वितीय अध्याय

1. **शास्त्रीय संगीत -**

अर्थ एव परिभाषा, शास्त्रीय सगीत एव लोकरजन, शास्त्रीय सगीत की व्याप्ति शास्त्रीय सागीतिक परम्परा एव विकास, शास्त्रीय सगीत के गुण वर्तमान स्थिति।

2. **संगीत के तत्व .-**

स्वरोत्पत्ति एव परिभाषा श्रुति एव स्वर मे सम्बन्ध, स्वर भेद विवेचन एव महत्व, राग का उद्भव स्वरूप व विकास, राग और भाव, रागों मे ध्यान की परपरा एव रसमयता, ताल-विवेचन-अर्थ एवं व्युत्पत्ति, ताल-भेद, ताल का महत्व, सगीत मे लय की स्थिति-विवेचन, लय के भेद, लय एव रस मे सम्बन्ध।

3. **सगीत की महत्ता -**

जीवन और शास्त्रीय सगीत, आनद का स्रोत शास्त्रीय सगीत, स्थायी प्रभाव का सर्जक शास्त्रीय सगीत के विभिन्न तत्वों का महत्व, शास्त्रीय सगीत मे लय एव ताल का महत्व, विभिन्न कालों मे शास्त्रीय सगीत की स्थिति-महत्ता, शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता एक विवेचन, सम्मेलन शास्त्रीय सगीत की महत्ता के परिचायक।

4. **शास्त्रीय एव प्रयोगात्मक संगीत का सम्बन्ध -**

शास्त्रीय सैद्धांतिक सगीत, व्यावहारिक या प्रयोगात्मक पक्ष, शास्त्रीय सगीत के प्रमुख तत्वों का उभयपक्षीय विवेचन नादवैशिष्टय, थाट, आलाप परिचय, कुछ तालों का प्रयोगात्मक विवरण, कतिपय रागों का प्रयोगात्मक विवरण, तबले का शास्त्रीय व प्रयोगात्मक परिचय निष्कर्ष।

5. **संगीत एवं शास्त्रीय संगीत में भेद :-**

तात्पर्य-बोध, सगीत का ध्येय, लोक सगीत एव शास्त्रीय सगीत मे भेद, भाव सगीत एव प्रकार, चित्रपट सगीत एवं शास्त्रीय सगीत, दोनों मे कुछ तत्वों की आवश्यकता, सगीत मे स्वर एव ताल पद्धति, निष्कष

तृतीय अध्याय

1. **शास्त्रीय संगीत के वाग्गेयकार**

2. **वाग्गेपकार की परिभाषा.**

3. **वाग्गेपकार के गुण - वाग्गेपकार के दायित्व**

4. **सगीत मे स्वर और शब्द का सम्बन्ध -**

स्वर स्थापन की प्रणाली और पारिभाषिक - शब्द, अश, स्वर अथवा स्थायी (आधार) स्वर, मूर्च्छना प्रसग मे 'मध्यम स्वर', ठाठ की प्राप्ति - द्विविध तानों का प्रयोग, कष्ठय वश विवेचन, 'कामचार' भरत द्वारा कथनित सप्तराग, ग्रामो की उत्पत्ति।

5. **संगीत में काव्य का स्थान -**

सगीन मे काव्य और रस की भूमिका, साहित्य की स्वतत्र मत्ता, काव्य एव सगीत, आरोह-अवरोह की विभिन्नता, आनदानुभूति पुरुषार्थ चतुष्टय और सगीत, ध्रुवपद मे काव्य साहित्य - संक्षिप्त विवेचन।

6. **वाग्गेयकारों की रचना -**

प्राचीन कालीन रचनाएँ देशी मगीताचार्यों की रचनाए, कतिपय मध्य एव आधुनिक रचनाओं का परिचय।

चतुर्थ अध्याय

1 शास्त्रीय संगीत के प्रसिद्ध वाग्गेयकार एवं उनकी जीवनी-

वांग्गेयकार - एक परिचय -

आचार्य भरत, मतंग, अभिनवगुप्त, संगीतज्ञ जयदेव, शारंगदेव, अहोवल, व्यंकटमुखी, स्वामी हरिदास प0 विष्णुनाराण भातखंडे, प0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, तानसेन, बैजूबावरा, ओंकारनाथ ठाकुर, अमीरखुसरो, अल्लादिया खाँ उस्ताद अमीर खाँ, कुमार गन्धर्व, प0 कृष्णशंकर राव, फैयाज खाँ, रामदास, रामामात्य, हृदयनारायण देव, मानसिंह तोमर, सुरेन्द्र मोहन ठाकुर, रामचतुर मलिक, ए0 कानन, केसरबाई केरकर, बडे गुलाम अली खाँ, अब्दुल करीम खाँ, डी0बी0 पलुस्कर निसार हुसैन खाँ, पंडित नारायण राव व्यास, नसीर मुइनुददीन डागर, भास्कर बुआ बखले, भोला नाथ भट्ट, राजा भैया 'पूंछ वाले', विनायक राव पटवर्धन, विलायत हुसैन खाँ, ए0बी0 कशालकर, बासवराज राजगुरू, वामननारायण ठकार, शंकर राव पंडित, श्रीकृष्ण नारायण रातन्जनकर, सवाई गन्धर्व, सिद्धेश्वरी देवी, हीराबाई बडौदेकर, हस्सूहददू खाँ, सदारंग अदारंग,

2. ध्रुपद शैली के वाग्गेयकार

3. ख्याल शैली के वाग्गेयकार

4. ठुमरी शैली के वाग्गेयकार

5. टप्पा शैली के वाग्गेयकार

पंचम अध्याय

1- वाग्गेयकारों की रचनाए

2- ध्रुपद शैली की रचनाए

3- ख्याल शैली की रचनाए

4- ठुमरो शैली की रचनाए

5- टघा शैली की रचनाए

षष्टम् अध्याय

1 प्राचीन वाग्गेयकार और उनकी रचनाएँ -

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आर्यऋषि चारो वेद, पौराणिक रचनाएँ, महाकाव्य, उदयन, भास, पतजलि, अश्वघोष, भरत का नाट्यशास्त्र, समुद्रगुप्त, कालीदास, विशाखदत्त, भरतपुत्र दत्तिल का दत्तिलम, बाणभट्ट, पचतत्र, हर्षवर्धन, मतग, नारदीय शिक्षा, सगीत मकरद, भवभूति, अभिनवगुप्त का अभिनवभारती, सुधाकलश की रचना सगीतोपनिषत्, सार जयदेव का गीतगाविन्द, शार्दूल का हस्ताभिनय।

2. मध्यकालीन वाग्गेयकार और उनकी रचनाएँ -

भूमिका अमीरखुसरो, गोपालनायक 'सगीतरत्नाकर' शारगदेव, लोचन की 'रागतरंगिणी', बाबर कालीन शाहकुली और गुलामसदी, प0 कल्लिनाथ की टीका, जोनपुर के शर्की, श्री रागामात्य का स्वरमेलकलानिधि, तानसेन, (सगीत सार, रागमाला, गणेश स्रोत), एव अन्य वाग्येयकार, सगीतज्ञ भक्त सूरदास, का सूरसागर, मीराबाई, तुलसीदास एक वाग्गेयकार के रूप मे, पुण्डरीक विट्ठल, सद्राग चन्द्रोक्य, रागमजरी, नर्तननिर्णय, सोमनाथ का रागविवोध, प0 दामोदर का सगीत दर्पण, प0 अहोबल का सगीत पारिजता, प0 हृदयनारायण का हृदय कौतुक, हृदय प्रकाश भावभट्ट का 'अनूपविलास', अनूप सगीत रत्नाकर, अनूपाकुश, व्यकटमुखी - 'चतुर्दण्डप्रकाशिका - प0 श्रीनिवास जी की रचना रागतत्वविवोध।

3. आधुनिक वाग्गेयकारर तथा उनकी रचनाएँ -

सदारग-अदारग, गुलामनवी शोरी, उसूलउलनगमान उल आसाफिया, नववाब वाजिद अली शाह, 'अख्तर' मुहम्मदरजा, - 'नगमाते-आसादी' राजाप्रतापसिह-सगीतसार, कृष्णानद व्यास-रागकल्पद्रुम, सुरेन्द्रमोहन यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्यूजिक, कृष्णधन बनर्जी-सूत्रसागर, प0 विष्णुनारायण भातखण्डे, स्वरमालिका, हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति, लक्षणगीत सग्रह

आदि प0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, सगीतबालबोध, रागप्रवेश इत्या"र, प0 बालकृष्ण बुआ, राजानवाब अली, 'मुआरिफुन्नगमात', मिस्टर डेवेशू, श्री कृष्णशतजनकर, आचार्यवृहस्पति, सगीतचिन्तामणि, भरत का सगीत सिद्धान्त, प0 आकारनाथ ठाकुर - सगीताञ्जलि, प्रणवभारती आदि अब्लकरीम खाँ, सुमतिमुटाटकर - भारतीय सगीत के सास्कृतिक दृष्टिकोण, विनायकराव पटवर्धन - 'रागविज्ञान', प0 रामाश्रय झा, अभिनव सगीताजलि, डा0 गीता बनर्जी - मल्हार अग के रागों का तुलनात्मक विवेचन, कृष्णराव पडित, सगीतसरगमसवार व अन्य, बी0आर0 देवधर - रागबोध, राजाभैया पूछवाले - तानमालिका व अन्य, प0 फिरोज फ्रामजी - सगीत श्रुतिस्वरशिक्षा एव अन्य।

4. **प्राचीन मध्य एवं आधुनिक वाग्गेयकारों की रचनाओं में परस्पर भेद तथा उनकी तुलना-**

- रा'गेयकार एव उनकी रचनाओ पर पडता सामचिक प्रभाव मूलोद्देश्य - आनद प्राप्ति।
- विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक धार्मिक गतिविधियों का प्रभाव-रचनाओ पर।
- प्राचीन रचनाओं का मूलभूत उद्देश्य एव प्रयोजन।
- मध्यकालीन रचनाओ का ध्येय एव आधुनिक वाग्गेयकारो का दृष्टिकोण।
- तुलनात्मक विवेचना - प्राचीन ग्राम, राग, जातियों के स्थान पर, नवीन शैलियों की उद्भावना - रागगायन श्रृगारिकता, पूर्वाग्रह भाव, आध्यात्मिकता का लोप।
- मानसिह तोमर, खुसरो आदि के प्रयास, मध्यकालीन सतों का स्तुत्य योगदान।
- आधुनिक रचनाओं मे मिश्रित स्वरूप के दर्शन - निष्कर्ष।

5. **ध्रुपद ख्याल, ठुमरी तथा टप्पा शैली के वाग्गेयकारों की रचनाओं में शैली के अनुरूप स्वर शब्द एवं काव्य का प्रयोग -**

स्वरशास्त्र-सगीत का स्तभ, भरत, मतग आदि के विचार, गायन की श्रेष्ठता, राग का ज्ञान आवश्यक है। वर्ण-शब्द की उपयुक्तता, बंदिश व काव्य का महत्वपूर्ण

स्थान, शब्दानुरूपता, कतिपय वाग्गेयकारो की रचनाओ मे रचर शब्द एव काव्य की भूमिका का विवेचन भातखडे जी के विचार, ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी व टप्पा शैलियो मे भाषा, शब्द, काव्यादि की अनुकूलता व लोकप्रियता, सभी शैलियों मे स्वर भाषा, ताल और मार्ग की महत्वपूर्ण भूमिका, कतिपय दृटान्त, निष्कर्ष।

6. इन विभिन्न प्रकार की रचनाओं के आधार पर वाग्गेयकारों की रचना-शैली का आलोचनात्मक विवेचन -

प्राचीन रचनाओं की शैली-उद्देश्य एव बदलाव, ऐतिहासिक आधार पर विवेचन आलोचना का वास्तविक ध्येय, आधुनिक रचनाओं मे रुचि-वैचित्र्य, 14वीं शती से पूर्व की रचना शैली मे भावात्मकता की प्रधानता, आधुनिक रचना शैली मे शुष्कता, आजके गायकों का मुख्य लक्ष्य क्या है ? कोतूहल का सर्जन अथवा आतंकित करना, मूर्च्छना पद्धति मे अरुचि, भरत, रत्नाकर, जयदेव, तुलसी, सूर इत्यादि की रचना शैली मे गेयता, स्वर योजना, काव्यमयता का निदर्शन वाग्गेयकारों के गुणो से युक्त रचनाशैली, मध्य कालीन रचनाओं की समीक्षा - विभिन्न शैलियों के सन्दर्भ मे, सगीत का स्वर्णिम काल - रचना शैली की दृष्टि से, प्राचीन मध्य एव वर्तमान सन्दर्भो मे आलोचनात्मक परीक्षण एव निष्कर्ष।

सप्तम् अध्याय

1 उपसहार · शोध कार्य का निष्कर्ष एव उपलब्धि

2 सहायक ग्रथो की सूची

प्राक्कथन

सगीत के प्रति बचपन से ही मेरी अभिरुचि रही है। सगीत के शास्त्रीय और प्रायोगिक पक्ष का विशेष अध्ययन एव अभ्यास करने की प्रवृत्ति मुझे सगीत के विशिष्ट गुरूजनों के सम्पर्क मे खींच लायी। मेरी प्रेरणा के मुख्य स्रोत मेरे माता पिता रहे। मेरे पिता श्री एच0एल0 वसु मुझे सगीत की दिशा म आगे बढने मे सदैव प्रोत्साहित करते रहे। यह कहना कतई अतिश्योक्ति न होगी कि मै अपने पिता को ही अपना प्रथम गुरू मानती हूँ। उन्होने मुझे सगीत के अनेक कार्यक्रमों को सुनने समझने का अवसर प्रदान किया। घर मे भी प्राय विशिष्ट प्रतिष्ठित सगीतज्ञों का आगमन होता रहा जिन्हे देखने एव सुनने का सौभाग्य मुझे मिलता रहा।

कठ से सगीत की मधुर स्वर लहरी कैसे नि सृत होती है ? कैसे कलाकार अपने कठ का इतना नियत्रित कर लेते है कि सधे हुए स्वरो का मधुर गान श्रोता को मत्रमुग्ध कर देता है। इन्हीं विचारों मे डूबते उतराते मे कब सगीत प्रेमी हो गई, मुझे पता ही नहीं चला। सगीत गायन की शिक्षा मैने सर्वप्रथम स्व0 श्री विश्वनाथ विश्वारौरि से प्राप्त की थी।

सगीत की उत्पत्ति एव विकास का अध्ययन करने की इच्छा से ही मेरा ध्यान शास्त्रीय सगीत के वाग्गेयकारों के योगदान की ओर आकृष्ट हुआ और मैने प्रस्तुत विषय को शोध कार्य हेतु चुना।

वस्तुत सगीत की सफल अभिव्यक्ति एव प्रस्तुति हेतु सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता हुआ करती है। गायक और वादक परस्पर मिलकर ही एक रसमय वातावरण बना देते है। इस प्रकार ऐसी स्थिति मे व्यक्ति की प्रधानता न होकर समष्टि का भाव ही मुख्य होता है। सफल प्रस्तुति हेतु सभी उपादानों की समान जरूरत होती है। अत समानरूपेण वे सभी महत्वपूर्ण होते है। आचार्य शारगदेव की दृष्टि मे उत्तम वृद के अन्तर्गत चार मुख्य गायक, आठ सम गायक, बारह गायिकाए, चार वांशिक तथा चार मार्दगिकों की गणना होती है।

वृद के प्रमुख गुण है - मुख्य गायकों की अनुवृत्ति, मिलकर गायन प्रस्तुत करना, ताल एव रस की अनुवृत्ति, खण्डित हो जाने की दशा मे उसे जोड देना, मद्र मध्य और तार स्थानों की व्याप्ति मे सामर्थ्य एव शब्द सादृश्य। सफल प्रस्तुतिकरण हेतु जितनी अपेक्षा गायक एव वादक मे सामजस्य का होना है उतने ही गीत को भी रस ओर लय के अनुकूल होना चाहिए। उत्तम वाग्गेयकार जो भी पद रचना करता है उसमे सहृदयता व रस का होना बहुत ही जरूरी है। अक्षरों की नियमत के साथ ही छद व यति का सयोग भी अपरिहाय है, विशेषकर सगीत के लिये।

इसी प्रकार ताल व छद का समन्वय भी वांछनीय है। रास परिपाक मे राग व वाणी के साथ ही लय भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रत्येक रस मे लय भी दूसरी हो जाती है, जैसे करुण रस के परिपाक के लिये अनुकूल लय विलम्बित है। हास्य व श्रृगार के लिये मध्य लय को उपयुक्त माना जाता है। उत्साह, क्रोध, विस्मय, जुगुप्सा आदि की स्थिति मे मनुष्य की कार्य क्षमता

अथवा गति मे तीव्रता की वृद्धि हो जाती है। इसीलिए द्रुतलय को वीर, रौद्र, अद्भुत तथा वीभत्स रसों के लिये उपयुक्त माना गया है। अत स्पष्ट हो जाता है कि सगीत का लक्ष्य रस परिपाक ही होता है।

उत्तम सगीत सर्जना हेतु वाग्गेयकार की सगीतमर्मज्ञता और आदर्श के प्रयोगार्थ गायक - वादन और नर्तक की सहृदयता, विद्वत्ता, सयम, शालीनता आदि सुलक्षणों की अनिवार्यता आचार्यो द्वारा निर्धारित की गयी थी।

सगीत और साहित्यकता मे अटूट सम्बन्ध रहा है, जैसा कि स्पष्ट होता है कि भारतीय सगीत शास्त्रकार उच्चकोटि के साहित्य मर्मज्ञ व विचारक रहे है। भरतमुनि, दत्तिल, नंदिकेश्वरादि से लेकर अभिनवगुप्त जैसे भाष्यकारो तथा विचारकों मे रसमयता विद्यमान रही है। इसी प्रकार, मतग, भोज, शारदा, तनय तथा शारगदेव जैसे सकलनकर्तागण भी रस तत्व के प्रयोग मे पारगत थे।

कालातर मे उत्कृष्ट वाग्गेयकारों की परपरा व भारतीय रग मचीयता का ह्रास होने लगा। जिसके मूलकारणों मे प्रमुख है प्रतिकूल राजनीतिक परिस्थितिया का होना। ध्यातव्य है काश्मीर मे अभिनवगुप्ताचार्य द्वारा जिस समय (1000 ई0) नाट्यशास्त्र पर "अभिनव भारती" नाम टीका का लेखन हो रहा था, उसी समय 1997 ई0 मे वायव्य सीमा की ओर महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ था। 1013 में काश्मीर विध्वस किया गया और इस्लाम धर्म को जबर्दस्ती मनवाने की चेष्टा की गयी, लगभग यही स्थिति कालान्तरीय सभी राजाओं के समय बरकरार रही, जिसका दुष्प्रभाव भारतीय कला व सगीत पर पडे बिना नहीं रह सका। यह बात विशेषत ध्यातव्य है कि अल्बरूनी ने हिन्दुओं के तात्कालिक धर्म

दर्शन, साहित्य, इतिहास, भूगोल, खगोल, फलित, ज्योतिष तथा रीति नीति का वर्णन अपने ज्ञान के अनुसार ही किया है।

कुल मिलाकर यही निष्कर्ष निकलता है कि श्रेष्ठ वाग्गेयकार व विद्वान पलायन हेतु बाध्य हुए और यत्र-तत्र रजवाडों व सामतों के यहा आश्रय ग्रहण किया। खुसरो यद्यपि ईरानी सगीत का मर्मज्ञ था तथापि उसकी दृष्टि मे भारतीय सगीत ससार भर मे सर्वश्रेष्ठ व अद्वितीय है।

सूफियों का प्रभाव खुसरो पर काफी पडा था। खुसरो की विद्या ही सगीत जीवियों के लिये अर्थकारी रही और मुस्लिम अधिकृत प्रदेशों के सगीत जीवियों के लिये कौल, कव्वाली, गजल आदि सीखना और सूफियों की मुरीद होना आवश्यक हो गया। इसी आर्थिक विवशता ने अनेक सगीत जीवी हिन्दुओं को इस्लाम स्वीकार करने के लिगे बाध्य होना पडा। अत स्पष्ट है कि 13वीं-14वीं शताब्दी मे खुसरो की पद्धति को देश भर मे फैलाने का प्रयास किया जाता रहा। पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एव सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ मे मानसिह तोमर जेसे हिन्दू शासक के प्रयासों से ध्रुपद शैली का प्रादुर्भाव का उल्लेखनीय घटना कही जा सकती है। इससे पूर्व भी रस और भाव के स्थान रागों के रूप और ध्यान की उद्‌भावना हो चुकी थी। मुगल सम्राटों के काल मे ध्रुपद शैली काफी प्रचलित व लोकप्रियता रही। शर्की द्वारा आविस्कृत ख्याल शैली को पुन उठाने का प्रयास मुहम्मदशाह रंगीले द्वारा किया गया इसी प्रकार पजाब की लोकगीत के रूप मे प्रचलित टप्पा शैली को अवध के नवाब आसफुद्‌दौला के समय स्थापित किया गया। वाजिद अली शाह के समय ठुमरी, दादरा व गजल की महत्ता काफी थी।

इस प्रकार उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारतीय सगीत का इतिहास अत्यन्त ही प्राचीन है, परन्तु यह ध्रुव सत्य है कि इस प्राचीनतम सागीतिक अध्याय मे नवीनतम अध्याय जोडने का महत्वपूर्ण कार्य सगीत के वाग्गेयकारो ने किया इस कारण ही इनके कार्यो का शास्त्रीय सगीत मे इनके योगदान पर एक शोध दृष्टि डालने तथा एक नवीनतम सामग्री खोज करने की अभिलाषा मेरे मन मे जागृत हुई। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अपने शोध काय निर्देशिका डा0 गीता बनर्जी एव अन्य गुरूजनो के सहयोग एव आशीवाद से अपने इस विषय मे कुछ नवीन कार्य कर सकूँगी।

Sushmita Deb

सुस्मिता देव

आभार

इस शोध प्रबन्ध को पूर्णता प्रदान करने एव इग स्थिति तक पहुचने मे जिन महानुभावों का योगदान रहा उनके प्रति मैं अत्यधिक विनम्रतापूर्वक आभार प्रकट करना चाहती हूँ।

सर्वप्रथम मैं अपने माता-पिता के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ जिनकी छत्रछाया मे मेरा सगीत प्रेम बचपन से ही पत्रित, पुष्पित एव फलित हुआ और आज मैं इतने बडे शोध कार्य को करने मे सक्षम हुई।

तत्पश्चात् मैं अपनु पुण्य गुरू, सगीत एव प्रदर्शनकला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की पूर्व विभागाध्यक्षा डा0 गीता बनर्जी के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ जिनके स्नेहपूर्ण एव गुरूत्वपूर्ण निर्देशन मे मेरा यह शोध कार्य पूर्ण हुआ।

इसके बाद मैं अपनी गुरू के भी पंडित रामाश्रम झा जी के प्रति विनयावनत आभार प्रकट करना चाहती हूँ जिनके श्रेष्ठ एव गुरूगभीर व्यक्तित्व से मैं सदैव प्रभावित रही हूँ।

इसके बाद मैं श्रेष्ठ सितार वादक डा0 साहित्य कुमार नाहर जी वर्तमान संगीत विभागाध्यक्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति आभार प्रकट करती हूँ। आपने मुझे शोध सामग्री प्राप्त कराने मे निरतर सहयोग दिया।

तत्पश्चात् मैं अपने गुरूतुल्य श्री प्रम कुमार मलिक (दरभगा घाराना) के प्र्रात भी आभारी हूँ जिनके सहचर्य से ही मैं आज सगीत के क्षेत्र मे कुछ कर पाने का प्रयास कर सकी हूँ।

इस सम्पूर्ण शोध कार्य मे दुर्लभ पुस्तकों को उपलब्ध कराने मे प्रो0 हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव जी ने अद्वितीय सहयोग प्रदान किया। उनके प्रति मै हृदय से आभारी हूँ।

अत मे मै अपने परिवार के सदस्य एव पारिवारिक मित्रों के प्रति भी आभार प्रकट करना चाहती हूँ जिनके अपरिमित सहयोग, सद्भाव एव शुभेच्छाओं से मेरा शोध कार्य पूर्ण हुआ।

प्रथम अध्याय

शास्त्रीय संगीत के प्रसिद्ध वाग्गेयकार तथा उनका योगदान

प्रथम अध्याय

1. संगीत की महत्ता एवं परिभाषा -

ललित कलाओं में संगीत - वे कलाएँ जिनमे कल्पना और बुद्धि का सुदरतम सयोग हो उन्हे ललित कलाएँ कहते है, जैसे- सगीत, चित्रकला, वास्तुकला आदि।[1] शैव तंत्र मे नृत्य, गीत, वाद्य आदि 64 ललित कलाओं का वर्णन मिलता है।[2] समस्त ललित कलाओं मे सगीत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सगीत कला वह कला है जो मनुष्य को भौतिक सुख, समृद्धि और यश के उत्कर्ष तक तो पहुँचाती ही है साथ ही मनुष्य को आत्मिक एव आध्यात्मिक सुख-सतोष और आनद के परमात्मतत्व से जोडती है। सगीत वह साधन है जिसकी साधना से परमानद की प्राप्ति होती है। भारत ही नहीं विश्व मे सभी धर्मो मे भक्ति एव उपासना के जितने भी मार्ग प्रचलित है या रहे है, उन सभी मे सगीत कला का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतवर्ष मे दो प्रकार की उपासना पद्धति प्रचलित रही है - 1) वैदिक, 2) तान्त्रिक।

समाज के उच्च वर्ग के साधकों मे वैदिक उपासना का विशेष प्रचार रहा। वैदिक उपासना के मार्ग मे मस्तिष्क की प्रौढ़ता तथा धन की प्रचुर आवश्यकता का आधार प्रबल रहा इस कारण यह उपासना पद्धति सर्वजन सुलभ नहीं था।

इसके विपरीत तान्त्रिक साधना के मार्ग मे शिव और शक्ति जैसे दैवी शक्तियो की पूजा का विधान था। तान्त्रिक उपासना मे जन साधारण की रुचि और प्रवृत्ति

1- संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर - सपादक - रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 866.

2- संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर - सपादक - रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 178

अधिक थी। उपासना की इन दोनों पद्धत्तियों मे सगीत का प्रयोग प्राचीन काल से ही प्रचलित था। यही कारण है कि भारतीय सगीत मे वैदिक एव तान्त्रिक दोनों परम्पराएँ वर्तमान है। वैदिक परम्परा के सगीत का प्रादुर्भाव आदि ब्रह्मा से तथा तान्त्रिक परम्परा के सगीत का उद्भव एव स्रोत शिव को माना गया है। एक को वौदिक परम्परा तथा दूसरी को आगम परम्परा कहते है। सगीत तथा नाट्य के सुप्रसिद्ध ग्रथ नाट्य-शास्त्र मे इन दोनों मतों का समावेश हुआ है।[1]

वैदिक एव तान्त्रिक उपासना पद्धति के अतिरिक्त बौद्ध उपासना पद्धति ने भी भारत ही नहीं विदेशों की सगीत परम्परा को भी प्रभावित किया। अन्य परम्पराओं से मतभेद होते हुए भी धर्म और उपासना के प्रचार मे बौद्ध परम्परा ने सगीत को अत्यधिक महत्व प्रदान किया। उपासना के साथ गीत, वाद्य, नृत्य आदि का प्रयोग तिब्बत, चीन, जापान, इन्डोनेशिया आदि देशों मे प्राचीन काल से आज तक बना हुआ है।

गान्धर्व गायन :-

प्राचीन काल के गायकों को गन्धर्व कहा जाता था। ये अपने गायन के साथ वाद्यों की भी सगीत रखते थे। गीत और वाद्य दोनों का संयोग गन्धर्व गायन मे होता था। इसीलिए प्राचीन ग्रथो मे सगीत के लिए गान्धर्व शब्द प्रयुक्त हुआ है। भरत के नाट्य शास्त्र मे गान्धर्व कला का एक शास्त्र के रूप मे वर्णन मिलता है। सामसगीत के उपवेद के रूप मे गान्धर्व सगीत को प्राचीन भारतीय सगीत मे मान्यता प्राप्त थी। गान्धर्व मे स्वर, ताल तथा पद तीनों अग अनिवार्य है। 'अवधान' या बौद्धिक क्रिया के आधार पर ही स्वतर, ताल तथा पद तीनों का समुचित सामजस्य सम्भव है।

1- सगीत बोध - मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रथ अकादमी, भोपाल - पृष्ठ 1

गीत-संगीत :-

स्वर तथा ताल मे निबद्ध सार्थक शब्दो का समूह गीत कहलाता है। गीत की प्रमुखता होने के कारण इसी गन्धर्व को सगीत कहते है। सगीत का अर्थ 'सम्यक् गीतम्' अर्थात ध्यानपूर्वक या अवधान से गाया गीत है। गीत, वाद्य और नृत्य तीनों मे गीत की ही प्रधानता रही। गीत मानव कण्ठ से नि सृत कला है। मनुष्य अपने कण्ठ से स्वरों के कलात्मक उच्चारण की अद्भुत क्षमता रखता है। मनुष्य के कण्ठ को इसी कारण 'शरीरी वीणा' कहा जाता है।

सर्वप्रथम गीत-गायन हुआ। इसी के आधार पर गायन के अनुकूल वाद्य बनाने की कल्पना भी साकार हुई। गायन के अनुकूल ही वाद्यों का निर्माण हुआ। वीणा तथा वशी जैसे वाद्य गायन की सगीत के लिए ही निर्मित हुए। इन वाद्यों की सार्थकता भी इसी मे है। नृत्य मे भी गीत की अपेक्षा होती है। भावों का शब्दमय रूप गीत है। भावों के अनुकूल ही नृत्य किया जाता है। अभिनय के माध्यम से गीत के भावों का प्रदर्शन नृत्य कहलाता है। नृत्य मे ताल और लय का समन्वय रहता है। नृत्य की कल्पना गीत और वाद्य के बिना नहीं की जा सकती। प्राचीन ग्रथों, चित्रों तथा शिल्पो मे भी गीत, वाद्य तथा नृत्य का सामान्य जन जीवन से साहचर्य देखा जा सकता है। वास्तव मे 'सगीत' शब्द मूलत गीत का ही बोधक है कितु गीत, वाद्य तथा नृत्य की अभिन्न सहकारिता के कारण 'सगीत' शब्द तीनों का ही बोधक बन गया। व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों प्रकार के गीतो का समावेश सगीत के अतर्गत होता है। व्यक्तिगत रूप स गाने-बजाने-नाचने के साथ ही सामूहिक गायन, वादन तथा नर्तन को 'सगीत' की सज्ञा दी जाती है। इसी को मध्ययुगीन ग्रन्थकारों ने निम्न व्याख्या मे स्पष्ट किया है -

गीत वाद्य तथा नृत्य त्रय सगीतमुच्यते।

शास्त्रीय एव लौकिक संगीत :-

भारतीय सगीत की दो धाराएँ प्राचीन काल से परिलक्षित होती हैं - **1. धार्मिक भावधारा, 2. लौकिक भावधारा।** धार्मिक समारोहों एव धार्मिक विधि-विधानों के लिए धार्मिक भावधारा के गीत गाये जाते थे। लौकिक समारोहों के अवसर पर केवल मनोरजन के लिए लौकिक भावधारा के गीत गाये जाते थे। धार्मिक भावधारा के सगीत को वैदिक या सामसगीत तथा लौकिक भावधारा के संगीत को अवैदिक या लौकिक सगीत कहा जाता है। धार्मिक और लौकिक दोनों सगीत धाराएँ वैदिक काल मे समानातर चलती रहीं। साथ ही एक दूसरे को प्रभावित भी करती रहीं। प्रथम धारा को 'मार्ग' तथा दूसरी धारा को 'देशी' नाम दिया गया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दोनों धाराओ का मूल आधार जन-सगीत या लोक सगीत था। दोनों मे अतर यह था कि धार्मिक भावधारा को सस्कार और परिष्कार प्राप्त था। इस कारण यह धारा उच्च श्रेणी या शास्त्रीय (क्लासिकल) सगीत के रूप मे प्रतिष्ठित हुई तथा लौकिक धारा केवल लोक रुचि या मनोरजन के अनुकूल विकसित होने के कारण सामान्य जनता मे लोकप्रिय हुई। मार्ग सगीत मे शास्त्रीय सगीत के नियमों की प्रधानता रही तथा देशी सगीत मे लोक सगीत के नियम प्रमुख रहे। सगीत शैली की गभीरता और सयतता मार्ग सगीत मे देखी जा सकती है तथा दूसरी ओर स्वर वैचित्र्य एव चपलता देशी सगीत मे विद्यमान है। आज की गायन शैली मे ध्रुवपद तथा ख्याल गायन 'मार्गी' कहलायेगे तथा ठुमरी और गजल देशी कहे जायेगे।

प्राचीन काल मे 'साम' सगीत मार्ग या शास्त्रीय था तथा गान्धर्व सगीत देशी या लौकिक था। साम एव गान्धर्व सगीत देशी या लौकिक था। साम एव गान्धर्व दोनो परम्पराएँ वैदिक युग मे एक दूसरे से पृथक थीं। वैदिक महर्षि साम सगीत का प्रयोग

करते थे। दूसरी ओर व्यवसायी गन्धर्व गान्धर्व सगीत का प्रयोग करते थे। वैदिक काल मे गन्धर्वो को सगीत प्रिय क्षुद्र देवता माना जाता था। ये साम परम्परा से सम्बद्ध नहीं थे। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है। गन्धर्व तत्कालीन देशी सगीत का ही प्रतिनिधित्व करते रहे। रामायण तथा महाभारत काल तक आते-आते मार्ग या साम सगीत के अंतर्गत 'गन्धर्व' का समावेश होने लगा। रामायण का गायन लवकुश ने सार्वजनिक रूप से शिष्ट एव अधिकारी जनों के सम्मुख प्रस्तुत किया। उनका गायन भले ही लौकिक भाव धारा मे किया गया हो लेकिन तत्कालीन विद्वद्जनों द्वारा मान्य होने के कारण लवकुश का गायन 'मार्ग' या शास्त्रीय माना गया। इसका कारण यह है कि मार्ग एव देशी दोनों परम्पराएँ जन सगीत पर ही आधारित है। अत दोनों देशी सगीत की शाखाए मानी जा सकती है। शास्त्रीय सगीत का स्रोत भी लोक सगीत ही रहा है। वास्तव मे मार्ग सगीत जन सगीत की वह शाखा है जो व्याकरणबद्ध या नियमबद्ध होकर सुसस्कृत जनों द्वारा मान्यता प्राप्त कर लेती है। देशी सगीत धारा लोकरुचि का अनुगमन करती हुई नवीनतम सौंदर्य तत्वों को अपने मे सजोती रहती है। लौकिक भावधारा स्थानीय विशेषताओं को ग्रहण कर लेती है इसी लिए उसे 'देशी' सगीत कहते है।

मार्ग तथा देशी दोनो एक दूसरे को प्रभावित करती है। देशी सगीत के बिना शास्त्रीय सगीत अधूरा रहेगा। सगीत की अनेक राग-रागिनियाँ, उनसे सम्बन्धित वाद्य तथा नृत्य सभी देशी सगीत की ही देन है। इनका मूल रूप लोक संगीत मे विद्यमान है। युग परिवर्तन शील है। शास्त्रीय सगीत की प्राचीन परम्परा को लोकप्रिय बने रहने के लिए जरूरी है कि वह युग विशेष की रुचि एवं माँग के अनुसार नये-नये तत्वों एव शैलियों को आत्मसात करे। ऐसा न करने पर शास्त्रीय सगीत की रसमयता निष्प्राण हो सकती है। ध्रुवपद, ख्याल, ठुमरी जो आज शास्त्रीय सगीत के अतर्गत माने जाते है वे मूलत लोक संगीत की ही शैलियाँ थीं। इन प्रादेशिक शैलियों को

आज मार्ग या शास्त्रीय सगीत मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कला की सार्वजनीनता की दृष्टि से ख्याल, ठुमरी और गजल आदि को मार्ग सगीत मे स्थान प्राप्त हुआ। चित्रपट सगीत आज अशास्त्रीय माना जाता है। सभव है कि बदलते समय के परिवेश के साथ इसे भी शास्त्रीय सगीत मे स्थान प्राप्त हो जाये। जनरुचि का ध्यान रखने के कारण ही ध्रुवपद गायक ख्याल, ठुमरी, गजल तथा दादरे की ओर आकर्षित हुए। यह कलाकार का अपना कौशल भी है कि वह किस प्रकार लोक सगीत को मार्ग सगीत बना दे। उच्च श्रेणी के वादक भी आज शास्त्रीय सगीत के साथ चैती, कजरी, रसिया आदि लोकगीत वाद्यों पर बजाते है। खमाज, काफी, पिलू, मालवी, सारग आदि रागों का शास्त्रीय सगीत मे समावेश इसी प्रकार सभव हुआ है।

इसी प्रकार देशी सगीत भी मार्ग सगीत से प्रभावित हुआ है। आज लोक सगीत की गायन शैली वाद्यों के प्रकार तथा नृत्य शैली पर भी शास्त्रीय सगीत के प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। यही कारण है कि शास्त्रीय सगीत के प्रभाव से लोक सगीत के मौलिक स्वरूप भी कहीं-कहीं खो गये है। लोक सगीत का मूल रूप आज एक शोध एव खोज का विषय बन गया है। ग्रामीण सभ्यता एव सस्कृति आज निश्चय ही आधुनिक संस्कृति की चकाचौंध मे अपना अस्तित्व भूलती जा रही है। उनका सगीत भी आधुनिकता से प्रभावित हो रहा है। शास्त्रीय और चित्रपट सगीत ने ग्रामीण स्वर लहरी को आवृत कर लिया है। कुछ भी हो शास्त्रीय एव लौकिक सगीत धाराओं के पारस्परिक आदान-प्रदान से ही भारतीय संगीत का इतिहास निर्मित है।

उत्तरी तथा दाक्षिणात्य शैली :-

भारतीय सगीत की दो महत्वपूर्ण शैलियाँ है - 1) उत्तर भारतीय, 2) दक्षिण भारतीय या दाक्षिणात्य सगीत। दोनों शैलियों का स्रोत एक ही है फिर भी दोनों की

भिन्नता का कारण उनका शैली भेद है। प्रादेशिक अनुरजन (लोकल कलर) के कारण इनमे शैलीगत भेद है। भारतीय सगीत मे अनेक प्रादेशिक शैलियों का विकास 7वीं शती ई0 के बाद प्रारभ हुआ। सगीत के अतर्गत अनेक शैलियाँ अपने-अपने प्रदेशों मे विकसित होती रहीं। मतग के 'बृहद्दशी' नामक ग्रन्थ मे उत्तर तथा दक्षिण की प्रादेशिक शैलियों का स्पष्ट उल्लेख है।[1] इस प्रकार भारतीय सगीत विभिन्न प्रादेशिक शैलियों मे विकसित होता रहा जिससे सगीत की मूलधारा भी समृद्ध हुई। 7वीं शती से 13वीं शती तक सगीत का सक्रमण काल था। इसी समय भारतीय सगीत विदेशी सपर्क मे आया। विदेशी सगीत के प्रभाव से भारतीय सगीत मे नया मोड आया। ईरानी राग, वाद्य तथा शास्त्र से इसी समय सपर्क स्थापित हुआ। इसी युग मे भारतीय सगीत दो सम्प्रदायों मे विभाजित हुआ - 1) उत्तर हिन्दुस्तानी, 2) कर्नाटकी। सौराष्ट्र के संगीतज्ञ नरेश हरिपाल ने (ई0 14) ने अपने 'सगीत सुधाकर' नामक ग्रथ मे कर्नाटक एव हिन्दुस्तानी इन दो पद्धतियों का नाम निर्देश किया है। प्रसिद्ध मराठी कवि तथा सगीतज्ञ दासोपत (ई0 16) ने रागों के वर्णन मे दाक्षिणात्य सम्प्रदाय का उल्लेख किया है।[2] इसी को कर्नाटक सगीत के नाम से जाना जाता है। भौगोलिक दृष्टि से कर्नाटक सम्प्रदाय मे महाराष्ट्र को छोडकर शेष सम्पूर्ण दक्षिण प्रदेश शामिल है। वर्तमान समय मे कर्नाटक एक विशेष प्रदेश का नाम हो गया है इसलिए इस सम्प्रदाय को 'दाक्षिणात्य सगीत' नाम दिया गया।

दोनों पद्धतियों मे सप्तक के अतर्गत 22 श्रुतियाँ और उनके सवाद सम्बन्ध समान है। श्रुति की शुद्धता कर्नाटक सगीत की महत्वपूर्ण विशेषता है। स्वर की सूक्ष्मतक ध्वनि को शुद्ध रूप से प्रस्तुत करना ही श्रुति-शुद्धता है। दोनों पद्धतियों

1- सगीत बोध - मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रथ अकादमी, भोपाल, पृ0 - 5

2- सगीत बोध - मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रथ अकादमी, भोपाल, पृ0 - 6

का सगीत सप्तक के 12 स्वरों पर आधारित है। दोनो मे सा और प अचल स्वर है। शेष स्वर चल है। चल स्वरों मे विकृति आ सकती है। विकृतियों के स्थान तथा नामकरण के संबध मे दोनों पद्धतियों मे मतभेद है। उत्तरी सगीत मे म को छोडकर बाकी शुद्ध स्वरों को तीव्र भी कहा जाता है। उसकी विकृति के लिए कोमल सज्ञा है। कर्नाटक सगीत मे शुद्ध सज्ञा स्वर की पहली तथा निम्नतम स्थिति के लिए प्रयुक्त होती है। इसके बाद की स्थिति विकृत मानी जाती है। इसीलिए कर्नाटकी शुद्ध स्वर उत्तरी सगीत के कोमल स्वरों के समान होते है। उत्तरी तथा कर्नाटक पद्धति मे अतर की दृष्टि से निम्न तालिका दृष्टव्य है -

	उत्तर हिन्दुस्तानी	दाक्षिणात्य
1	षड्ज	षड्ज
2.	कोमल ऋषभ	शुद्ध ऋषभ
3	शुद्ध या तीव्र ऋषभ	चतुश्रुति ऋषभ (शुद्ध ग)
4	कोमल गाधार	साधारण गाधार
5	शुद्ध या तीव्र गाधार	अतर गाधार
6	शुद्ध या कोमल मध्यम	शुद्ध मध्यम
7	तीव्र मध्यम	प्रति मध्यम
8.	पचम	पचम
9.	कोमल धैवत	शुद्ध धैवत
10.	शुद्ध या तीव्र धैवत	चतुश्रुति धैवत (शुद्ध नि)
11.	कोमल निषाद	कौशिक निषाद (षट्श्रुति धैवत)
12.	शुद्ध या तीव्र निषाद	काकलि निषाद

दाक्षिणात्य मे कभी-कभी एक स्वर की दो स्थितियाँ परिलक्षित होती है। ऐसे में दोनों मे से एक की सज्ञा परिवर्तित हो जाती है। यथा- शुद्धरि के बाद चतुश्रुतिक रि और शुद्ध ध के बाद चतुश्रुतिक ध आने पर चतुश्रुतिक रि और ध को क्रमश शुद्ध ग और शुद्धनि कहा जाता है। उसी तरह सामान्य ग के पश्चात् यदि अन्तर ग आ जाये और कौशिकी नि के पश्चात् काकलि नि आये तो सामान्य ग को षटश्रुति रि और कौशिक नि को षटश्रुति ध कहते हैं।

दोनो शैलियों मे पर्दे वाले वाद्यों पर इन्हीं 12 स्वरों को स्थापित किया जाता रहा तथा रागों के निर्माण हेतु कुछ मेलकर्ता या ठाठों की कल्पना की गई। दक्षिण मे कुल 72 मेल माने गये है जिनमे से 40 रागों मे एक ही स्वर की शुद्ध एव विकृत अवस्थाएँ एक साथ आती है। ऐसे रागों को केवल सिद्धांत के दृष्टिकोण से मान्यता प्रदान की जाती है। उनके प्रचार-प्रसार के दृष्टिकोण से नहीं। हिन्दुस्तानी सगीत का राग ललित इसी प्रकार का है जिसमे दो मध्यम आते है। मेल के दृष्टिकोण से इसे दक्षिण के 'सूर्यकांत' नामक मेल मे रख सकते है। दाक्षिणात्म सगीत का शुद्ध मेल मध्यकाल से ही 'मुखारी' रहा है। उत्तरी सगीत का मध्यकालीन शुद्ध मेल 'कापी' रहा है। इसका प्रचलित शुद्ध मेल 'बिलावल' है। उत्तरी संगीत मे मध्यकाल से ही मेल-राग पद्धति को मान्यता प्रदान की गई है। उनके विभिन्न मेलों को माना गया। आज राग वर्गीकरण के दृष्टिकोण से केवल 10 मेलों या थाटों को प्राय पर्याप्त माना जाता है।

उत्तरी और दक्षिणी दोनों शैलियों मे अनेक रागों के नाम एक समान है किन्तु उनके स्वर रूप एक दूसरे से भिन्न है। जैसे- हिडोल, सोहनी, श्री आदि राग दोनों शैलियों में एक-से है कितु स्वर रूप से परस्पर अलग-अलग है। उत्तरी हिडोल कल्याण थाट

का है। यह उत्तरी मालकौंस से मिलता-जुलता है। उत्तरी सोहनी मारवा मे जन्य राग है। दक्षिणी सोहनी हरहरप्रिय (या काफी) मेल से जन्य है। तोडी और भैरवी राग दोनों सम्प्रदायों मे लोकप्रिय है। यह मेल की दृष्टि से अलग होने के कारण स्वर की दृष्टि से भी अलग है। उत्तरी सगीत मे तोड़ी स्वय एक जनक या थाट राग है। कर्नाटक मे यह केवल एक जन्य राग है। कर्नाटक की तोड़ी उत्तर की भैरवी है। उत्तर की भैरवी दक्षिण का 'हनुमत तोड़ी' राग है।

कुछ रागों के नाम अलग-अलग है किंतु स्वर एव चलन से वे एक है। जैसे- उत्तरी सगीत मे भूपाली, मालकौंस और दुर्गा दाक्षिणात्य के क्रमश मोहनम्, हिंदोलम् तथा शुद्ध सावेरी के समान है। अतर यह है कि दक्षिणी सगीत मे वादी, सवादी जैसे स्वरों का, राग प्रदर्शन मे महत्व नहीं है। जबकि यह उत्तरी सगीत की महत्वपूर्ण विशेषता है। उत्तरी सगीत पद्धति मे ध्रुवपद, ख्याल, ठुमरी, तराना का मुख्यत समायोजन है। दक्षिणात्य पद्धति की कीर्तनम् कृति, जावली, तिल्लाना, जैसी रचनाएँ भाव तथा लय की दृष्टि से उत्तरी शैली से काफी मिलती-जुलती हैं। राग मालिका, ताल मालिका, जैसी रचनाएँ भी दोनों मे समान रूप से मिलती है। दक्षिणी मे गीत गायन मे गायन और वादन दोनों मे शब्द तथा स्वर का समान महत्व है। उत्तरी पद्धति मे स्वर की प्रधानता तथा शब्द की गौणता पायी जाती है। दक्षिण मे वाद्यों पर भी गीत ही बजाते है। ततकारी जैसी स्वतत्र वादन शैली दक्षिण मे नहीं मिलती। दोनों पद्धति मे षड्ज सचालन अथवा श्रुतिभेद से नई स्वरावलियों का आभास, गायन मे समान रूप से कराया जाता है। दोनों पद्धतियों मे आधुनिक ताल मध्यकाल से आया है। उनका विकास देशी तालों से हुआ है। दक्षिणी सगीत की अपेक्षा उत्तरी सगीत मे ताल की गति अधिक विलंबित रहती है। तथ्य की बात यह है कि उत्तरी तथा दक्षिणी सगीत पद्धतियाँ भारतीय सगीत की ही दो शाखाएँ है। भरत एवं शारगदेव के ग्रथ दोनों पद्धातियों के

आधार है। प्रादेशिक भिन्नता के कारण दोनो पद्धतियों का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ है।

उत्तर-दक्षिण समन्वय :-

उत्तरी तथा दक्षिणी दोनो शैलियों मे पारस्परिक सामजस्य का प्रयत्न एक लबे समय से हो रहा है। प0 भातखडे जी ने इस दिशा मे महत्वपूर्ण प्रयास किया है। उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों पद्धतियो मे कुछ मौलिक समानताएँ है। उनकी ओर विद्वानो का ध्यान भातखडे जी ने आकर्षित किया। इस प्रकार सगीत के क्षेत्र मे भी अनेकता मे एकता स्थापित की गई। 'मेलराग' वर्गीकरण पद्धति को अपनाकर उन्होंने रागो का शास्त्रीय वर्गीकरण किया। दक्षिण की मेल पद्धति को उत्तर भारत के सगीतकारों ने अपनाया। उन्हे उत्तर की 6 राग 36 रागिनी वाली शैली वर्गीकरण की दृष्टि से शास्त्रीय प्रतीत नहीं हुई। उन्होंने नवीन राग-रूपों के आविष्कार के समय दक्षिण के हसध्वनि श्री रजनी, आभोगी, कीरवाणी, सरस्वती जैसे रागो को उत्तरीय स्वरूप मे स्वीकार कर लिया। दक्षिणी सगीत की प्रवृत्तियों को आज भी कई उत्तरी सगीतकार अपनाते जो रहे है। उत्तर एव दक्षिण की गायन शैली का मधुर सगम हैदराबाद और मैसूर के पडोसी प्रदेशों मे देखने को मिलता है। दक्षिण की प्रेरणा से ही स्व0 अब्दुल करीम खॉ ने उत्तरी शैली में सरगम लेने की प्रथा शुरू की। दक्षिण के पी0 सुन्दरम् अय्यर ने स्व0 प0 विष्णु दिगम्बर के पास उत्तरी सगीत का अध्ययन किया। उनके सुपुत्र प्रसिद्ध बेला वादक गोपाल कृष्णणन ने वायलिन वादन मे उत्तर एव दक्षिण की सगीत पद्धति मे सामजस्य स्थापित किया है। उत्तरी तथा दक्षिणी सगीत पद्धति को एक-दूसरे के निकट लाने मे आकाशवाणी कार्यक्रम ने भी सक्रिय भूमिका निभायी। अखिल भारतीय कार्यक्रम मे आकाशवाणी से दोनों पद्धतियों के सगीतज्ञों का सगीत प्रसारित किया जाता है। आज यह कार्य दूरदर्शन के माध्यम से भी हो रहा है। दोनों पद्धतियों मे कुछ

समान स्वर वाले राग है। समय-समय पर उन्हे प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार दोनों की मौलिक एकता प्रकट होती है एस कार्यक्रमो से श्रोताओं पर एकता के सस्कार पडते है।

जनमानस का संस्कार ही उन्हे सगीत का रस लेने मे सक्षम बनाता है। दक्षिण का व्यक्ति दाक्षिणी सगीत मे और उत्तर का व्यक्ति उत्तरी सगीत मे अधिक रुचि लेता है। यह उसका जन्मजात सस्कार है। सगीत पद्धतियों के सामजस्य से एक-दूसरे के सगीत को सुनने और उसका आनद ग्रहण करने का सस्कार बनता है। आदान-प्रदान की सस्कृति से ही दोनों पद्धतियाँ समृद्ध हुई है और होंगी। दोनो पद्धतियों मे राग का स्वरूप स्वर की दृष्टि से एक होता है। केवल उनमे उच्चारण की भिन्नता होती है। इसी कारण वह अलग लगता है। दोनों के तुलनात्मक विवेचन से इसका अनुभव होता है। उच्चारण भिन्नता के लिए शास्त्रों मे 'काकु' सज्ञा पायी जाती है। काकु के कारण स्वरभेद तथा अर्थभेद स्वयं हो जाते है। संगीत मे काकु-प्रकार स्वाभाविक रूप से प्रादेशिक जलवायु और पृथकता के कारण घटित होता है। इसी कारण सगीत की उत्तरी तथा दक्षिणी पद्धति विकसित हुई।

संगीत का महत्व -

सगीत एक सर्वोत्तम ललित कला के रूप मे प्राचीन काल से ही मानव मन और मस्तिष्क मत्रमुग्ध करने की क्षमता रखती है। सगीत का मूल आधार नाद अथवा आवाज है। यही कारण है कि सगीत कला को नादब्रह्म भी कहा गया है। सगीत कला स्वरों का ऐसा सम्मिश्रण है जो कलाकार की हृदयगत भावनाओं को मधुर बनाकर दूसरों के सामने प्रकट करता है। इसलिए सगीत को 'हृदय की भाषा' अर्थात् हृदयगत भावनाओं को प्रकट करने की भाषा माना जाता है। अग्रेज विद्वान रस्किन ने कहा

कि "अन्तरात्मा का उत्थान तथा उसे कलात्मक और आनदमय स्वरूप प्रदान करना ही सगीत कला का मुख्य ध्येय होना चाहिए।" स्व0 रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी इसे सौंदर्य का साकार एव सजीव प्रदर्शन माना है। इस कला का मानव मात्र से घनिष्ट सबध है। मनुष्य ही नहीं पशु तथा पक्ष भी सगीत कला के प्रभाव से सम्पृक्त है। अत सगीत को प्राणीमात्र के लिए अमृत-रस का स्रोत कहा जाये तो कुछ अत्युक्ति न होगी। सगीत कला आत्मा को परमात्मा तक पहुँचाने मे बीच का सोपान सिद्ध होती है।

आज के भारतीय सगीत मे वैदिक और तांत्रिक दोनों परम्पराओं का समन्वय होने के कारण सगीत का भक्ति एव उपासना के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण स्थान स्वत स्थापित हो गया। सगीत के विकास मे इन दोनो परम्पराओं का योगदान अविस्मरणीय है। गीत वाद्य और नृत्य एक दूसरे के पूरक होने के कारण ही इन तीनों की त्रिवेणी का सगम ही सगीत की महत्ता को प्रदर्शित करता है। समस्त भारतीय सगीत मे मार्ग भेद और शैली भेद तो है कितु ये सब भेद केवल बाहरी है। आतरिक रूप से भारतीय सगीत की एकता मौलिक है। भारतीय सगीत अनेकता मे एकता का सदेश सदैव देता रहा है और भारतीय जन मानस को एक दूसरे से जोड़ता रहा है। यह भारतीय सगीत की महान विशेषता है।

- - - - -

2. संगीत की उत्पत्ति :-

सगीत की उत्पत्ति का सृष्टि की उत्पत्ति से गहन सम्बन्ध है। अत सगीत की उत्पत्ति को समझने के पूर्व सृष्टि की उत्त्पत्ति को समझना अति आवश्यक है। इस सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति के विषय मे विभिन्न मत व्यक्त किये जाते रहे है। इन सभी मतों को दो वर्गों मे बॉटा जा सकता है। 1- आस्तिक मत, 2- विकासवादी मत। आस्तिक विचारधारा के अनुसार ईश्वर द्वारा इस सृष्टि की रचना की गई है। विकासवादी विचार से ससार की उत्पत्ति जड प्रकृति के आकस्मिक सयोग से हुई है। सगीत की उत्पत्ति सम्बन्धी विचारधारा पर आस्तिक और विकासवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

भारतीय चिंतन :-

भारतीय विचारधारा सृष्टि की उत्पत्ति विषयक आस्तिक मत को स्वीकार करती है। वैदिक साहित्य आस्तिक मत का मुख्य स्रोत है। सगीत की उत्पत्ति का विवेचन भारतीय सगीतशास्त्र मे किया गया है। इसका मुख्य आधार वैदिक साहित्य पर आधारित सिद्धात ही है। सगीत की उत्पत्ति के विषय मे जो वर्णन भारतीय सगीत शास्त्र मे मिलता है वह अत्यत व्यापक, स्पष्ट और सार्थक है। विकासवादी विचारधारा का क्रमिक विकास का सिद्धात भी सगीत की उत्पत्ति विषयक वर्णन में समाविष्ट हो जाता है।

सृष्टि की उत्पत्ति परब्रह्म परमेश्वर की इच्छा रूपी मायाशक्ति का परिणाम है। ऐसी वैदिक विचारधारा वर्णित है। ससार मे छोटी-बडी अनेक वस्तुऍ है। उन सभी की रचयिता कोई परम शक्ति है। रात-दिन, ऋतु परिवर्तन, जन्म-मरण, सुख-दुख

आदि प्राकृतिक नियमों का निर्माता परमेश्वर सभी धर्मों, संस्कृतियों मे अनादि अनत शक्ति के रूप मे जाना जाता है। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' मे इसका स्पष्ट उल्लेख है- 'जो परमेश्वर निश्चय ही सबसे पहले ब्रह्मा को उत्पन्न करता है और उस ब्रह्मा को वेदों का ज्ञान प्रदान करता है, उस परमात्म ज्ञान विषयक बुद्धि को प्रकट करने वाले प्रसिद्ध देव परमेश्वर को मै मोक्ष की कामना से शरण रूप मे ग्रहण करता हूँ।[1] (6/18) छान्दोग्योपनिषद मे (6/2/1) कहा गया है - 'सौम्याहस नाम रूपात्मक सृष्टि से पूर्व एक अद्वितीय सत् ही था।[2]

महर्षि अगिरा ने महर्षि शौनक से परा एव अपरा विधाओं का विवेचन किया। इसमे चारों वेद, ऋक0, यजु0, साम और अथर्व तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द एव ज्योतिष ये छ: वेदाग आते है। जिस प्रकार कोई यत्र निर्मित होते ही उसके सचालन की पद्धति भी स्थापित हो जाती है उसी प्रकार परमेश्वर ने सृष्टि निमाण के साथ-साथ उसके सचालन हेतु अनेक विधाओं के ज्ञान को प्रदान करने वाले वेद-वेदागों को ससार के कल्याण की भावना से सबसे पहले ब्रह्मा को तथा उनके ही द्वारा ऋषि-महर्षियों को वेदागों का ज्ञान प्रदान कराया। परमेश्वर की इच्छामात्र से ब्रह्मा एव अन्य देवर्षिगण प्रकट हुए। वेद-वेदागों के ज्ञान का ही विस्तार इतिहास, पुराण, वास्तुवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, आयुर्वेद, दण्डनीति, व्यापारविद्या आदि के रूप मे ऋषियों ने किया। आज जो भी ज्ञान भारतीय साहित्य के रूप मे उपलब्ध है वह उसी दिव्य ज्ञान का ही परिचायक है।

1- श्वेताश्वतरोपनिषद्, पृ0 (6/18)

2- छन्दोग्योपनिषद्, पृ0 (6/2/1)

अनेक वैज्ञानिकों ने भी ससार के निर्माता ईश्वर का अनुभव किया है। श्री अल्फ्रेड रसेल प्रसिद्ध वैज्ञानिक डार्विन के सहयोगी थे। उन्होंने अपनी पुस्तक "दि वर्ल्ड ऑफ लाइफ" पुस्तक की भूमिका में लिखा है - "मैने उन मौलिक नियमों की सरल तथा गभीर परीक्षा की है जिनको डार्विन ने जानबूझकर अपने अधिकार के बाहर समझ कर अपने ग्रथो मे नहीं लिखा। जीवन और उसका कारण, सन्तानोत्पत्ति की विचित्र शक्तियाँ आदि विषयों पर परीक्षणयुक्त विचार करने के बाद इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि आश्चर्यजनक घटनाओ से युक्त इस प्रकृति की एक उत्पादक शक्ति है जिसमे प्रत्येक अवस्था के लिए आवश्यक सचालक बुद्धि भी है।"[1] दूसरे वैज्ञानिक सर जेम्स जीन्स कहते है - "वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धात हमे समय और देश की अतिक्रान्त करती हुई एक परमसृष्टा की शक्ति मे विश्वास करने के लिए बाध्य करता है।"[2] श्री ए0 सेठ प्रिगले पेटीसन के अनुसार इस सम्पर्ण सृष्टि मे साधन एव साध्य परस्पर वैसे ही सबंधित है जैसे मनुष्य द्वारा बनायी गई वस्तुओं मे दिखायी देता है। इस सम्पूर्ण जगत की रचना प्रकृति का एक महान कार्य है। अत निश्चय ही इस जगत के रचयिता मे महान एव अद्वितीय शक्तियाँ विद्यमान है। श्री अल्बर्ट आइन्सटाइन ने लिखा है- "मानव ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक क्षेत्र की सफल खोजों की ओर प्रगतिपथ मे प्रवेश करता है त्यों-त्यो वह महान सृष्टि में अभिव्यक्त बुद्धिवादिता के प्रति गभीर श्रद्धा से अभिभूत हो जाता है।" ईश्वर विश्वास पर किसी भी वैज्ञानिक को कोई आपत्ति नहीं होती। प्रकृति के अनेक रूपों मे स्वय वैज्ञानिक विश्वास करते हुए ही अपना कार्य करता है।

1- मार्क्सवाद और रामराज्य - स्वामी करपात्री जी - पृ0 815.

2- भक्ति का विकास - मुशीराम शर्मा - पृ0 10

सगीत शास्त्र भी ज्ञान की एक शाखा के रूप मे सामवेद के उपवेद 'गाधर्ववेद' से सबधित है। वेदागों के 'शिक्षा' वर्ग में सगीत शास्त्र की विवेचना मिलती है। यहाँ यह दृष्टव्य है कि सगीत की उत्पत्ति का सम्बन्ध सृष्टि उत्पत्ति के सिद्धात से किस प्रकार स्थापित होता है। परमात्मा द्वारा प्रदत्त वैदिक नाम को 'अपौरूपेय' कहा गया है। अपौरूषेय का अर्थ है जिसे किसी ने बनाया न हो, यहाँ तक कि ईश्वर ने भी न बनाया हो। परमात्मा के नि श्वास रूप वेद का ज्ञान ईश्वर के नि.श्वास से बिना प्रयत्न के उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार सामवेद भी अपौरूषेय है। वैदिक ज्ञान ईश्वर के नि श्वास से पितामह ब्रह्मा जी को प्राप्त हुआ है। अस्तु सामगान के रूप मे गाया जाने वाला 'गान' अपौरूषेय या किसी के द्वारा निर्मित नहीं है। सामगान मे प्रयुक्त स्वर भी अपौरूषेय है। सामगान विशिष्ट नियमो के अनुसार गाया जाता है। अत लोकधुनो में सामगान विद्वानों द्वारा मान्य नहीं है। ऋग्वेद के मत्रों को ही सामगान मे सस्वर गाया जाता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र मे 'सा' का अर्थ है, ऋग् और 'अम' का अर्थ है स्वर। स्वर और शब्द को घनिष्ट बताया गया है। इस ग्रथ मे ऋग् को पत्नी तथा साम को पति बताया गया है। यथा -

त्वच ऋग्रूपा पत्नीति, सा नाम ऋक् तथा सह सम्बन्ध अमो नाम स्वर षड्जर्सभादिता न रूपो यत्रवर्तते तत् साम'।

'तैत्तिरीयोपनिषद्' के अनुसार - सामगायक 'ओम' से गायन आरभ करते है। मत्रों को 'ओम' कहकर ही पढते है। इससे स्पष्ट है कि सर्वप्रथम 'ओम्' का उच्चारण करके ही वेद पाठ या गान प्रारभ किया जाता है। 'ओम' (प्रणव) यह ब्रह्म है। 'ओम' का उच्चारण सर्वप्रथम इसलिए किया जाता है क्योंकि सबका आदि, मध्य और अत 'ओंकार' ही है। साक्षात् ब्रह्म का नाम 'ओम' है।[1] कठोपनिषद् 2/16 मे कहा गया है कि 'ओम'

---

1 - गीता, पृ0 8/13

अक्षर ही ब्रहम और परब्रह्म है। इस प्रकार यह सपूर्ण जगत ही ब्रह्ममय या ओममय है। इसीलिए वेदपाठ का गान सर्वप्रथम 'ओम' का उच्चारण करने के बाद ही करते है। ब्रह्मा जी को सर्वप्रथम नादब्रह्म 'ॐ' का ज्ञान हुआ। ओंकार रूपी नादब्रह्म के उच्चारित रूप को 'ध्यान-बिन्दूपनिषद्' (15-16) में तेल की धारा के समान अविच्छिन्न, घटे की अनुरणन (ऑसयुक्त धवनि) रूपध्वनि के समान दीर्घकाल तक ध्वनित होने वाला तथा बिना वाणी के (प्राणों द्वारा) उच्चारित नाद बताया गया है। क्षणिक उच्चारण से अन्य वर्णों को अभिव्यक्त कर सकते है परन्तु 'ओम' ध्वनि को क्षणिक उच्चारण से अभिव्यक्त नहीं कर सकते। सहज रूप से उच्चारण करने पर भी इसके नादरूप मे दीर्धत्ता आ जाती है। इसी दीर्घता को सागीतिक भाषा मे 'स्वर' कहते है। स्वर को सगीतशास्त्र मे भी अनुरणयुक्त (आसयुक्त) बताया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है ब्रह्मा जी को सर्वप्रथम प्रणव (ओम) रूप मे ब्रह्म की अनुभूति सांगीतिक स्वर के रूप मे ही हुई। वेद का ज्ञान प्राप्त करते समय सबसे पहले ओंकार की ध्वनि सुनायी पडी। 'छान्दोग्योपनिषद्' मे ऐसा वर्णन है कि - मनुष्य का रस - प्रधान अग वाणी है। वाणी का रस-सार ऋचा है। ऋचा का सार 'साम' है। साम का रस-सार उद्गीय (ओम्) है। अर्थात् 'ओम्' शब्द और स्वर (साहित्य तथा सगीत) का आदि तथा समन्वयात्मक स्वरूप है। स्पष्टत यह कहा जा सकता है कि सबसे पहले सागीतिक 'ॐ' स्वर के रूप मे अव्यय, अव्यक्त, निराकार ब्रह्म का अनुभव हुआ। बाइबिल मे भी सृष्टि के आदि मे शब्द ब्रह्म की स्थिति स्वीकार की गई है। इसीलिए ईसाई और मुसलमान अपनी प्रार्थना मे अमेन या आमीन कहते है। अमेन या आमीन शब्द ओंकार के ही रूपातर है। वैदिकों का सारा काम ओंकार से ही शुरू होता है। ऋषियो ने साम सप्तक मे सगीत के सात स्वरों का अन्वेषण किया। सगीत सास्त्रों मे षड्ज आदि स्वरों के अन्वेषक ऋषियों के नाम ज्ञात होते है। आचार्य मतग ने स्वरों की उत्पत्ति सामवेद

से माना है। आचार्य भरत ने भी नाट्य मे गीत का भाग सामवेद से आगत माना है। सगीत चूडामणि, सगीत रत्नाकर आदि मे भी साम से जातियाँ उत्पन्न मानी गई है।

'सगीत रत्नाकर' मे 'मार्ग' अर्थात् 'गाधर्व' को ब्रह्मादिकों द्वारा अन्वेषित तथा भरतादि आचार्यों द्वारा प्रयोग किया गया बताया है। अन्वेषण से तात्पर्य यह है कि गाधर्व के स्वरो का सामगान के स्वरों से सबध स्थापित करना तथा स्वरों को षड्जादि नामकरण प्रदान करना। स्वरों के देवता, ऋषि द्वीपादि सिद्धात मे इसी का विस्तृत विवेचन किया गया है। सगीत के शास्त्रकारों ने भारतीय सगीत की उत्पत्ति सामगान से स्वीकार किया है। मत्र के दृष्टा ऋषि, देवता छदादि सिद्धात जो वैदिक सिद्धात मे मान्य थे उन्हे गांधर्व में भी मान लिया गया। जगतपिता ब्रह्मा जी को 'ओंकार' के रूप मे प्रथम स्वर का सबसे पहले ज्ञान प्राप्त हुआ था। अत साम सप्तक के प्रथम स्वर का नाम 'प्रथम' रखा गया।

प्रथम स्वर को ही वेणु मे नारदीय शिक्षा मे मध्यम स्वर कहा जाता है। मध्यम को गाधर्व मे अविनाशी कहा गया है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय मद्रादि साम स्वरों को गाधर्व मे प्रयुक्त मध्यम गाधर आदि नाम दिया गया। सगीत शास्त्रों मे गाधर्व के सप्त स्वरों का सबध वैदिक स्वर सज्ञा उदात्त-अनुदात्त आदि से बताया गया है। नारदीय, याज्ञवल्क्य, माडूकी आदि शिक्षा ग्रथो मे सप्तस्वरो के सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।

स्वर सिद्धांत विवेचन :-

ऋषि, देवता, वर्ण, रग, द्वीपादि स्वरो के सिद्धातों का वर्णन संगीत ग्रथों मे किया गया है। ये कोरी कल्पना नहीं बल्कि यथार्थ है। इन सिद्धान्तों का विशेष अर्थ है। मत्र द्रष्टा अर्थात् मत्रो के दर्शन करने वाले को ऋषि कहते है। गान्धर्व

मे भी सर्वप्रथम स्वर का अनुभव या दर्शन करने वाले को ऋषि का सबोधन दिया गया है। अग्नि, ब्रह्मा आदि को स्वरों का ऋषि कहा गया है। यह कल्पना मात्र नहीं है। जिन ऋषियों ने स्वरों का साक्षात्कार सबसे पहले किया उन्हे ऋषि नाम दिया गया। देवताओ का नामोल्लेख भी ऋषियो के साथ है। स्वरों के देवताओं की कृपा से ऋषियों को स्वरों का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। गाधर्व के सप्त स्वर देवताओं की कृपा तथा ऋषियो की दीर्घकालीन तपस्या का परिणाम है। अलग-अलग द्वीपों मे स्वरो के साक्षात्कार का प्रयास किया गया। यही कारण है कि स्वरों के साथ द्वीपों का सम्बन्ध स्थापित हुआ। इससे एक विचार यह भी प्रस्तुत होता है कि सम्पूर्ण ससार को स्वरों की खोज का श्रेय है। सात के बाद आठवाँ स्वर नहीं खोजा गया। यह एक विचारणीय बात है कि आज का युग विकसित विज्ञान का युग है फिर भी ससार के किसी भी देश मे सगीत के सात स्वरों के अलावा आठवाँ कोई स्वर नहीं प्रयोग किया जाता। विकासवाद की आधुनिक विचारधारा के अनुसार सगीत के सात स्वरों के विकास मे हजारों वर्ष लगने की बात मानी जाती है। सर्वप्रथम कौन सा स्वर किसे और कहाँ अनुभूत हुआ इसका उत्तर विकासवाद भी नहीं दे पाया है। भारतीय चितन ही इस दिशा मे प्रकाश डालने मे सक्षम हुआ है। विकासवाद के अनुसार तानपूरे के षड्ज (मद्र) के तार से उत्पन्न गांधार के अनुभव को स्व0 उ0 अब्दुल करीम खाँ की देन माना गया है। विकासवाद इस बात को काल्पनिक मानता है कि सगीत के सप्तस्वरों का अनुभव ऋषि-महर्षियों को सर्वप्रथम हुआ। यदि स्व0 उ0 अब्दुल करीम खाँ स्वयभू गांधार का अनुभव कर सकते है तो प्राचीन काल मे सप्त स्वरों का अनुभव ऋषियों द्वारा क्यों नहीं किया जा सकता ? सात स्वरों के विकास का इतिहास यही है। स्वरो की उत्पत्ति अलग-अलग द्वीपों मे हुई, ऐसी विचारधारा संगीत दर्पण मे अभिव्यक्त है।

अनेक प्रकार के पशु-पक्षियो की बोलियों से भी सगीत के सात स्वरों की तुलना सगीत शास्त्र मे की गई है। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि सगीत के सप्त स्वर पशु-पक्षियों की वोलियों के ही मानवीय अनुकरण है। "षडज वदति मयूरो' अर्थात् षड्ज स्वर मे मोर बोलता है। प्रत्यक्ष षड्ज का पूर्व ज्ञान रखने वाला ही ऐसा कह सकता है। आचार्य मतग ने अपने 'वृहद्देशी' ग्रथ मे इस प्रसग का वर्णन करते हुए लिखा है -

'षडज वदित मयूरो ऋषभ चातकोवदेत् ।
अजा वदति गाधार क्रौचो वदति मध्यमम्।
पुष्प साधारणे काले कोकिल पचमं वदेत।
प्रावट्काले सम्प्राप्ते धैवतंददुरो वदेत् ।।
सर्व चतयोदवि । निषाद वदते गज ।"[1]

अर्थात मयूर षड्ज मे, चातक ऋषभ मे, बकरी गाधार मे, क्रौंच मध्यम, बसत ऋतु मे कोकिल पचम में, प्रावृट्काल (वर्षाकाल) मे दादुर धैवत तथा हाथी निषाद मे बोलता है। 'नारदी शिक्षा' मे गौ का ऋषभ मे बोलना बताया गया है। जैन ग्रथ ठाणागासुत्त मे ऋषभ का कुक्कुट से (जगली मुर्गा), गाधार का हस से, मध्यम का गौ से तथा निषाद का सारस से सम्बन्ध स्थापित किया गया है। नान्यभूपाल कृत 'भारत भाष्यम्' मे भी किचित भेद के साथ मोर, साड, बकरी, कौंच, कोयल, घोडे तथा हाथी की कठ ध्वनि का सगीत के स्वरों से सम्बन्ध दर्शाया गया है। प्रो0 ललित किशोर सिह ने अपने ग्रथ 'ध्वान और सगीत' में कहा है कि 'पशु-पक्षियों की कठध्वनि का ध्वन्याकन करके

1- भारतीय संगीत शास्त्र - तुलसीरामदेवागन - म0प्र0 हिन्दी ग्रथ अकादमी, पृ0 6

परीक्षण करना चाहिए। यह तो निर्विवाद सत्य है कि भावावेश तथा सामान्य अवस्था की कठध्वनि ग विशेष अतर है।'[1]

विशेष प्रकार के रंगों से भी स्वरों का सम्बन्ध सगीत शास्त्र मे वर्णित है। नवम्बर 1993 मे सगीत पत्रिका मे श्री हीरेन्द्र कुमार वसु का लेख रग और सगीत' प्रकाशित हुआ है। उसमे स्वरों के वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चार विभाजन किये गये है। यह विभाजन श्रुतिसख्या के आधार पर है। चतु श्रुतिक षड्ज, मध्यम, पचम को ब्रामण, त्रिश्रुतिक ऋषभ, धैवत को क्षत्रिय, द्विश्रुतिक गाधार, निषाद को वैश्य तथा साधारण अतर स्वरों को शूद्र कहा गया है। समाज को सुचारू रूप से चलाने के लिए जिस प्रकार चार वर्णों मे बाँटा गया और सभी का परस्पर उचित सहयोग अपेक्षित है। उसी प्रकार वादन की क्रिया मे सभी स्वरों का उचित सहयोग आवश्यक है। 'सगीत रत्नाकर' के टीकाकार आचार्य सिह भूपाल के अनुसार वर्ण, देवतादि सिद्धांतो का निरूपण स्वरोपासना हेतु उपयुक्त है।

निष्कर्ष रूप मे कह सकते है कि सगीत ग्रन्थों तथा वैदिक साहित्य के आधार पर सगीत की उत्पत्ति 'प्रणव' (ओंकार) से मानी गई है। नाटात्मक ब्रह्म का नाम प्रणव (ओंकार) है। ब्रह्म के नि श्वास रूप वेदों का ज्ञान पितामह ब्रह्मा को प्रणव से ही प्राप्त हुआ। सामवेद के मत्रों का स्वर युक्त ज्ञान भी ब्रह्मा को ब्रह्म (परमात्मा) से ही प्राप्त हुआ। गान्धर्व की दृष्टि से साम स्वरों को षड्जादि सप्त स्वरों के नाम से ऋषियों ने प्रचलित किया। गायन-वादन की विविध विधाओं मे इन्हीं सात स्वरों का प्रयोग किया गया। लौकिक सगीत मे उन वैदिक सिद्धांतों का प्रयोग किया गया

1- भारतीय सगीत शास्त्र - तुलसीरामदेवागन - म0प्र0 हिन्दी ग्रथ अकादमी, पृ0 - 6

जो शिक्षाग्रथों की परम्परा से प्राप्त हुए। सगीत की उत्पत्ति से विस्तार तक का सम्पूर्ण इतिहास स्वरों के नाम, रग, वर्ण, ऋषि, देवता, द्वीपादि के विचार मे समाहित है। गान्धर्व का निर्माण ऋषियों द्वारा वैदिक सगीत के अन्वेषण के आधार पर हुआ। कालक्रमानुसार देशी सगीत रजन पक्ष की प्रधानता के साथ गाधर्व के नियमों मे किचित परिवर्तन करके प्रचार मे आया। सृष्टि के रचयिता के रूप मे समस्त ज्ञान-विज्ञान ईश्वर को स्वीकार करते है। भारतीय परम्परा मे आज भी ऐसा प्रचुर साहित्य उपलब्ध है जो सगीत की उत्पत्ति और सृष्टि की उत्पत्ति मे पारस्परिक सबध को मानता है। ईश्वर सृष्टि का रचयिता है अत सृष्टि सचालन का दायित्व भी ईश्वर का है। उसके इस दायित्व की पूर्ति वैदिक ज्ञान के द्वारा हुई है। वैदिक ज्ञान के अतर्गत विविध कलाएँ एव विधाएँ विद्यमान है। यह वैदिक ज्ञान ब्रह्माजी को ब्रह्म से और ब्रह्मा के द्वारा अन्य ऋषि-महर्षियों को प्राप्त हुआ। ऋषियों के द्वारा इसी ज्ञान का प्रचार-प्रसार एव विस्तार हुआ। अनेक युगों से यह परम्परा अबाध गति से प्रवाहित होती जा रही है।

विकासवादी दृष्टि में सृष्टि एवं संगीत का उद्‌भव :-

वेदों के अनुसार सृष्टि की रचना परमात्मा के द्वारा की गई। नाद ब्रह्मय ओंकार ही सगीत के सातों स्वरों का आदि रूप है। सगीत के सप्त स्वरों को ही परमपिता परमेश्वर की आदि वाणी कहा गया है। यह शब्द एव स्वर दोनों है। क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर नामधारी पचभूतों का जब अस्तित्व भी इस ससार मे नहीं था उस समय भी 'ओंकार' का नाद विद्यमान था। वास्तव में वैदिक मतानुसार सगीत की उत्पत्ति पचभूतों से भी प्रचीन है। पचतत्व का अर्थ है जड़ पदार्थ। इन पचतत्वों की स्थिति के पश्चात् विकासवादी विचारधारा की स्थापना हुई है। विकासवादी चितन

के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति जड़ पदार्थों के आकस्मिक गयोग से हुई है। यह किसी के द्वारा रची नहीं गई। विकासवादी विचारक 'ईथर' को प्राकृतिक पदार्थों का मूलकारण मानते है। ईथर की तरगों से ही विद्युत, प्रकाश, शब्द और गर्मी उत्पन्न होते है। 'इलेक्ट्रोन' उसी ईथर के अतिसूक्ष्म कण है जिनके सघात से विद्युत निर्मित होती है। स्थूलाकार मे यही शक्ति 'मैटर' कही जाती है। मैटर की त्रि-दशाओं को क्रमश 'गैश' (विरल दशा), लिक्विड (तरल दशा) और सालिड (ठोस दशा) कहा जाता है। ईथर-जनित यही पदार्थ सगठित होकर एव आकर्षण-विकर्षण के नियम से चक्राकार गति मे परिणत हो जाते है। कालान्तर मे यही चक्र 'सूर्य' का रूप ले लेता है, जिसमें ऊष्मा एव गति के कारण चक्कर पड़ जाते है जबकि कतिपय अश पृथक-पृथक हो जाते है, फलत ग्रहों का रूप ले लेते है। इन्हीं ग्रहों से उपग्रहों का निर्माण होता है, 'पृथ्वी' भी इसी प्रकार का एक ग्रह ही है, जो पहले काफी उष्ण (गर्म) थी फिर क्रमश ठडी होती गयी। वाष्प, पानी, बादल, समुद्र, भूमि एवं जीवों का प्रादुर्भाव भी उसी से हुआ, यही नहीं वनस्पति एव जन्तुओं के भी पहले चेतनता उद्‌भूत हुई। उसी की एक शाखा एक कोष्ठधारी 'अमीबा' कहलायी। फिर अमीबा का प्रभूत विस्तार होता गया जिससे भोजन की समस्या उत्पन्न हुई और उनमे जो अधिक शक्तिशाली थे, वे बच गये। किन्तु इनमे पारस्परिक सघर्ष होता रहा और अतत काल एव परिस्थिति के अनुसार आकार-प्रकारों मे परिवर्तन होता गया, जिसके फलस्वरूप ही मछली, मेढक, सर्प, पक्षी, पशु, बंदर, वनमानुष तथा मनुष्य का आविर्भाव हुआ। सृष्टि की उत्पत्ति एव विकास का विकासवादी दृष्टिकोण मे यही स्वरूप विवेचित है, अर्थात् अमीवा से लेकर मानव तक विकास एव परिवर्तन की यही क्रमिक कहानी है। अमीवा ही पशु, पक्षी, सर्प, चींटी इत्यादि जीव-जन्तुओं का उद्‌भव स्थल अथवा स्रोत है।

इस प्रकार विकासवादी दृष्टि मे सृष्टि सम्बन्धी जितनी विचार धाराये है उनसे यही घोषित होता है कि सृष्टि किसी विशिष्ट (व्यक्ति या वस्तु) की रचना न होकर भौतिक पदार्थों का सघटन है। विकासवादी दृष्टिकोण के अनुसार आदिमानव की बुद्धि विकसित नहीं थी, वह अज्ञानी एव जडता युक्त था जिसे सभ्य बनने मे लाखों वर्ष लगे। पुराकान मे आदिम मनुष्य परस्पर सकेतों का आश्रय अपने हाव-भावों को प्रकट करने मे लेता था, क्योंकि उनकी कोई भाषा विशेष न थी। कालान्तर मे उसने विभिन्न प्राकृतिक वस्तुओं से शब्दों की प्रेरणा प्राप्त की। वह विभिन्न पक्षियों की आवाजों, वस्तुओं के टकराहट से उत्पन्न ध्वनियों, बादल की गडगडाहट नदियों, झरनों के कल-कल निनाद से आकर्षित हुआ और नदनुरूप अपने मुख से अनेक प्रकार की विचित्र आवाजें निकालना आरभ किया। इस प्रकार क्रमश भाषा का विकास हुआ। अपने मुह से निकलने वाली ध्वनि से आदिमानव विस्मित हुआ और अन्यान्य तरह की बोलियों का प्रयास करने लगा, और उसकी यही चेष्टा उसकी शब्दमयी प्रेरणास्रोत बनती गयी। तात्पर्य यह कि इन्हीं विविधश वाह्याभ्यान्तर सुप्तयत्नों से स्वरों मे माधुर्य निष्पादित हुआ जिसका उसे भान हुआ, और सज्ञानता की स्थिति मे यही उसके लिए सुमधुर संगीत के रूप मे प्रतिफलित हुए। सांगीतिक स्वरों की मधुरता से उनमे एक नवीन चेतना जाग्रत हुई और फिर दो-तीन-चार स्वरों की क्रमिक सगति से गीत-सगीत का श्रीगणेश हुआ, सुर लहरी विकसित हुई।

मानव के पास संभवत सर्वप्रथम उसका कठ और उसके दोनों हाथों का सम्पर्क यही ध्वनि निष्पान के प्राथमिक साधन थे। बाद मे उसे वस्तु पर आघात करने से निकलने वाली आवाज का आभास हुआ होगा। अत कह सकते है कि प्रथमत दो हाथ की तालियों, दो प्रस्तर-खडों की टकराहट से उत्पन्न, ध्वनि का विकास हुआ

होगा। प्रारभिक धातु युग मे धातु के दो टुकड़ों के परस्पर आघात से उत्पन्न ध्वनि को सुनकर धनवाद्यों के बनाने का विचार मानव मन मे कौंधा होगा। यही प्रासगिक प्रतीत होता है। घनवाद्यों के उपरान्त धर्मवाद्यों का निर्माण हुआ और फिर सुविर एव ततुवाय निर्मित हुए। आज की बडे आकार वाले एव अधिक आवाज उत्पन्न करने वाले वाद्य जगली आमि जातियों द्वारा प्रयोग मे लाये जाते है। इस बात से स्पष्ट होता है कि सुमधुर ध्वनि निकालने वाले चर्म, सुषिर, ततु इत्यादि घनवाद्य और सप्त-स्वरों का गीतों मे प्रयोग की प्रक्रिया सभ्यता के उष काल की देन है। जबकि सभ्य समाज के निर्माण के पहले ही गायन, वादन एव नृत्य मनोरजन के प्रमुख साधन थे। सगीत की प्राचीनता एव सार्वभौमिकता सर्वथा निरापद है। वस्तुत सगीत की लोकप्रियता एव सार्वकालिकता जगली जातियों की प्रथाओं-परपराओं मे आज भी सिद्ध होती है। इन जातियों मे गाने, बजाने और नाचने की प्रथा अद्यपि दृष्टिगत होती है।

वस्तुत अभिनय कला का प्रचार नृत्य से पूर्व हुआ है, यह बात हमे पशु पक्षियों द्वारा किये गये कार्यकलापों के साथ ही मानव के विभिन्न अगो की भावभंगिमाओं इत्यादि से स्पष्ट ज्ञात होती है। मनुष्य के सामान्य व्यवहार मे आंगिक चेष्टाओं का स्वाभाविक उपयोग दिखाई देता है। क्रोधावेश मे मुख का रक्तिम होना, भृकुटियों का तन जाना, अत्यधिक प्रसन्नता मे हँसना एव अश्रु-वर्षण, मधुर बोली इत्यादि मानव जनित सहज एव स्वाभाविक लक्षण है जो पहले प्रकट होते है।

गायन कला की उत्पत्ति एव सहज विकास के कई क्रमिक सोपान अथवा स्तर परिलक्षित होते है, यथा सर्वप्रथम, गुनगुनाने की प्रकृया प्रारभ होती है, फिर अनेक निरर्थक शक, जैसे नाइना, लाडलाड, हूँ-हूँ इत्यादि उच्चरित होते हैं, इसके पश्चात् सार्थक शब्द समूहों का गान होता है फिर शब्द स्वर और लय के सामूहिक प्रयोग

को गीत-सगीत का रूप दिया जाता है। गीत-सगीत के एक प्रमुख घटक 'लय' के सम्बन्ध मे भी यही तथ्य निकर्षित होता है कि आदिमानव को क्रमश. लय का आभास, उसके स्वयं के पदचापों से, श्वास-प्रश्वासों से, नाडी के टिकटिक स्वरों से हुआ होगा। यही लयबद्धता शब्दोच्चारण के साथ सम्बद्ध हुई, तदनन्तर इसका गायन के साथ तादात्म्य किया गया होगा। इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप छोटे-छोटे तालो का सृजन हुआ होगा। एक, दो तीन स्वरों के विकास क्रम मे सात स्वरों का विकास फिर सप्तकों का विकास हुआ। इसके बाद अन्यान्य स्वर भेद होते गये, स्वर युग्म बनते गये, अनेक प्रकार के ध्रुवों की रचना इन्हीं स्वरसगतियों के सामूहिक प्रयोग से की गयी होगी।

विकासवादी दृष्टिकोण के जनक चार्ल्स डार्विन का कहना है कि पशु-पक्षियों की ध्वनि मे भी स्वरों के अलग-अलग स्वरूप प्राप्त होते है। कुत्ते पालते होने के बाद चार या पांच स्वरों मे भौंकने की ध्वनि करते है। उनके रोने मे स्वरों का उतार-चढ़ाव स्पष्टत सुना जा सकता है। घरेलू मुर्गे कम से कम एक दर्जन स्वर स्वरों मे बोलते हुए पाये जाते है।"[1]

वैज्ञानिकों की धारणा है कि पक्षीगण संगीत का उपयोग निराशा, भय, क्रोध, विजय अथवा आनद-भाव के रूप मे करते है। ऐसा देखा जाता है कि प्राय परपशु मैथुन की ऋतु मे भावों का गीतों के माध्यम से प्रकटीकरण करते है। सभवत विकास के आदिग युग मे क्रोधादि उत्तेजनात्मक स्थितियों मे कठ के अनेकश प्रयोग से नर का कंठ-रज्जु लक्ख हो गया। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि संगीत का विकास पशु पक्षियों

1- ध्वनि और सगीत, पृ0 - 132

से लेकर मानव तक विभिन्न भावों के प्रकटीकरण हेतु अनेक तरह की ध्वनियों के रूप मे हुआ है। अनेक भाषाविदों की मान्यता है कि सगीत का उद्भव भाषा की उत्पत्ति से पूर्व हुई · मैम्सयूलर प्रभृति विद्वानों के अनुसार स्वर सघातों के माध्यम से भावों को व्यक्त करने मे जब कठिनाई प्रतीत हुई तब भाषा की उत्पत्ति हुई। अफ्रीका के हवसी जाति के लोग उत्तेजित दशा मे सगीत के माध्यम से ही वार्तालाप करते है। इसी प्रकार आदिम जातियो मे पहले समूह संगीत और आगे चलकर प्राच्य सगीत विकसित हुई।

सगीत के उद्भव के विकासवादी तथ्यों के आधार कहा जा सकता है कि पशु-पक्षियों के कंठों से नि सृत ध्वनियों मे आरोह-अवरोह, अर्द्धस्वर-अतराल, स्वर संघातों के प्रयोग आि पर विचार आज के विकसित मानव से संभव है, किन्तु आदिमकालीन अविकसित मानव मस्तिष्क ने किसी भाषा विशेष के विकास के बिना इन पर कैसे विचार किया होगा, यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है। वस्तुत मानसिक विचारमथन मे बिना किसी सात भाषा के कुछ भी सभव नहीं है, अमीबा से क्रमानुसार मानवीय प्रगति की गाथा को यदि मान्यता दी जाय तो प्रश्न उठता है कि विभिन्न पशु-पक्षियों के स्वतत्र जन्म-मृत्यु के प्रत्यक्ष प्रमाण का क्या होगा ? क्योंकि आज भी हम देखते हैं कि अनेक विद्वानों की सतानें मदबुद्धि वाली होती हैं जबकि अनेक गवारों की सताने विद्वान निकलती है। इस स्थिति में मानव एव बौद्धिक विकास के उक्त सिद्धान्त का स्वत खडन हो जाता है।

भाषा वैज्ञानिक मैक्समूलर महोदय ने 'साइंस आफ द लैगुवेज' में मिस्र के शासक सामिटकर द्वारा दो बच्चों को गडरियों को देने की घटना का उल्लेख किया है, जिन्हे सिर्फ पशुओं की भाषा सुनने को बाध्य किया गया था वही बालक बड़े होने पर अ इ उ के अतिरिक्त कुछ भी बोलने मे असमर्थ साबित हुए। केडरिक द्वतीय, जेम्स चतुर्थ तथा

अकबर आदि ने भी कतिपय ऐसे ही प्रयोग किये थे।[1] वस्तुत मनुष्य के जीवन मे सीखने-सिखाने की प्रकृया का महत्व अक्षुण्य है, सीखने के लिए किसी न किसी गुरू की आवश्यकता पडती है , यही बात सगीत शिक्षा पर भी लागू होती है।

विकासवादी दृष्टि मे सगीत का प्रारंभिक इतिहास अत्यन्त प्राचीन है जो मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ ही विकसित होती गयी। 'हैनसन' ने अगस्त 1923 के 'थियोसोफेकरा पाथ' मे लिखा है कि नेवादा मे जॉन टी रीड को एक आदमी का पगचिह्न और जूते का तल्ला प्राप्त हुआ, जिसे भूगर्भ वैज्ञानिकों ने 50 लाख वर्ष पुराना माना है। विकासवादी धारणा है कि मनुष्य को जूता पहनने का ज्ञान बहुत बाद मे हुआ होगा। इस प्रकार यदि मनुष्य का प्रादुर्भाव इस विचार से यदि आज से एक करोड वर्ष पहले माना जाय तो उस अवधि के कुछ बाद सगीत का भी उद्भव हुआ होगा। विकासवादी मत के अनुसार आदिमकाल के मानव की स्थिति विकसित नहीं थी अत भाषा इत्यादि माध्यमों के विकास हेतु हजारों लाखों वर्ष लगे होंगे। जबकि इसके पूर्व पारस्परिक वार्तालाप का माध्यम प्रतीकात्मक ध्वनियाँ थीं। यही सांकेतिक प्रतीकात्मक ध्वनिया सागीतिक स्वरों के आरंभिक रूप माने जा सकते है। मानवीय ज्ञान के विकास के क्रम मे यही ध्वनियाँ संगीत रूप मे विकसित होती गयीं।

भावाभिव्यक्ति के साधन रूप में संगीत :-

सगीत की सुमधुर स्वरवालियों का उद्भव मानव की सहज भावाभिव्यक्ति का प्रतिफल है। इस सन्दर्भ मे अनेक तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं। महर्षि बाल्मीकि द्वारा क्रौञ्च पक्षी के मारे जाने से तत्क्षण करूणार्द्र शब्द समूहों का श्लोकबद्ध उच्चारण

1- मार्क्सवाद और रामराज्य, प्र0 204.

उल्लेखनीय है। 'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम, शाश्वती समा , यत्क्रौञ्चमिधुनादेक्रमवछी काम योहितम् ।। अत यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि किसी के मुख से सागीतिक स्वरों का उच्चारण भी इसी प्रकार सजह सभाला है। व्यावहारिकता के धरातल मे देखें तो प्राय लोग गाते गुनगुनाते हुए पाये जाते है, चाहे वह भारी मन को हल्का करने के निमित्त हो अथवा आनद की अभिव्यक्ति के लिए हो। आचलिक लोक गीतों में हर्ष या दु खातिरेक की अनुभूति का विशिष्ट महत्त्व होता है। अत मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह समीचीन लगता है कि आदिम काल मे भी सगीत का उद्भव इसी प्रकार भावानुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए हुई होगी।

संगीत कला के शुभारम्भ के सम्बन्ध मे कह सकते हैं कि गायक हृदय को गाने के लिए अनेक प्राकृतिक नैसर्गिक सुखमए से प्रेरणा प्राप्त हुई होगी . वह नि संदेह मयूर का मोहक मनभावन नर्तन या फिर कोकिस की सुमधुर आवाज तथा अन्य गाने वाले पक्षियों के कठ से अभिव्यक्त स्वर-समूहों से प्रेरित हुआ होगा। व्यक्ति के भीतर नृत्य के गुण जन्मजात पाये जाते हैं , उसके सहज लयबद्ध थिरकते पाँव, बैंगा-भूटिया जैसी जंगली जनजातियों के गीतों में प्राप्त मादक लयात्मक, षड्जा पचम भाव आदि से विवादित स्वरलहरी उसके संगीतमयी अभिव्यक्ति को ही निदर्शित करते है। मानवमन मे बसे सांगीतिक सस्कार संवेदना से नि स्तत स्वर समूह श्रोता को सराबोर कर ही देते है।

नाद से चित्रवृत्ति का अनुमान प्रमाणित होता है, जैसा कि आचार्य अभिनवगुप्त ने लिखा है - तथा च मृगसारमेयारपि नादमाकर्ण्य भपरोषशोकादि प्रतिवद्यते तदर्थं नादाच्चित वृत्पाद्यव गमोऽनुमान पावत्।

अर्थात् मृग, कुत्त इत्यादि अन्य प्राणियो के नाद को सुनकर भी उनके हृदय मे स्थित भय, रोष, शोक इत्यादि का प्रतिभाष हो जाता है।[1]

विविध रमणीय, प्राकृतिक दृश्यों से विभोर होकर ही कवि हृदय काव्य की अभिव्यक्ति एव सगीत हृदय व्यक्ति सगीतमयी अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख होता है। उषावेला की मनोरम लालिमा एव सूर्योदय किरणो का प्रकीर्णन भावुक हृदय म नृत्यागना का भावभागेमा की सर्जना करते है। बासतिक बेला मे विविध विध खिले सुरभि सुमनों एव वियोगी बिछुडे प्रिय से मिलने के लिए व्याकुल हो उठता हो फलत सगीतात्मक प्रकट होने लगती है।

जहाँ एक ओर भारतीय विद्वान सगीत को मानसिक वृत्तियों के उद्घाटन के सबल माध्यम होने की पुष्टि करते है वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वान भी इस बात से सहमत है, 'स्प्रिट ऑफ म्यूजिक' के लेखक अनेट हट का विचार है कि 'सगीत केवल सामान्य ध्वनि नहीं है।" श्री न्यूलैंड स्मिथ के विचार से -

Art is the manifestation of spritual by means of the material.[2]

उक्त दृष्टिकोण के आधार पर सगीत भावाभिव्यक्ति के सबल साधन रूप मे प्रतिष्ठित होती है। लेकिन स्वर या नाद मे यद्यपि भावाभिव्यजना तो होती है फिर भी उसका अर्थ स्पष्ट समझ मे नहीं आ पाता, क्योंकि स्वर हमारी देनन्दिन भाषा नहीं होती है। व्यावहारिक जगत मे दृष्टिगत नाद के चढाव उतार को गीत की सज्ञा नहीं

1- भारतीय सगीत वाद्य, पृ0 2 से उद्धृत

2- वही, पृ0 2 से उद्धृत

दी जा सकती। नाद जब नियमित होता है तभी स्वर कहलाता है, तत्पश्चात् दो स्वरों के मध्य अन्तराल ध्वनि सिद्धान्त के अनुकूल होने पर ही षड्ज, ऋषभ, गान्धार आदि का उद्भव होता है। इन्हीं रजक स्वर समूहों से गीत-धुन एव विभिन्न रागों का सृजन होता है। इस इति से भावव्यजक स्वर समूह 'सगीत' नाम की सार्थकता प्रतिपादित करते है।

सगीत की प्राचीनता के विभिन्न साक्ष्य -

सगीत की प्राचीनता के सम्बन्ध मे हमे विभिन्न प्रागैतिहासिक, पुरातात्विक एव ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त होते है। सुमेरियन एव सिन्धु सभ्यता कालीन उत्खनन से तत्युगीन सागीतिक मूर्तिया एव वाद्य यत्र प्राप्त हुए है। ईसा पूर्व 3000 वर्ष का सुमेरियन हार्प का चित्र मृभाडों पर उत्कीर्ण मिले है। यही नहीं सुमेरियन हार्प का एक नमूना भी ई0पू0 2500 का प्राप्त हुआ है। मिस्र एव ठीक सभ्यता के हार्प वीणा के चित्र आज उपलब्ध है। सिधु सभ्यता मे भी ऐसे अनेक साक्ष्य प्राप्त हुए है जिनमे रोवर 1500 ई0पू0 के एक वीणा वादग सगीतज्ञ की मूर्ति उल्लेखनीय है, जो विवधी वीणा का प्राचीन रूप कहा जाता है। मोहन जोदडो के उत्खनन से मिली नृत्यागना की मूर्ति महत्वपूर्ण है। वीणा व पणव वाद्यों के चित्र व समूह मे वादन रत मूर्तिया साँची (150 ई0पू0) भरहुत (200 ई0पू0) चित्तौडगढ़ तोपखाने से 600 ई0पू0 से प्राप्त हुई है।

वैदिक वाडमय और रामायण महाभारत युगीन अनेक सगीतो-सत्वों व तत्युगीन वाद्य यत्रो के साक्ष्य प्राप्त होते है। सगीत की उत्पत्ति का काल आधुनिक इतिहासविदों की दृष्टि मे भी ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व, पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर भी और वैदिक गणनानुसार अरबो एव करोडों वर्ष पूर्व निश्चित होता है। 'भू-विज्ञान'

के अनुसार यदि जीवों की रचना 300 करोड वर्ष पूर्व हुई तो सृष्टि की प्राचीनता भी इतनी ही सिद्ध होती है। जीवों की उत्पत्ति के 100 करोड वर्ष बाद भी यदि मानव की उत्पत्ति मानी जाय तो आज से 150 या 200 करोड वर्ष पूर्व सगीत की उत्पत्ति गानी जा सकती है।

सगीत की उत्पत्ति के शास्त्रीय सन्दर्भ :-

नाट्यशास्त्र आचार्य भरत ने नाट्योत्पत्ति के सन्दर्भ मे जो विवेचन किया है तद्नुसार 'वैवस्वत मन्वतर मे त्रेतायुग के प्रारभ होने के पश्चात् इद्रादि देवताओ ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना की, कि ससार की शांति के लिए आप दृश्य एव श्रव्य क्रीडनीयक (कला) का सृजन करे। उस प्रार्थना से चारों वेदों के आधार पर नाट्यकला का सृजन प्रजापिता ब्रह्मा ने किया और उसे आचार्य भरत को सिखाया। नाट्यकला मे गान-वाद्य की भूमिका महत्वपूर्ण होती है अत इस अनिवार्यता को समझते हुए ब्रह्मा ने स्वाति और नारद नामक आचार्यों को क्रमश वाद्य और गान मे सहयोग देने हेतु शिव्यों के सहित नियुक्त किया। अत स्पष्ट होता है कि नाट्यकला से पूर्व गान-वाद्य की कला विकसित हुई थी। ब्रह्माजी ने सामगान से गीत सम्बन्धी विषयों, स्वरों आदि को ग्रहण किया था - 'सामव्यो गीतमेव च'[1] पितामहब्रह्मा जी ने भरत को केलाश पर्वत पर भगवान शकर के समक्ष नाट्य कला को प्रदर्शित करने का आदेश दिया। तद्नुसार भरत ने 'त्रिपुरदाह' नाट्य का प्रदर्शन भगवान शकर के सामने प्रस्तुत किया जिसे देखकर उन्होंने भरत को नाट्यकला मे नृत्य का भी समावेश करने की प्रेरणा दी, जिसकी रचना स्वय शिव ने पहले की थी, नृत्य के समावेश से नाट्य और भी मनोरजक हो जायेगा। यही नहीं शिव ने यह भी कहा कि मेरे शिष्य नदी (तण्डु) से उसकी शिक्षा ग्रहण करो।

उक्त प्रसग से गीत, वाद्य एव नृत्य की ब्रह्म परपरा से शकर परपरा की भिन्नता का आभास होता है। भरत के नाट्यशास्त्र मे इस बात की सपुष्टि होती है।

शृ ्त्वा भगवतादत्तारनाण्डवे मुनये तदा

तेनापि हि तत सम्यग् गान भाण्ड समन्वित ।।

×× नृत्य प्रयोग सृष्टो य स ताण्डव इति स्मृत ।

आचार्य दत्तिल के 'दत्तिलम' नामक ग्रन्थ मे उल्लिखित है कि ब्रह्मा द्वारा प्रवर्तित गानवाद्य को नारद ने लोक प्रचलित किया -

गान्धर्व नारदादिभ्य प्रत्यमादौ स्यम्भुवा।

विविवलारदेनाघ पृथित्यामवतारितम् ।।

'वृहद्देशी' के प्रणेता आचार्य मतंग ने देशी व मार्ग संगीत की उत्पत्ति शकर के मुख से बतायी है। महादेव मुखोद्भूतान देशी मार्ग च संस्थितान ।88। 'नदिकेश्वर तारिका' एव 'रुद्रडमरूद्भव सूत्र' के अनुसार 'नटराज शिव ने नृत्य समाप्ति के अनतर सनकादि सिद्धों के उद्धारार्थ चौदह बार डमरू की वादन किया उसी से व्याकरण के चौदह मूलभूत् सूत्रों की उत्पत्ति हुई, जिनके प्रथम सूत्र 'अ इ उ ण्' से 'स रे ग' इन सागीतिक स्वर सम्बद्ध है -

'अइउण् सारेगा स्मृता ' [1]

सगीत एव अन्य विधाओं के आद्याचार्य हमारी भारतीय परपरा मे ब्रह्मा एव विश्व को माना गया है और कहीं 'भगवती' (शक्ति) को भी उसका श्रेय दिया जाता है। कल्पभेदानुसार इनकी भूमिका भी परिवर्तित होती रहती है।

1- प्रणवभारती - द ओंकार नाथ ठाकुर, पृ0 23

सगीतोत्पत्ति के सन्दर्भ मे एक फारसी आख्यान भी उल्लेखनीय है, जिसके अनुसार 'खुदा के भेजे हुए फरिश्ते की कृपा से प्राप्त पत्थर के, वर्षा की धाराओ से सात टुकड़े होने से सात स्वर-ध्वनिया आर्विभूत हुईं जिसे हजरत मूसा ने आत्मसात कर लिया। तात्पर्य यह कि सप्तस्वरों की सप्राप्ति मे खुदा की मेहरबानी प्रमुख कारण बनी। इस कथा के मूल मे हमे भौतिक सिद्धान्त की भी झलक मिलती है जिसके अनुसार दो वस्तुओं के परस्पर सघर्ष से ध्वनि उत्पन्न होती है। इस प्रकार सगीतोत्पत्ति के अनेक मत मतान्तर प्राप्त होते है।

ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से आदि सप्तक - प्रमाणिकता .-

ध्वनिशास्त्र मे विवृत्त आदिम सप्तक ही पाश्चात्य दृष्टि का 'नेचुरल स्केल' है। वर्तमान उत्तर भारतीय शुद्ध स्वर सप्तक भी इससे मिलता जुलता है। दोनों मे मात्र धैवत स्वर के स्थान मे भिन्नता दृष्टिगत होती है। पाश्चात्य सप्तक का धैवत् 400 कम्पन्न सख्या का है जबकि भारतीय सप्तक बिला वल का धैवत् 405 कम्पन्न सख्या का है। षड्ज से विलावल के धैवत का इष्ट सवाद नहीं है परन्तु पूर्वांग के ऋषभ से षड्ज पचम भाव का सवाद धैवत से होता है, इस दृष्टि से उसका प्रयोग बिलावल मे किया जाता है। 'नेचुरल स्केल' के सन्दर्भ मे ऐसा कहा जाता है कि जिस ग्राम के स्वर मुख्य स्वर षड्ज से । से 6 इष्ट आर्वतकों से बने हात है उसे 'आवर्तक ग्राम' या 'प्राकृतिक ग्राम' कहते है।[1] इस आर्वतक का आशय है षड्ज स्वर से सप्तक के अन्य स्वरों का इष्ट सम्बन्ध या संवाद, यथा,

सप (3/2) सम (4/3), सग (5/4), सघ (5/3)[2]

1- ध्वनि और सगीत, पृ0 90

2- वही, पृ0 112

ऐसा कहा जाता है कि इस प्राकृत ग्राम के स्वर मनुष्य, पशु और पक्षियों के कठ से अनायास ही निकलते है, क्योंकि इनका आधार प्राकृतिक अभिव्यक्ति है। वैज्ञानिकों की द्रष्टि मे यह शुद्ध, प्रामाणिक और आदिम ग्राम है। इसके प्रत्येक स्वर का षड्ज से आवर्तक सम्बन्ध है।

इसमे तीन प्रकार के अतराल प्राप्त होते है -

(1) 9/8 अर्थात् चतु श्रुतिक, (2) 10/9 त्रिश्रुतिक, (3) 16/15 अर्थात् द्विश्रुतिक।

यथा-	स	रे	ग	म	प	ध	नि	स
	9/8	10/9	16/15	9/8	9/8	10/9	16/15	

किन्तु सभी के लिए व्यावहारिक रूपेण यह नियम नहीं लागू हो सकता क्योंकि जिनका कठ सुरीला नहीं है उनके कठ से तो प्रयत्नपूर्वक भी इस सप्तक के स्वरों को शुद्धता पूर्वक गवाना सभव नहीं हो पाता। इसके विपरीत विलावल मेल के स्वरों से अधिक सरलता से काफी मेल व भैरव मेल के स्वर कठ से गाये जाते है। सुरीले कठ से तो तोडी मेल के स्वर भी सहज ही अभिव्यक्त होते है। दक्षिण भारत में गायन की शिक्षा ही भैरव मेल के स्वरों से प्रारभ की जाती है। आदिम जाति के सामूहिक गीतों षड्ज पचम भाव व षड्ज मध्यम भाव के स्वर सवादों की सहन प्रयोग स्वाभाविक ही सुनाई पडता है। छत्तीसगढ़ की वैगा जाति के समूह गीत मे पुरूषों को षड्ज और स्त्रियों को शुद्ध पचम से एक गीत की व्यक्तियों को क्रमश गाते हुए सुना गया है। स,प,स,म का सम्वाद प्राय सभी देशो के सगीत मे मिलता है। अत कह सकते है कि सम, सप के सवाद ही प्राकृतिक हैं। आचार्य भरत ने भी इनकी चर्चा की है। सामसप्तक का प्रथम स्वर भी मध्यम ही है, जिसे उन्होंने अविनाशी कहा है।

प्रो0 ललित किशोर सिह ने ग्राम रचना की (1) प्राकृतिक, (2) चकिक और (3) सक्रमिक-प्रकृयाओं का उल्लेख किया है। उनके अनुसार ऐतिहासिक दृष्टि सह यह क्रम विपरीत होना चाहिए सक्रमिक क्रिया का अधिकार क्षेत्र सर्वाधिक व्यापक और सार्थक है क्योंकि इसमे प्राकृतिक और चक्रिक प्रक्रियाओं के सभी अतरालों का उपयोग होता है।

अत गणितीय दृष्टिकोण से इसे प्राकृतिक सप्तक कहना तो सभव है किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से सहज नहीं प्रतीत होता है। प्रयोग के आधार पर विपरीत परिणाम भी प्राप्त होते है।

वस्तुत हजारों-करोडो वर्ष पूर्व के किसी आमि मानव का मिलना जितना असभव है उतना ही असभव उस काल के सगीत का ज्ञान अर्जित करना है। अत पूर्ण प्रामाणिक तौर पर यह कहना कठिन है कि सगीत का आदिम सप्तक यही है।

सृष्टि से सम्बर्द्धन मे सागीतिक स्वरों की भूमिका -

सगीत के स्वरों मे पारस्परिक स्नेह उत्पन्न करने की अद्भुत शक्ति है, यह आकर्षण का सर्वोपयुक्त माध्यम है, सृष्टि के विकास व सम्बर्द्धन मे सगीत के स्वरो की भूमिका निर्सदेह महत्वपूर्ण रही है। यूरोपीय इतिहासविद् 'वालवों' के अनुसार, सृष्टि कर्ता ने सर्वप्रथम स्री पुरूषो को रचना की। उस समय दानो आकर्षण से रहित थे। फिर उन दोनों आकर्षण की सृष्टि हेतु ईश्वर ने परिश्ता भेजा, जिसने उन्हे पुष्प के भीतर बद कर दिया, फिर वे परस्पर आकृष्ट न हो सके, अतत उन्हे सगीत की प्रेरणा दी गयी और दोनों मे स्नेहित भावना जाग्रत हो उठी फलत स्नेहवाश मे आबद्ध होने की सृष्टि का क्रम आगे बढा। मलाया की एक कथा मे भी यही बात बतायी

गयी है कि स्त्री-पुरूष के पारस्परिक आकर्षण का कारण सगीत है।

'ओलार्स॥ाज्म' ने पक्षी - बुलबुल से सगीत की प्राथमिक प्राप्ति का मत व्यक्त किया है। मानव जब पेड़ की छाया मे विश्राम कर रहा था, तभी उसे चिडियों की नित्य मधुर ध्वनि मे प्रेरणा मिली और उसने कठ से निकालना शुरू किया। 'द यूनिवर्सल म्यूजिक' के लेखक 'वन्टोड्ल' महोदय ने 'ईसामसीह' को सगीत का जन्मदाता बताया है, जिन्होने विभिन्न देशों के सगीत पर विचार किया।

जैनी लोग महावीर स्वामी को सगीत का आद्यस्त्तसा मानते है, जबकि कतपिय विद्वानों के अनुसार ऊँची-नीची ध्वनियों की सहायता से मनुष्य ने भावो को व्यक्त किया गया होगा जो वाद मे सगीत बन गया। फ्रायड जैसे पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि 'मनोविज्ञान के आधार पर सगीत की उत्पत्ति हुई है' इतिहासकार अर्सेन्ताइस का विचार है कि समाज की स्थापना के उपरान्त, सभ्यता के विकास के साथ ही सगीत का जन्म होना सभव है।

'जान एलो' महोदय के अभिमत मे भारत ने ही विश्व को सवप्रथम सगीत का उपहार प्रदान किया।[1] पुरातात्विक साक्ष्यों, मूर्तियो के अध्यन से यह बात सिद्ध हुई है कि ईसा के पन्द्रह-बीस हजार वर्ष पूर्व भारतीय सगीत की उत्पत्ति हुई, जो अत्यत प्राचीन है।'

सगीत का प्रादुर्भाव सृष्टि के जन्म के साथ मानते हुए मि0 जोर्ज फोक्स का कहना है कि बालक जन्म लेने के उपरान्त रोता है - बोलता नहीं। भूख-प्यास की अभिव्यक्ति वह ध्वनि के माध्यम से ही करता है, वह सगीत का एक रूप ही है।'

1- सगीत का वृहत्त इतिहास

इस प्रकार निष्कर्षित होता है कि सगीत के स्वरों-ध्वनियों का सृष्टि के सम्बर्द्धन मे विविध रूपों मे भूमिका रही है। सृष्टि के जन्म से लेकर आद्यावधि सगीत जुडी हुई है। सगीत एक ऐसी कला है जिसमे अपूर्व आकर्षण विद्यमान है, जिसकी अनुपम रसमाधुरी से सिक्त होकर मानव मन प्रेरित होता है, तरगित होता है, और उमगित होकर विचार व्यक्त करता है। निसदेह सगीत सभी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। मनुष्य ने किसा व्यक्ति या शक्ति की प्रेरणा से सगीत को अभिव्यक्त किया, अथवा प्राकृतिक मुख्य उपादानो से क्रमश सागीतिक स्वरों का अन्वेषण किया। जो भी हो सागीतिक स्वरों के आकर्षण से सृष्टि की वृद्धि हुई है, यह कहना असगत न होगा।

3- संगीत एवं संस्कृति :-

मानव सभ्यता के आदिकाल से ही सगीत अपने किसी न किसी स्वरूप मे विद्यमान थी। मानव जीवन के सर्वांगीण एव परिष्कृत क्रिया व्यापार का, उसके आभ्यान्तर व्यवहार का साकार रूप ही सस्कृति है, जिसके अन्तर्गत समस्त कलाएँ भी सन्निविष्ट है, सगीत का ललित कलाओं मे प्रमुख स्थान रहा है, जो भौतिक उत्कर्ष एव यश के अलावा आध्यात्मिक सुख-सन्तोष का भी साधन मानी जाती रही है। प्राचीन काल मे उपासना-भक्ति के विभिन्न मार्गों मे सगीत का उपयोग किया जाता रहा है।

न केवल भारत की अपितु विश्व की अन्यान्य सस्कृतियों मे सगीत के उपयोग एव प्रचलन के साक्ष्य हमे प्राप्त होते है। सैन्धव सस्कृति मे प्राप्त नृत्यरत, लास्यकरती हुई नारी की मूर्ति सगीत की महत्ता को ही प्रतिवादित करती है। तिब्बत, जापान, चीन, इण्डोनेशिया जैसे देशों मे उपासना के साथ गीत वाद्य और नृत्य का प्रयोग विगत् सहस्रों वर्षो से आज तक बराबर देखा जाता है। वैदिक काल मे सस्कृति मे सगीत की धार्मिक एव लौकिक दोनो ही धाराये समानान्तर रूप से चलती रहीं और एक दूसरे को प्रभावित भी करती रहीं। दोनों का मूलाधार जन या लोक सगीत था। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सगीत सदा से ही सस्कृति का सहगामी रहा है।

संगीत एवं सांस्कृतिक इतिहास में अटूट सम्बन्ध :-

वस्तुत सगीत के इतिहास को हम सस्कृति के इतिहास से अलग करके नहीं देख सकते। दूसरे शब्दों मे सस्कृति के उद्भव एवं विकास के क्रम मे सगीत की उत्पत्ति एव उसका विकास भी तद्वत् निहित है। जैसे-जैसे सस्कृति का स्तरीकरण होता गया वैसे ही सगीत का भी स्तरीकरण होता गया।

सगीत चाहे भारत का हो अथवा पाश्चात्य देशीय - वस्तुत दोनों के विकास का स्रोत जन-जीवन ही रहा है। सगीत की जो भी साधन, सामग्री सुलभ होती रही है, उसके पीछे निसदेह मानव सस्कृति का प्रमुख योगदान रहा है। अत यह कहना अत्युक्ति न होगा कि सगीत उतना ही प्राचीन और अनादि है, जितनी की मानव जाति प्राचीन है। कष्ठ मानव की सहज एव स्वाभाविक देन है। कष्ठ से ही उसके गीत-सगीत का सृजन होता है, यही नहीं यह उसके वाद्यो का निर्माण कराता है और उसके स्वर-क्षेत्र का निर्धारण करता है। यही कारण है कि लोक सगीत मे - सगीत की - जिसे प्राथमिक अवस्था माना जाता है - केवल कुछ ही स्वरों का प्रयोग पाया जाता है और उसी की पुनरावृत्ति प्राप्त होती है। सभी आदिम जातियों मे सगीत की यह विशिष्टता दृष्टव्य है।

सभ्यता का विकास के साथ ही, सगीत का भी तदनुकूल विकास होता रहता है। उसमे परिवर्तन, परिवर्द्धन समयानुसार होते रहते है। सगीत इस विकास को हम उसमे प्रयुक्त होने वाले स्वर, वाद्य तथा नृत्य के विभिन्न रूपों मे देख सकते है। लोक सगीत मे अधिक से अधिक पाँच स्वरों का प्रयोग प्राप्त होता है। उनके वाद्य भी पूर्णत विकसित और परिष्कृत नहीं होते है। उनके नृत्य-प्रकार भी अग-प्रत्यगों के त्वरित सचालन तक ही सीमित प्राय होते है। सगीत के स्वाभाविक उपकरणों मे उल्लेखनीय है - एक तत्री, द्वितत्री, त्रितत्री जैसे तन्तु वाद्य, वशी और तुरही जैसे फूँक से बजने वाले वाद्य, तथा ढोलक जैसे चर्मवाद्य। इनमे सगीत के सप्तस्वरों का प्रयोग प्राय नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार का प्रयोग क्वचित पाया भी जाता है तो उसे नागर सगीत या शहरी सगीत का प्रभाव कह सकते है।

जहाँ तक शास्त्रीय सगीत जैसी विकसित व परिष्कृत शैली का प्रश्न है, यह शैली सभ्यता के विकास के साथ ही सभव हो सकती है। अतएव सगीत के इतिहास को सस्कृति के विकास अथवा इतिहास पृथकत्व की बात बेमानी है। दोनो मे अटूट सम्बन्ध है।

वैदिक संस्कृति एवं संगीत -

वैदिक युग भारत के सास्कृतिक इतिहास का प्राचीनतक काल है, जिसके सम्बन्ध । हमे ठोस व लिखित साक्ष्य प्राप्त होते है। इस युग के साहित्य और कला मे हमे भारतीय सस्कृति की उपलब्धियों का प्राथमिक स्वरूप दृष्टिगत होता है। समग्र वैदिक साहित्य के अन्तर्गत चारों वेद-ऋग्यजु सामार्थवा - संहिताए एव उनकी व्याख्या करने वाले ब्राह्मण (ऐतरेय तैतिरीय, शतपथ, गोवध आदि) आरण्यक (वृहदारण्यक इत्यादि) ग्रन्थ आत है। इसके अलावा सूत्र ग्रन्थ भी सम्मिलित है जिनमे तत्कालीन रीति-रिवाजों परपराओं पर प्रभूत प्रकाश पडता है।

सुविशाल वैदिक साहित्य मे सगीत सम्बन्धी अनेकानेक उल्लेख प्राप्त होते है जिनसे तत्युगीन गीत, वाद्य एव नृत्य त्रिविध-कलाओं की स्थिति एव प्रगति का पर्याप्त मात्रा मे परिचय प्राप्त होता है।

प्राचीनतम वैदिक साहित्य ऋग्वेद से न केवल भारतीय सगीत अपितु विश्व की अन्यान्य प्राचीनतम सस्कृतियों के सगीत के सम्बन्ध मे जानकारी मिलती है, चाहे वह यूनानी या रोमन सस्कृति हो चाहे असीरियन अथवा मिस्री। वैदिक भाषा और सस्कृति का वाह्य देशो से भी व्यापक सम्बन्ध था - इस मत से प्राय सभी पाश्चात्य विद्वान भी सहमत है। इस सदर्भ मे अनेक साहल दिये जा सकते है, यथा, वेदद का 'गन्धर्व' शब्द ईरान मे 'गन्दरेवा' तथा यूनान मे 'केन्टारास' के रूप मे पाया जाता है। भारत

की 'वीणा' एव 'करताल' मिस्र मे लोकप्रिय वाद्य रहे है। मिस्र मे वीणा को 'वेनी' तथा करवाल को 'श्रेटोलन' के नाम से अभिहित किया गया है। वेदोल्लिखित 'अप्सरा' शब्द मिस्री भाषा मे 'नर्तिका' के अर्थ मे मिलता है। हमारे साहित्य मे अप्सराओं की ख्याति नर्तिकाओं अथवा नृत्यागनाओं के रूप मे रही है। स्पेन के दक्षिणी भाग मे आज भी वैदिक भाषा और भारतीय सगीत का प्रभाव स्पष्ट रूपेण दृष्टव्य है। स्पेनी सस्कृति मे भारतीय सगीत को राग पद्धति, मीड, तान और तानपूरा जैसे अवयव उपकरण अध्यावधि प्राप्य है। इस प्रकार सगीत सम्बन्धी अनेक समानताए तत्कालीन प्राचीन सस्कृतियों मे दृष्टिगत होती है जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि विश्व सगीत के इतिहास मे वैदिक भाषा साहित्य का पर्याप्त योगदान था।

संस्कृत-साहित्य में संगीत का विकासात्मक विवेचन -

यद्यपि वैदिक साहित्य मे सगीत का स्वतत्र विवेचन करने वाली कृतिया प्राय उपलब्ध नहीं है तथापि इस सुविशाल वागमय मे सगीत कला के उल्लेख प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद मे गीत, वाद्य और नृत्य - सगीत के तीनों स्वरूपों का विवरण प्राप्त होता है। गीर, गातु, गाथ, गायत्र तथा गीति जैसे शब्द ऋग्वेद मे पाये जाते है जिनका प्रयोग गीत के अर्थ मे किया गया है। इन सभी गीतप्रकारों का आधार छन्द और गायन शैली थी। गीत तथा उसकी धुन के लिए 'साम' सज्ञा भी प्रयुक्त होती रही। साम धुन या स्वरावली का पर्याय भी रहा है। यह तत्कालीन जन-सगीत के अन्तर्गत गायी जाने वाली धुने थीं। वैदिक मत्रों का गायन इन्हीं धुनों की तर्ज पर किया जाता था। वैदिक आर्यों के विचार मे सगीत का उपयोग लोक रजन तथा ईश्वर रजन दोनों के लिए ही किया जाता था। याज्ञिक अवसरों पर मत्रों के साधारण पाठ या पठन की अपेक्षा मत्रों का सस्वर गायन अधिक प्रभावशाली माना जाता था।

मन्त्रों के गायन हेतु तत्कालीन ध्रुवो को उपयुक्त माना गया और उन्हीं के आधार पर वैदिक ऋचाओं का गायन आरभ हुआ। प्राचीन सगीत मे शब्द और स्वर दोनों का ही महत्व समान रूपेण था। गीत गाने के लिए शब्दों के रूप मे ऋचाओं को लिया गया और स्वर रचना की दृष्टि से तत्कालीन ध्रुवों को लिया गया। स्वर तथा शब्द के इसी सामजस्य को 'साम' की सज्ञा दी गयी थी। साम की कतिपय ध्रुवों को जन सगीत या लोक सगीत से लिया गया और कुछ की रचना तत्कालीन गायको ने की थी। वैदिक युग मे भी आधुनिक युग की भाँति रचयिताओं अथवा गायको के नाम पर गीतों-ध्रुवों का नाम रख दिया जाता था। उदाहरणार्थ- आधुनिक युगीन सूरदासी मल्हार, रामदासी मल्हार, मीरा की मल्हार, चरजू की मल्हार की भाँति ही वैदिक युगीन 'द्युतान गायक के नाम से द्यौतान', बैखानस के नाम से 'बैखानस' और शर्कर नामक गायक के नाम से 'शार्कर' साम विख्यात थे।

'गाथा' नामक रचनाओं का भी गायन उस युग की सस्कृति की विशेषता थी। 'गाथा' से तात्पर्य तत्कालीन लोकगीतों से है जिनमे लोक जीवन की मधुर झाँकी के दर्शन होते है। इन गाथाओं का गायन न केवल वैवाहिक उत्सवों पर अपितु यज्ञिक धर्मोत्सवो मे भी किया जाता था। यद्यपि इन गीतों को 'साम' के समान प्रचलित सगीत-शैली मे स्थान प्राप्त नहीं था तो भी समस्त जनता इन्हे बडी ही रुचि के साथ सुनती थी। गाथा-गीत गायन मे वीणा जैसे वाद्य का प्रयोग किया जाता था।

यर्जुवैदिक काल मे यज्ञो का आयोजन का बाहुल्य रहा। उस समय साम गायन अनिवार्य कर दिया गया था। इस सन्दर्भ मे साम गायन के लिए वर्ग बनाये जाने लगे, जिनमे एक मुख्य गायक होता था और अन्य उपगायक होते थे। मुख्य गायक को 'उद्गाता' की सज्ञा से अभिहित किया जाता था। इसकी सहायता के लिए 'उपगायकों'

की नियुक्ति होती थी। ये उपगायक 'वीणा' के सहारे स्थायी स्वर का निरन्तर गायन क्रिया करते थे ताकि उद्गाता को ऊँचे-स्वर मे गाने पर भी अपने मूल स्वर का आभास होता रहे। साम गायन के अवसर पर स्त्रियों की सहभागिता होती थी। दासी वर्ग की स्त्रिया माथे पर गगरी रखकर वर्तुलाकार गति से नृत्य करती थी और यज्ञादि अवसरों पर गीत गाती थीं।

यजुर्वेद काल मे गायन, वादन और नृत्य करने वालों का एक विशेष वर्ग विद्यमान था। इन कलाकारों को यथेष्ट पारिश्रमिक देकर सुनाया जाता था। उस समय प्रिय वाद्य यत्र 'वीणा' था और सभी तन्तुवाद्य वीणा के अन्तर्गत ही परिगणित किये जाते थे। इसी के परिवर्धित्त स्वरूप को 'वाण' कहते थे जो आकार प्रकार में बडा होता था और उसमे सौतनियाँ हुआ करती थीं। इन्हें बेंत के वक्राकार टुकडे से बजाया करते थे।

वस्तुत प्रत्यक्ष रूपेण गायन कला से ही सम्बन्धित वेद था जिसमे ऋग्वेद के तत्कालीन ध्रुवों के माध्यम से गाये जाने वाले मत्र सग्रहीत थे। इसके द्विविध रूप दृष्टव्य थे, 1- आर्चिक, 2- गान सहिता या गान ग्रन्थ। ऋग्वैदिक ऋचाओं का सकलन धार्मिक रूप मे था जबकि गान-ग्रन्थ मे यही ऋचाये स्वर सहित दी जाती थीं। आर्चिक मे गीत के बोल थे, जबकि गान-ग्रन्थ मे गीत के स्वर। इन गान ग्रन्थों मे सामगीतों की रूपरेखा मात्र थी। कुशल गायक को इसमे यथोचित परिवर्तन या परिवर्द्धन की अनुमति प्राप्त थी। गायक की उर्वर कल्पना से रूचित होने के कारण इस रूप को 'ऊह या उह्य' कहा जाता था। यह तत्युगीन कल्पना-सगीत था। साम का गायन बहुधा पाँच स्वरो मे किया जाता था और इसका क्रम अवरोही होता था। सगीत के स्वरों को 'यम' कहा जाता था। सात स्वर थे - क्रमश कुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र तथा अतिस्वायी सामगायन की प्रचलित परपरा को देखते हुए उस समय का स्वर सप्तक

आधुनिक 'आभोगी' राग के समान रहा होगा।[1]

सामवेद के गायन पर प्रकाश डालने वाला 'नारदी शिक्षा' एक प्रमुख ग्रन्थ है, जिसमे साम तथा गान्धर्व दोनों का विवेचन प्राप्त होता है। तत्कालीन शिष्ट अथवा क्लासिकल सगीत को साम के नाम से अभिहित किया जाता था और 'गान्धर्व' को 'लोक सगीत' के अन्तर्गत मान्यता दी गयी थी। नारदी शिक्षा मे स्वर, वर्ण आदि के उच्चारण का वर्णन विस्तारश मिलता है। 'जावालोपनिषद' को छोडकर सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ मे स्वरों के षडज, ऋषभ, गाधार, मध्यम, पचम, धैवत और निषाद जैसे नाम प्राप्त होते है। सगीत शिक्षा प्रदान करने के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण बातें नारदी शिक्षा मे प्राप्त होती है। इसमे कहा गया है कि गायन तथा लय दोनों का बालक के कण्ठ तथा योग्यता के अनुरूप होना चाहिए।

प्रथम काल खड मे वैदिक साहित्य के अलावा भरत, दत्तिल, कोहल, नारद आदि की रचनाएँ महत्वपूर्ण रहीं जबकि द्वितीय काल खंड मे मतग भोज, नान्यदेव, पार्श्वदेव तथा शारगदेव आदि की कृतियों का उल्लेख किया जा सकता है, तीसरा काल ई0 13वी सदी से अब तक जो कि नायक से भरतखण्डे इत्यादि आधुनिक समय तक माना जाता है।

नारदी शिक्षा के उपरान्त नाट्यशास्त्र सगीत की महत्वपूर्ण रचनाओं मे उल्लेखनीय है जिसके रचनाकार आचार्य भरत है। सपूर्ण भारतीय वागमय मे नाट्यशास्त्र एक अप्रतिम ग्रन्थ है जिसमे सगीत, नाट्य, नृत्य और काव्य का प्रथमत सम्यक एव पूर्ण विवेचन मिलता है। सगीत के समस्त पक्षों का सविस्तार विवेचन इस ग्रन्थ मे भरत जी ने किया है। तत्कालीन गायन पद्धति, गीत-प्रकार, गायक तथा वादकों के गुण एव अवगुण,

---

वाद्य-प्रकार, वाद्य वादन विधियाँ, नृत्यों के विविध प्रकार इत्यादि विषयों का विस्तृत विवरण नाट्यशास्त्र मे हुआ है।

'श्रुति' को सगीत स्वर का सूक्ष्मतम उपादान माना जाता है। इस ग्रथ मे 'श्रुति' की शास्त्रीय मीमासा सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र मे की गयी है। आचार्य भरत के नाम से सुविख्यात इस ग्रन्थ मे विभिन्न मतों एव परपराओं का सग्रह हुआ है। कतिपय प्राचीन टीकाकारों का विचार है कि भरत के पूर्व सगीत मे सदाशिव तथा ब्रह्मा के नाम से कुछ कृतिया प्रचार मे थीं और वर्तमान नाट्यशास्त्र मे इन सभी मतों की सकलन आरंभिक शताब्दियों तक हुआ है। भारत वर्ष की सभी सगीत परम्पराओं मे नाट्यशास्त्र को विशेष महत्व दिया गया है। गान्धर्व वेद के समान इसकी प्रामाणिकता मानी जाती रही है। इस ग्रन्थ का सर्वाधिक योगदान साहित्य तथा सगीत मे रस-निर्माण की प्रक्रिया के सम्बन्ध मे रहा है। आचार्य भरत के विचार से, संगीत का चरम परम लक्ष्य रसानुभूति है जो सगीत श्रोताओं को रसमग्न नहीं कर सकता, वह सगीत नहीं है। वस्तुत वही सगीत रसोत्पादक होता है जिसमे स्वर ताल एव शब्द तीनों का समान रूप से निर्वाह किया जाता है। इसका पालन करने पर ही सगीत मे श्रृगार, करूण, हास्य जैसे नौ रसों की उत्पत्ति होती है, अन्यथा नहीं। इन रसों का निर्माण मात्र स्वर-चमत्कार से ही सभव नहीं होता। इस प्रकार आचार्य भरत ने अपने नाट्य शास्त्र मे सगीत के विभिन्न स्वरूपों का मौलिक विवेचन किया है।

भरत सप्रदाय के अनुयायी गथो मे दत्तिल, कोहल, विशाखित आदि के ग्रन्थ संगीत के विकास को समझने के लिए महत्वपूर्ण है। नाट्यशास्त्र मे प्राप्त अधूरे एव कतिपय खंडित था लुप्त अशों की पूर्ति दत्तिल, कोहल इत्यादि की रचनाओं से हो जाती है।

आचार्य मतग वृहद्देशी ग्रन्थ सगीत के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान करने वाला ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ मे देश के विभिन्न प्रदेशों म प्रचलित सगीत शैलियों पर प्रकाश पडता है। वृहद्देशी मे तत्कालीन गीत शैलियों- भाषा, विभाषा, अन्तभीषा आदि का विवेचन प्राप्त होता है। आधुनिक सगीत मे प्राप्य राग नामक वस्तु का विवेचन सर्वप्रथम इसी मुद्रा मे उपलब्ध है। यही नहीं इस ग्रन्थ मे तुम्बरून दुर्गशक्ति, दत्तिल, कोहल, नन्दिकेश्वर, विशाखिल तथा कारयप जैसे अनेक सगीतज्ञों के विचार सकलित है जिनकी कृतिया सम्प्रति अनुपलब्ध है।

उसके पश्चात् भोज, नान्यदेव तथा पार्श्वदेव जैसे सगीतविदों ने अपनी कृतियों से सगीत के भण्डार की श्रीवृद्धि की। धारा नरेश भोजराज (ई0 12) स्वय साहित्य तथा कला के प्रख्यात शिल्पी को इस बात की सम्हुति हर्ते उनके विभिन्न साहित्य विषयक ग्रन्थों से तथा परवर्ती सगीत-ग्रथो से होती है। सगीत पर उनके अधिकार की बात अनेक परवर्ती संगीत ग्रथों से भी प्रमाणित हो जाती है।

'श्रृगार हार' नामक ग्रन्थ राजाभोज का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमे तत्कालीन लोक[illegible]य और लोक नृत्यों का विस्तृत विवेचन मिलता है भोजराज की अन्यतम कृति 'समरोगण सूत्रधार' मे सगीत-वाद्यों के सम्बन्ध मे किञ्चित उल्लेख मिलता है।

मिथिलानरेश 'नाथदेव भोज' के ही समकालीन थे, जिन्होंने 'भरतभाष्य' या 'सरस्वती ह्दयालकार' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। इस विशाल कृति मे प्राचीन एव समकालीन सगीत एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'अभिनव भारती' भी उल्लेखनीय है, जो नाट्य शास्त्र पर विस्तृत टीका है। काश्मीर की सुप्तसिद्ध दार्शनिक एव सगीतज्ञ आचार्य अभिनवगुप्त ने 950-1000 ई0 मे इस ग्रन्थ की रचना की थी। वस्तुत अभिनव भारती तथा लोचन नामक ग्रन्थों से इनकी ख्याति सगीत एवं साहित्य के क्षेत्र मे अक्षुण्य

हो गयी। इनके सगीत विपयक सिद्धातो पर शैव या आगम परम्परा का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

मध्यकालीन सगीत का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'सगीत रत्नाकर' उल्लेखनीय है, जिसकी रचना प0 शारगदेव (ई-13) द्वारा की गयी थी। वस्तुत नाट्यशास्त्र को प्राचीन सगीत मे जो स्थान प्राप्त है, वही मध्यकालीन सगीत मे 'सगीत रत्नाकर' को दिया जाता है। इस ग्रन्थ की लोकप्रियता इसी बात से ध्वनित होती है कि इस पर अनेकानेक टीकाएँ लिखी गयी। 18-19वीं शताब्दी के प्राय सभी सगीत-ग्रन्थों पर इस ग्रन्थ का प्रभाव दृष्टिगत होता है। प0 शारगदेव देवगिरि राज्य मे 'श्री करणाग्रणी' जैसे सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित थे। सगीत के लक्ष्य और लक्षण दोनों मे ही शारगदेव जी निष्णात थे। उनके द्वारा कतिपय प्रबधों एव तालों का भी अविष्कार किया गया था। उनका यह ग्रन्थ न केवल सगीत शास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है अपितु कलात्मक दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। इस प्रकार यह ग्रन्थ मध्यकालीन भारतीय सगीत मे एक मानक ग्रन्थ के रूप मे स्मरणीय है। 'सगीत रत्नाकर' का भारत मे प्रचलित उत्तरहिन्दुस्तानी एव दाक्षिणात्य दोनों ही पद्धतियों मे आदरणीय स्थान है। इस ग्रन्थ पर कल्लिनाथ, केशव और सिह भूपाल ने सस्कृत मे टीकाए लिखी है। रीवा नरेश विश्वनाथ सिह (1833-54) के दरबारी कवि एव सगीतज्ञ गगाराम मे 'सगीत रत्नाकार" पर एक टीका 'सेतु' नाम से लिखी है जो ब्रजभाषा मे है।

मध्ययुग के अन्य सगीतज्ञों मे दक्षिण के गायक गोपाल नायक (1205-1315) का भी स्थान महत्वपूर्ण है, जिन्होंने आलाप, गीत, प्रबन्ध और ठाय गायन मे पर्याप्त महारत हासिल किया था। गोपाल नायक में 'रामकदम्ब' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। मलिक काफूर के साथ मे मथुरा से अलाउद्दीन की सभा मे गये जहाँ प्रसिद्ध दरबारी

सगीतज्ञ अमीर खुसरो ने इनसे अनेक सगीत सम्बन्धी बातें सीखी थी। सर्वप्रथम उत्तर एव दक्षिण शैलियों का सगम इन्हीं के समय की घटना मानी जाती है। 'सगीत सुधाकर' के प्रणेता हरिपाल देव (14वीं) सौराष्ट्र के राजा थे जो अपने समय के महत्वपूर्ण एव कुशल सगीतकार थे। अपने इस ग्रथा मे उन्होने हिन्दुस्तानी एव कर्नाटक सगीत का प्रथम उल्लेख किया है। सगीत सुधाकर मे नाट्य, रस, प्रबन्ध, गायकों के लक्षण इत्यादि सभी सागितिक विषयों का सविस्तार वर्णन मिलता है। इस काल मे गीतों के अन्तर्गत 'प्रबन्ध' का गायन होता था। जिसके साथ सगत मे मृदग का प्रयोग किया जाता था।

विजयनगर साम्राज्य के अन्तर्गत् सस्कृत एव सगीत के प्रकाण्ड विद्वानों मे माधव विद्यारण्य (14वीं शती) का उल्लेख करना आवश्यक है जिन्होंने 'सगीतसार' नामक कृति की रचना की थी। वस्तुत माधव विद्यारण्य दक्षिणात्य सगीत मे मेल-पद्धति का प्रवर्तक के रूप मे जाने जाते है। उन्होंने अपने समय के प्रचलित रागों मे से 15 रागों का चयन कर उन्हे 'मेल' नाम से अभिहित किया है। उनकी दृष्टि मे आदिम तथा शुद्ध मेल 'मुखारी' है।

सुधाकलश नामक जैन मुनि ने लगभग इसी समय महत्वपूर्ण सगीत सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की थी। इनमे 'सगीतोपनिषद्' तो विशाल ग्रन्थ है जबकि 'सगीतोनिषत्सार' उसका संक्षिप्त सस्करण के रूप मे है। उस ग्रथ के 6 अध्यायों मे गीत, नृत्य तथा ताल का विवेचन किया गया है। धारा नरेश भोजराज की सगीत सम्बन्धी रचना इस समय उपलब्ध थी। मेवाड नरेश कुम्भकर्ण (15वीं शता0) ने दो ग्रथ लिखे - 'सगीतराज' एव 'सगीतक्रमदीपिका' इन ग्रन्थों मे भारतीय सगीत के समचित शैली के दर्शन होते है। इन पर सगीत रत्नाकर का प्रभाव परिलक्षित होता है। 'गीतगोविन्दकार जयदेव के बीत उस समय गीत गायकों के लिए अनूठी निधि थे। इतना ही नहीं गीतगोविन्द

के पदों पर 'नृत्य कला' भी अविछिन्न रूप से जुडी हुई थी। महाराज कुभकर्ण ने 'रसिक प्रिया' नामक टीका का प्रणयन जयदेव के गीतगोविन्द पर किया था।

दक्षिणात्य के सगीत के विद्वानों मे रामामात्य (ई0 16वीं) का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जो विजयनगर शासक रामराम के श्याले थे। समामात्य ने 'स्वरमेल कलानिधि' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में उन्होंने समसामयिक प्रचलन मे आने वाली रागों का वर्गीकरण 20 मेलरागों मे किया है। 'मुखारी' को उन्होंने शुद्ध स्वर-सप्तक की मान्यता दी है, उससे पूर्व विद्याख्या ने भी मुखारी को ही शुद्ध मेल माना था। इसके अतिरिक्त दक्षिण के सगीतज्ञों मे पुण्डरीक विह्ठल (1590 ई0) का नाम महत्वपूर्ण है, जिन्होंने अधिकाशत उत्तर भारत मे ही निवास किया था। तत्कालीन उत्तर भारत की सगीत पर प्रकाश डालने वाली उनकी चार रचनाएँ विशेषोल्लेखनीय है। 1- रागमाला, 2- राममंजरी, 3- सद्रागचन्द्रोदय, 4- नर्तननिर्णय। इन ग्रन्थों मे उत्तर-दक्षिण दोनों के विचारों का समन्वय दृष्टिगत होता है। उनकी दृष्टि मे राग-रागिनी तथा मेल-राग दोनो पद्धतियाँ मान्य थीं। दक्षिण का 'मुखारी' उनका शुद्ध स्वरमेल है। विट्ठल जी के समय तक कुछ फारसी राग भी भारतीय संगीत मे मिल गये थे। जब वे मुगल सम्राट अकबर के सम्पर्क मे आये तो 'नर्तन-निर्णय' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया।

प्रसिद्ध सगीतज्ञ 'लोचन' उत्तर भारत के सगीत मधुकारो मे महत्वपूर्ण स्थान रखते है जिन्होंने 'रागतरंगिणी', 'रागसगीत सग्रह' नामक ग्रन्थ लिखे। लोचन ने मेल को 'थाट' सज्ञा से अभिहित किया है तथा इनकी दृष्टि में 'भैरवी' शुद्ध थाट है। इसी ग्रन्थ मे सर्वप्रथम उत्तरी सगीत मे प्रचलित कोमल तथा तीव्र स्वरों के नाम प्राप्त होते है। साहित्य के साथ ही सगीत विद्या में पारंगत आचार्य सोमनाथ (1609 ई0) की कृति 'राग-विवोध' है जिसमे हनुमान और उमापति जैसे सगीतज्ञों का उल्लेख किया

है। सोमनाथ ने नायक-नायिका-भेद का विवरण दिया है, जिसमे नायिकाओं का रागिनियों के रूप मे वर्णन किया है। उस ग्रन्थ का नाम है जातिमाला। कर्नाटक सगीत का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सगीत सुधा है जो तजौर के नायक राजा रघुनाथ के नाम से प्रसिद्ध है जबकि इसके वास्तविक लेखक उनके मंत्री तथा दरबारी सगीतज्ञ श्री गोविन्द दीक्षित (17वीं शता0) है। सगीत सुधा मे प्राचीन एव आधुनिक अनेक सगीतज्ञों के नाम मिलते मिलते है। अर्वामीन ग्रन्थकारों मे शारगदेव तथा हरीन्द्र के नाम उल्लेखनीय है।

श्री गोविन्द दीक्षित के पुत्र प0 सकटमरवी ने 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' नाम से प्रसिद्ध सगीत विषयक ग्रन्थ लिखा। इसे कर्नाटक सगीत शैली के पाणिनि के रूप मे जाना जाता है। दक्षिणी सगीतविदों की धारणा है कि वैयाकरण पाणिनि की भाँति इन्होंने भी प्रचलित एव भविष्य मे उत्पन्न होने वाली सभी रागों को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। रागों के वर्गीकरण के लिए इन्होंने 72 मेलकर्ताओ को उपयुक्त माना उनके लक्षण गीतों की रचना की। उनकी स्पष्ट मत है कि सप्तक मे बारह स्वर मान लेने पर ससार मे सभी राग समाहित हो जाते है। सकट मुखी ने भरत, नारद, मतग, शारगदेव, सोमेश्वर, गोपालनायक, रामामात्य और तालपा इत्यादि पूर्व सगीतविदों का उल्लेख किया है।

प0 दामोदर का 'सगीतदर्पण' उत्तरी सगीत का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, सिह व्यक्तमुखी के ही समकालीन माना जाता है। उस ग्रन्थ के 6 अध्यायों मे स्वर, राग, प्रकीर्णक, प्रबध, वाद्य और नृत्त है। इस ग्रन्थ पर सोमनाथ का प्रभाव दिखता है।

इसके अतिरिक्त 18वीं सदी के सगीत ग्रन्थकारों मे भावभट्ट तथा प0 अहोवल का उल्लेख किया जा सकता है। प0 अहोवल का 'सगीत पारिजात' उत्तर हिन्दुस्तानी सगीत का प्रामाणिक ग्रन्थ है जिसकी रचना दिल्ली के बादशाह मोहम्मद शाह के समय

की गयी। इस ग्रन्थ का फारसी भाषा मे भी अनुवाद किया गया था। अहोवल की सर्वाधिक देन सगीत के क्षेत्र मे यह है कि उन्होंने वीणा की तत्री पर तत्कालीन स्वर स्थानों को बताया है। इन स्वर स्थानों से स्पष्ट हो जाता है कि ।7वीं सदी तक वर्तमान काफी राग भरतोक्त शुद्ध स्वर सप्तक माना जाता था। प0 सोमनाथ के समान अहोवल ने भी हनुमान मत की प्रामणिकता मानी है। भावभट्ट के पिता शाहजहाँ की सभा मे रहते थे जबकि वे बीकानेर के शासक अनूपसिह के दरबारी विद्वान थे। उन्होंने तीन ग्रन्थों की रचना की थी - ।- अनूप सगीत विलास, 2- अनूप सगीत रत्नाकर तथा 3- अनूपाकुश। भावभट्ट के इन ग्रन्थों मे हमे पूर्ववर्ती सगीतज्ञों-ग्रन्थकारों का प्रभाव प्राप्त होता है।

सगीत कला को आश्रय देने वाले राजाओं मे महाराष्ट्र के नरेशों का भी उल्लेख करना आवश्यक है जिनमे छत्रपति शिवाजी के पिता शाह जी (।7वीं) उल्लेखनीय है। इनके दरबार मे वेद नामक सगीतज्ञ थे, जिनकी नियुक्ति राजकुमार शभा जी को सगीत शिक्षा प्रदान करने हेतु की गयी थी। वेद की दो सगीत विषयक रचनाएँ है- ।- सगीत मकरद और पुष्पाजलि। महाराष्ट्र के तत्कालीन सुप्रचलित सगीत शैलियो एव नृत्य कला का सम्यक उल्लेख वेद के उक्त ग्रन्थों मे प्राप्त होता है।

इस प्रकार सगीत के युग मे अनेकानेक सस्कृत ग्रन्थों की रचना की गयी, जिन्होंने सप्तयुगीन सस्कृति की अमित छाप छोडी है, किन्तु कालान्तर में पाप्त रचनाओं मे पूर्ववर्ती अनुकरणात्मक प्रवृत्ति ही प्राय दृष्टिगत होती है। मौलिकता का अभाव सा दिखता है। अब सगीत विषयक ग्रन्थों की रचना हिन्दी, उर्दू तथा दक्षिणी भाषाओ मे भी होने लगी। रागमाला नामक ग्रन्थों की रचना इसी समय हुई। इन ग्रन्थों मे रीतिकालीन रागों की आकृति एव रूपरग के विवरण प्राप्त होते हैं। मोहम्मद रजा तथा राजा प्रताप सिह

को रचनाओं मे 'विसावक' को प्रथमत शुद्ध-स्वर-सप्तक की मान्यता दी गयी है। इस परपरा की अंतिम कडी के रूप मे पं0 भातखण्डे को माना जाता है। भातखडे ने प्रचलित सगीत को शासकीय स्वरूप देने का प्रयत्न किया और उन्हे व्यवस्थित किया। उन्होने लक्ष्यसगीत तथा अभिनवरागमजरी जैसे ग्रन्थों की रचना की।

5- प्राचीन भारतीय साहित्य में संगीत -

प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि सगीत की तीनो विद्याओं - गीत, वाद्य और नृत्य का तत्कालीन समाज मे पर्याप्त प्रचार था। सभी वर्गो मे सगीन के प्रति अभिरुचि के पर्याप्त साक्ष्य मिलते है। प्राचीन भारतीय साहित्य के अन्तर्गत सगीत के तत्वों को विभिन्न रूपों मे प्रस्तुत किया जा सकता है, जिनका क्रमिक विवेचन प्रस्तुत करना समीचीन होगा। भारतीय सगीत के मूलभूत तत्वो के ज्ञानार्थ सर्वप्रथम वैदिक साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण है, क्योंकि 'वेद' भारतीय सस्कृति के सपोषक है। कलाओं के आधार ग्रन्थ है। भारतीय मनीषा वेदों को अपौरूपेय मानती है। अथर्ववेद के अनुसार, 'वेद' देवाधिदेव परमेश्वर का वह अमर काव्य है, जो अजर, अमर है - 'देवस्य पश्यकाव्य न ममार न जीर्म्यति'[1].

वैदिक वाङमय मे संगीत स्वरूप एवं विवेचन -

वैदिक वाङमय अपने विस्तृत स्वरूप मे अनेक शाखा-उपशाखाओं से समन्वित है तथापि जो मूल वेद-ग्रन्थ है, उनकी सख्या चार है - 'ऋग्यजु सामाथर्वा' जिन्हे 'संहिता' के रूप मे भी अभिहित किया जाता है। इनमे ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रथ स्वीकार किया जाता है।

वैदिक यज्ञानुष्ठान एव विभिन्न सस्कारो मे 'सामगान' का विशिष्ट महत्व रहा है जैसाकि यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा मे कथनित है - जिस यज्ञ मे सामगान न किया जाय, वह यज्ञ नहीं कहा जा सकता - अयज्ञोवा एष , योऽसामा।' यज्ञानुष्ठान मे सर्वप्रथम ऋक्मत्रों द्वारा प्रशस्ति आवाहन किया जाता है, 2/5/8 यजुव मत्रों द्वारा यजन तत्पश्चात् सामगान द्वारा देवताओ की स्तुति का विधान है। वेदो मे गायन की दृष्टि से सामवेद ।ा विशिष्ट महत्व रहा है, क्योंकि, भावपूर्ण अभिव्यक्ति एव तन्मयता के प्रस्तुतीकरण मे सामगान बेजोड है।

जहॉ तक साम शब्द का तात्पर्य है, आचार्य सायण का कथन है कि ऋक् मत्रों का कुष्टादिसप्त स्वरों मे गान ही साम है, 'साम शब्द वाच्चस्य गानस्य स्वरूप ऋगक्षरेषु कुष्टादिभि सप्तभि. स्वरैक्षर विकारादिभिश्च निष्पाद्यते।" वृहदारण्यकोपनिषद के अनुसार वाक् सा और अम (प्राण) ही साम है, यही साम का सामत्व है। छान्दोग्य उपनिषद मे स्वर को ही साम का आश्रय माना गया है। ऋचा (वाणी) और साम एक ही है, पृथक नहीं।

जैमिनिसूत्र मे साम को गीति का ही दूसरा नाम कहा गया है "गीतिषु सामाख्या"। यही नहीं साम के प्राण 'स्वर' को स्वय ब्रह्मरूप के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है। भगवान श्रीकृष्ठ ने 'श्रीमद्गीता' मे स्वय को सामवेद कहकर इसकी महत्ता प्रतिपादित की है - वेदाना सामवेदोऽस्मि' सामवेद मे स्वतत्र मत्रो की सख्या मात्र तैतींस है, शेष मत्र ऋग्वेद मे ही प्राप्त होते है। वस्तुत ऋग्वेद के उन मत्रो को जो स्तुतिपरक है, गेय है, उन्हें साम के रूप मे महर्षि वेदव्यास द्वारा सग्रहीत किया गया और उसे

---

15 अथर्ववेद - 10/8/32

'छदोग' नाम से अपने शिष्य 'जैमिनी' को शिक्षित किया गया। साम के गान ग्रन्थों मे एक ही ऋचा पर 25 से लेकर 61 तक गानों की सख्या मिलती है।[1] सामवेद की एक सहस्र शाखा का उल्लेख मुक्तिकोपनिषद मे प्राप्त होता है। महाभाष्यकार ने भी 'सहस्रवर्त्मा सामवेदा ' से यही सकेत दिया है। विभिन्न शाखाओं के आचार्यो मे - कौथुमीय, राणायणीय व जैमिनीय आचार्यो की शाखाये उपलब्ध है, किन्तु सम्प्रति यज्ञानुष्ठानों की न्यूनता के कारण सामगायकों की सख्या भी कम रह गयी है।

आर्चिक एव गान - सामवेद के दो मुख्य अग है, ऋचाओं के समूह आर्चिक या योनिग्रन्थों के भी दो उपभेद है पूर्वार्चिक एव उत्तरार्चिक, पहले मे मूल ऋचाओं का सकलन है और उत्तरार्चिक मे इन ऋचाओं की धुन पर गायी जाने वाली प्रगाथाए-सग्रहीत है। गानग्रन्थो मे 1- ग्रामगेयगान, 2- आरण्यक गान, 3- ऊहगान तथा 4- ऊह्यगान है। स्वामी करपात्री जी के विचार से मत्र के किसी शब्द को बदलकर प्रकरण के अनुसार दूसरे शब्द का उच्चारण 'ऊह' कहलाता है।[2] सोमपागी दुढिराज शास्त्री ने स्तोभानुसंहार ग्रथ को उद्धृत करते हुए लिखा है - ऋग्वैदिक मत्रो का स्वरूप, 1- विकास, 2- विश्लेष, 3- विकर्षण, 4- विराम, 5- अभ्यास, 6- लोप, 7- आगम, 8- स्तोभ इन आठ कारणों से परिवर्तित होता है। यही वेद, ऊह, ऊह्य और आरण्यक कहे जाते है" वर्तमान शास्त्रीय सगीत की गान-पद्धति मे इन सबका किसी न किसी रूप मे प्रयोग होता है।

वैदिक साहित्य मे गीत, वाद्य एव नृत्य का शिल्प रूप में उल्लेख मिलता है। त्रिवृद्धै शिल्पं नृत्य गीत वादितमिति' - ऋग्वेदीय शाखायन ब्राह्मण से स्पष्ट है

1- वैदिक वाङमय - प0 बलदेव उपाध्याय

कि 'सगीत का प्रचलन हो चुका था। चार उपवेदों मे सगीत कला की दृष्टि से 'गाधर्ववेद' अग्रगण्य है। 'सीतोपनिषद' मे भी उपवेद के रूप मे 'गाधर्ववेद' का उल्लेख मिलता है।

वैदिक ाङमय मे सामगान के साथ वीणा वादन एव सगीत के भी धनेकश् प्रमाण प्राप्त होते है। तैत्तिरीय सहिता, हिरण्यकेशीसत्र इत्यादि ग्रन्थों मे यज्ञकर्ता (यजमान) की पत्नियों द्वारा सामगायकों के साथ सगीत करने के उल्लेख मिलते है यथा-

उपगायन्ति, पल्योडवाघाटलिकास्तालुकवीणा काण्डवीणा पिच्छोला अलाबु कपिशीर्ष्लीति। .

इत्यादि वैदिक वीणाओं के नाम प्राप्य है। तत्रीवाद्यों को सामायत वीणा नाम से अभिहित किया गया था, जिनमे शततंतु वाली 'वाण' नामक वीणा महत्वपूर्ण मान्य थी। यह दीर्घायु देने वाली वीणा थी - वाणा शतायु पुरूष शतेन्द्रिम आयुष्वे वेन्द्रिये प्रतितिष्ठन्ति तैत्तिरीय सहिता इस उल्लेख के अतिरिक्त जैमनीय एव ताडवब्राह्मण मे भी इस तरह के साक्ष्य मिलते है। आप स्तम्ब सूत्र मे गूलर की लकडी से बनी वाण-वीणा एव सगीत करने के वर्णन प्राप्त होते है। लाट्यायन के सन्दर्भ मे आचार्य शाडिल्य द्वारा सौ तंत्रियों को विभाजित करने की बात कही गयी है। ऋग्वेद मे 'वाण' नामक वीणो को बजाते समय सात धातुओं के प्रयोग की बात कही गयी है, जिसके आधार भाष्यकार सायण का मत है कि सप्त धातुओं से 'निषाद' आदि सात स्वरों का उद्भव होता है। आचार्य अभिनवगुप्त का भी कहना है कि अगुलियो के विशिष्ट आघात से सप्त धातु (ध्वनि) उत्पन्न होती है और उन्हीं से 'निषाद' आदि सप्तस्वर। वाण वीणा का निर्माण गूलर की लकडी द्वारा किये जाने से उसकी एक सज्ञा 'औदुम्बरी' भी थी। ऋग्वेद के ऐतरेय आरण्यक ग्रथ मे दैवी एव मानुषी वीणाओं का भी उल्लेख मिलता है।

वैदिक साहित्य एव सूत्र ग्रन्थो मे वीणा के अतिरिक्त चर्मवाद्य एव दुन्दुभि वादन का विधान मिलता है। इसी प्रकार भेरी एव मृदग नामक चर्मवाद्य का वर्णन

नादविन्दूपनिषद् मे किया गया है। सुषिर वाद्यो के विविध प्रकार तत्कालीन समाज मे प्रचलित थे। बाणसनेयी सहिता (शु0यजु0) एव ब्राह्मण ग्रन्थों मे बासुरी जैसे वाद्य यत्र 'तूण' का जो फूँक कर बजाया जाता था, का उल्लेख प्राप्य है। - क्रोशायतूणबद्धम्। इसके साथ ही शग्ख व नाली जैसे वाद्य भी प्रचलित थे। नादबिन्दु उपनिषद् एव ध्यानबिन्दु उपनिषद मे घनवाद्य एव किकिणी, वसी तथा भ्रमरध्वनि के प्रसग प्राप्त होते है।

वैदिकवाङमय मे सामगान के अतिरिक्त अन्य अनेक गान प्रणालियो के भी प्रमाण हमे प्राप्त होते हे, यथा गाथागान, नराशसी गाथा आदि। इन वैदिक गाथाओ के आधार पर कहा जा सकता है कि इन्हीं गाथाओं से विभिन्न गीतों का प्रादुर्भाव हुआ होगा। 'गाधर्व' मे इनका विस्तार हुआ होगा। वैदिक गाद्यागान में देवों की प्रशसा व स्तुति की जाती थी जबकि लौकिक गाथाओं मे राजा, मत्री या वीर पुरूष की प्रशस्ति का गान होता था। शतपथ ब्राहमण 'वीणा गाथी' उत्तरमद्रा (माइनर) मे गान करता था जो षड़जग्राम की प्रथम मूर्छना एव सामसप्तक की भाँति है। अद्य साय द्युतिषु वीणागाथी दक्षिणत। शतपथ ब्राहमण मे 'पारिप्लव' प्राचीन कथाओं के गान के रूप मे उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार इन्द्र से सम्बन्धित गाथा का साक्ष्य ऋग्वेद (1/10/1-7/1) मे एव यमदेव से सम्बन्धित गाथा का सन्दर्भ तैत्तिरीय सहिता (5/1/8) मे प्राप्त होता है। रामायण भीमासाकार स्वामी करपात्री जी के अनुसार नाराशसी नामक गाथा सूतभागधों द्वारा गायी जाने वाली, वेदों का मलिन रूप है। इनका प्रयोग 'मानवप्रशस्ति' के रूप मे किया जाता था।[1]

कालातर मे इन्हीं गाथाओं से ही विभिन्न देवस्तुति, मानवी-प्रशस्ति परक गीतों की सर्जना हुई। प्रबन्धादि का निर्माण हुआ। यही नहीं ध्रुपद गायन शैली का

1- रामायणभीमांसा - पृ0 26।

विकास भी उक्त प्रशस्तिपरक गीथा-गानों से हुआ होगा। वैदिक साहित्य मे अनेक गन्धर्वों व अप्सराओं का उल्लेख हुआ है, जो नृत्य गान कला मे पारगत होते थे, इनमे स्वान भ्रात, अघारि, बमारि, हस्व, सुहस्त, कृशानु, विश्वासु, मूर्धम्यान्, सूर्य वर्च्चा और कृति आदि का उल्लेख मिलता है इसके साथ ही साथ तैत्तिरीय संहिता मे पुजिकस्थला, कृतस्थला, मेनका, सहजन्या, उर्वशी इत्यादि अप्सराओ का भी प्रसगत उल्लेख है जिनमे उर्वशी व मेनका विख्यात थीं। अथर्ववेद मे कहा गया है कि अप्सराये गन्धर्वों की पत्नियाँ होती थीं, नृत्य गीत विशेषज्ञा होती थीं।

नारदीय शिक्षा मे ऋषियों का सम्बन्ध सामस्वरों से बताया गया है, यथा गाधार एव पचम के ऋषि नारद, और धैवत, निषाद के ऋषि 'तुम्बरू' थे। सामगान मे 'त्रिवृत्त, पचदश, सप्तदश, एकत्रिश, इत्यादि विभिन्न देवस्तुतिपरक 'स्तोम' का प्रचलन था। इसके साथ ही वैदिक साहित्य मे मत्राक्षरों (ऋग्वैदिक) के अतिरिक्त सामगान मे जो अक्षर प्रयुक्त किये जाते थे, वे 'स्तोभ' कहे जाते थे, उनका प्रयोग दो स्वरो के मध्य रिक्त स्थान की पूति हेतु होता था। साम भाष्म-भूमिका मे उल्लिखित है - प्रकृतार्थनन्वित कालक्षेपमात्र हेतु शब्द राशिम्।' 'स्तोभानुसहार' नामक ग्रन्थ मे ।- वर्णस्तोभ- ई,आ,ऊ,ए आदि, 2- पद स्तोभ - हाइ हाउ आदि, 3- वाक्य स्तोभ - अशस्ति, स्तुति, सख्यान, प्रलय, वरिवेदन, प्रैस, अन्वेषण, सृष्टि आख्यान - की विस्तृत चर्चा हुई है। वस्तुत स्तोभों के प्रयोग से सामगान मे सगीतात्मकता की सवृद्धि होती है।

सगीत शास्त्रों मे प्रतिपादित विभिन्न नियमों का मूल सामगान एव वैदिक साहित्य मे प्राप्त होता है जिनका रूपान्तर प्रसगत होता रहा है। विशिष्ट सामों के गायन का विधान भी विशेष काल व ऋतुओं मे किया जाता था, इसके उल्लेख भी वैदिक वाङमय मे प्राप्त होते है। इसी नियम का गाधर्व एव देशी मे काल व ऋतु आधारित गायन पर प्रभाव पडा होगा। वेदाग 'शिक्षा' साहित्य मे छ अगो की विशद चर्चा हुई है

जिनमे उल्लेखनीय है - वर्ण, स्वर-मात्रा, साम, बल, सन्तान। शब्दोच्चारण, स्वर-प्रकृया, ह्रस्वदीर्घ का तारतम्य साम एव गान्धर्व सप्तकादि विभिन्न विषयो की विशद विवेचना वैदिक प्रातिशाख्य ग्रन्थों एव नारदीय, पाणिनीय शिक्षा ग्रन्थों मे हुई है। सामगान मे प्रयुक्त स्वरों का ही षडजादि नाम से गाधर्व मे प्रयोग किया गया। सामगान का सप्तक अवरोही था जबकि उसका प्रारभिक स्वर प्रथम नाम से अभिहित किया जाता है। उसे ही गाधर्व मे 'मध्यम' कहा गया है। गाधर्व का सप्तक आरोह प्रधान एव षड्ज स्वर से प्राप्त होता है। प्रथमादि वैदिक स्वरों से षड्जादि सप्तस्वरों के सम्बन्धों की व्याख्या शिक्षा ग्रन्थों मे प्राप्त होती है। इन्हीं सप्तस्वरों का प्रातिशाख्य ग्रन्थों - ऋक, साम, अथर्व प्रातिशाख्य - मै 'यम' नाम से उल्लेख मिलता है। इसके साथ ही उनमे मद्र, मध्यम एव उत्तम (तार) इन तीन स्थानों (सप्तकों) मे, 'सप्त यमों' का होना भी निवेचित है। वैदिक साहित्य मे उदात्त, अनुदस्त तथा स्वरित - इन तीन प्रधान स्वर सज्ञाओ का उल्लेख हुआ है। नारदीय शिक्षा के अनुसार - स्वरों उच्च स्वरो नीच स्वर

स्वरित एव च

स्वर प्रधान त्रैस्वार्यं व्यञ्जन तेन

सस्वरम्।"

महर्षि पार्णिनि की दृष्टि मे भी उदात्त का उच्च, अनुदात्त का (2/5/3) नीच और स्वरित का समाहार अर्थात् दोनों का योग, यही भाव प्रतीत होता है। नान्यभूपाल के 'भरत भाष्यम' मे निवृत्त है कि उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचय तथा निघात-इन पच स्वर भेदों मे कुष्ट और अतिस्वार को मिला दिया गया और इस प्रकार सामवेदियो ने सप्तस्वरों की सख्या पूरी की।

अधिकाश विद्वानो ने साम सप्तक का रूप 'काफीमेल' के समान माना है, इसी का गान्धर्व मे 'षडजग्राम' के रूप मे प्रयोग किया गया। इस प्रकार सामगान का सप्तक- 'म ग रे स नि ध प अवरोह प्रधान है। मध्यम मे पचम स्वर को स्थापित करके प्रकारान्तर से स्वरान्तरालों को परिवर्तित किये बिना ही बिलावल मेल 'प म ग रे स नि ध' के रूप मे पाया जाता है। आचार्य सायज के लौकिक सप्तक पर विचार किया जाय तो प्रकारान्तर से खमाज, आसावरी, कल्याण व विलावल मेल के स्वरों की प्राप्ति हो जाती है।

फुल्लसूत्र नामक ग्रन्थ मे मत्रों के प्रारंभिक स्वर को किस प्रकार बदला जाय, इसका वर्णन मिलता है।[1] साम सप्तक के मूल रूपों के अतिरिक्त अथ स्वरों का भी वर्णन विभिन्न ग्रन्थों मे मिलता है। ऋक्प्रातिशाख्य 'पृथग्वा' के भाष्यकार आचार्य उव्बट के शब्दो मे 'अथवा' स्वरेभ्य पृथग्भूता अन्ये यमा स्वरेषु वर्तन्ते। नारदीय शिक्षा मे भी उच्च एव निम्न स्वर के बीच स्थित सामान्य श्रुति की 'स्वार' सज्ञा दी गयी है। सामगान से सम्बन्धित विभिन्न ग्रन्थों मे विवेचित नियमो के अनुसार स्पष्ट होता है कि विविध सामविकारों के कारण मूल मत्रों के जो रूप बदलते है उसके एक निश्चित परस्परागत नियम है। इस सम्बन्ध मे गायक के लिए स्वत कल्पना कर लेना सभव नहीं है। सामगान का उद्देश्य लोक रंजन न होकर देवाराधना ही रहा है। अत प्राप्त स्वरों मे एक स्वर का अतर या परिवर्तन मान्य नहीं क्याकि सामगान 'अपौरूषेय' माना गया है।

सामगान मे प्रयुक्त मत्रो की लिखने की परपरा अतीव प्राचीन है। इनके स्वराकन मे 1 से लेकर 7 तक अर्कों का प्रयोग किया गया है, जिनमे अक 5 मद्र और 6 अतिस्वार्य के लिए तथा '7' कुष्ट स्वर (सर्वोच्च) के लिए प्रयुक्त है। मत्रों के ऊपर अको का

प्रयोग शुद्ध रूप का परिचायक माना जाता है तथा मत्राक्षरों के बीच मे स्वराकन स्वर की विकृत स्थिति का आभास कराते है। दक्षिण भारत स्वराकन मे व्यजनों का प्रयोग किया गया है।

वैदिक वाडमय मे ऐसे अनेक ऋषियों का नामोल्लेख मिलता है, जो विभिन्न सामों के गाता थे - अगीरसा सामभि स्तूयमाना (ऋग्वेद - 2/43/2), अपि च, भरद्वाजो वृहदाचक्रे अग्ने महर्षि वशिष्ठ 'रथतर साम एव गौतम ऋषि 'पर्क' साम के गायक थे। कश्यप ऋषि द्वारा प्रयुक्त 'कश्यपश्य वार्हिषम्' का स्वराकन युक्त लेखन प्राप्य है।[1] ऋषियों द्वारा एक ही मत्र को पृथक-पृथक रूप मे गाये जाने की परपरा के आधार पर कालान्तर मे भी विशिष्ट नामों से प्रसिद्ध रागों के निर्माण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। सामगान मे गुरू-शिष्य परपरा भी महत्वपूर्ण थी। कुल मिलाकर तत्युगीन सस्कृति व समाज मे सामगान की महत्ता प्रत्येक विध थी।

साम गायकों की सख्या न्यूनतम तीन एव अधिकतम छ होती थी। छन्दोबद्ध ऋचा गान कर्ता को 'छन्दोग' एव साम का गान करने वाले को 'सामग' सज्ञा दी गयी थी। प्रमुख साम गायक को 'उद्गाता' तथा सह या उपगायकों को 'प्रस्तोता' अथवा प्रतिहर्ता कहते थे। सामगान मे 'ओम्' का गान आरभ से लेकर अत तक उपगायक करते थे। उपगान मे यजमान - पत्नियो द्वारा वीणा-सगति के अनेक उल्लेख प्राप्त होते है।

लाट्यायन सूत्र मे प्रात माध्यदिन एवं तृतीय सवन का उल्लेख किया गया है तद्नुसार उद्गाता द्वारा 'सोमपाग' मे प्रात मद्र स्वर माध्यन्दिन मे मध्यम स्वर तथा तृतीय सवन मे उत्तम (तार) स्वर से गान करना चाहिए। अथर्ववेद के अनुसार बसत ऋतु मे वृहत्साम व रथतर का, ग्रीष्मऋतु मे यज्ञायज्ञिय व वामदेव्य का, वर्षा ऋतु मे वैरूप व वैराज का तथा शरद ऋतु मे छ्पैत व नौधस सामों का विधान होना चाहिए।

वेद पाठ मे स्वरो के प्रयोग सम्बन्धी नियम अपरिवर्तनीय है क्योंकि वे सीधे देवों से सम्बद्ध है। सामिक स्वरो के गम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी सामसूत्र, फुल्लसूत्र, वृहदेवता आदि रचनाओं मे प्राप्त होती है। वृहद्देशी के प्रणेता आचाप्र मतग ने सप्तस्वर योग का उल्लेख किया है, तद्नुसार, 1- आर्चिक, 2- गाथिक, 3- सामिक, 4- स्वरातर, 5- औडव, 6- षाडव तथा 7- सम्पूर्ण॥

नारदीय शिक्षा मे ऋचा, कठ्, तैत्तिरीय, शातपथ इत्यादि के पठन मे पृथक-पृथक रवर प्रयोग की बात कही गयी है। अस्तु सगीत शास्त्रों मे 'सामगान' को भारतीय सगीत का मूल कहा गया है। सामगान म प्रयुक्त की गयी धुनो एव स्वर-सगति मे एक विशिष्ट माधुर्य विद्यमान था। वेदों मे सामवेद की श्रेष्ठता का कारण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी उल्लेखनीय है क्योंकि इसमे देवस्तुति गान से ही की जाती है, अत गान की माधुरी से देवताओं का आनदित होना स्वाभाविक ही है। अत यह कहना असगत न होगा कि कालान्तर मे इन्ही आधारो पर सागीतिक गीतो व धुनो की रचना की गयी होगी। दवताओ की प्रशस्ति परक गान से ही मनुष्यों को भी मनोरजन हेतु प्रेरणा मिली होगी। फलत गीत-सगीत का आधुनिक स्वरूप निर्धारण हुआ होगा।

इस प्रकार वैदिक वाङमय मे प्राप्य विभिन्न साक्ष्यों के आलोक मे कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज मे सगीत की विभिन्न शैलियाँ प्रचलन मे थीं। वर्तमान गीत सगीत के मूल उत्स वैदिक साहित्य म विद्यमान है।

पौराणिक वाङमय में संगीत :-

भरत के सास्कृतिक इतिहास की दृष्टि से पुराणों का अतीव महत्व रहा है। पुराणों के विषय 5 भागों मे विभक्त है -

सर्गश्च प्रति सर्गश्च, वशोभन्वन्तराणि च

वशानुचरितश्चैव पुराण पञ्चलक्षणम् ।'

पुराण महर्षि श्रीकृष्ण द्वैयापन व्यास जी की अप्रतिम कृति के रूप मे प्रतिष्ठित है। पुराणों की सख्या मुख्यत अठारह मानी गयी है, जिनमे मत्स्य, बाराह, अग्नि, विष्णु, भागवत, मार्कण्डेय, पद्म, लिग, स्कद, बामन, कूर्म, ब्रह्म, वैवर्त, गरूड़, ब्रह्माड इत्यादि उल्लेखनीय है। पुराण साहित्य का सगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। पुराणों से हमे भारतीय सगीत के विभिन्न स्वरूपों एव सामाजिक सांस्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण के सम्बन्ध मे उपयोगी ज्ञान प्राप्त होता है। पुराणों मे गीत, वाद्य, नृत्य - को पूजा की पवित्र सामग्री के रूप मे विवृत किया गया है। वैदिक सामगान और गान्धर्व दोनो ही विधाओ का पौराणिक वाङमय मे समावेश हुआ है, विष्णु पुराण मे 18 विद्याओं के अन्तर्गत् गाधर्व को भी परिगणित किया गया है। काव्यचर्चा, गीत, पुराणादि भगवान विष्णु के शरीर माने गये है -

काव्यालायाश्च पे केचिद् गीतकान्यखिलानि च।

शब्द मूर्ति धरस्पैतद्वपुर्विष्णोर्महात्मन ।। 22/85 ।।

विभिन्न पुराणो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सगीत सामगान के ही समान पुण्यवान है, जो पूजा, अर्चना, जप आदि के माध्यम से अनेकानेक भक्तगणों, ऋषि, महर्षि, विद्वानों से सम्बद्ध रही है। एक व्यवसाय अथवा शिल्प रूप मे तो नहीं किन्तु पुण्य कृत्यों के संवादनार्थ सगीत सर्वथा ग्रहण करने योग्य है। यही पुराणों का ध्येय रहा है। भगवत्सेवा मे प्रस्तुत संगीत मे भक्ति का माधुर्य रहता है, जो कलाकार को ईश्वर का सामीप्य प्रदान कराता है अथवा मोक्ष का साधन बनता है। स्कद पुराण मे 'नाद' को साक्षात् रिख का स्वरूप कहा गया है। नारद एव तुबरू को नाद का ज्ञाता बताया

गया है। इसके साथ ही यह भी कहा गया है कि सगीत के द्वारा विष्णु एव शिवार्चन करना मोक्षप्रद होता है। शिव पूजा मे सागीतिक उपहार अर्पित करने, अथवा आयोजन करवाने से शिव की कृपा प्राप्त होती है। उच्च स्वर से भगवनाम सकीर्तन करना, समस्त विश्व के लिए पुनीत एवं कल्याणकारी है। पद्मपुराण मे जहाँ एक ओर नृत्य एव गायन के साथ ही वादन क्रिया को न करने की बात कही गयी है वहीं दूसरी ओर यह भी विवृत है कि "यदि मनुष्य बलवान हो तो, शक्ति को व्यर्थ मे न गँवाकर, भगवान के सम्मुख नाचे गाये, जिससे उसे परमपद की प्राप्ति होगी।[1] यही बात भागवत महापुराण मे भी प्रकारान्तर से कही गयी है जिसमे श्री कृष्ण उद्धव से कहते है कि 'मेरे चरित्र का गान करना, स्तुति करना, नृत्याभिनय करना, श्रवण, मनन मे समय को लगाना चाहिए। इसी प्रकार मत्पपुराण में विभिन्न व्रतो मे गीत, वाद्य एव नृत्य को माध्यम बनाने की बात कही गयी है, भगवत्स्मरण एव गुणगान से रात्रि जागरण वास्तविक रूप मे सफल होता है। विष्णु धर्मान्तिर पुराण मे कहा गया है कि नृत्य कला को व्यावसायिक रूप न देकर, उसे क्रय-विक्रय का माध्यम नहीं बनाना चाहिए। ऐसे लोगो को 'कुशीलव' कहा गया है, किन्तु देवस्तुति एव उपासना मे नृत्य सगीत कल्याणकारिणी बनायी गयी है। धार्मिक क्रिया-कलापों मे सगीत को विशेष स्थान दिया गया है।

सैद्धान्तिम दृष्टि से भी सगीत का महत्व पुराणों मे अनेकश प्राप्त होता है। सगीत शास्त्रो मे 'प्रणव' का स्तोभाक्षर के रूप मे प्रयोग करने का जो नियम विवृत्त है, वह कदाचित् पौराणिक साक्ष्यों के आधार पर ही है।

स्कंदपुराण में ब्रह्मा ने महेश्वर शिव की अर्चना करते कहा है- वीणा, वेणु, मृदग इत्यादि वाद्य यंत्र, इक्कीस मूर्छनाए, तान, स्थायी, सचारी भाव, ताल तथा गीत,

---

1- पद्मपुराण - अ 61/93-102

वाद्य, नृत्य - ये सभी शिव का ही स्वरूप है।[1] इसमे गाथागान के उपदेशात्मक स्वरूप का भी परिचय प्राप्त होता है। स्कदपुराणान्तर्गत रैवा खड मे विवृत है कि नारद ने भगवान शिव की कृपा से सप्तस्वर तीनग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाओ एव दिव्य नृत्य, गीत कला की सप्राप्ति की थी। आधुनिक युग मे गाये जाने वाले जागरण गीतों का प्राचीन आधार पौराणिक परपरा ही रही होगी जैसा कि स्कदपुराण के ही वैष्णवखड मे वर्णित इन श्लोको से स्पष्ट होता है - उत्तिष्ठोत्रिष्ठ गोविद, उत्तिष्ठ गरूडध्वज, उत्तिष्ठ कमलाकात, त्रैलोक्य मडल कुरू।' अनेक भक्तिकालीन सककवियों की भक्ति रचनाओं मे इसी परपरा का आधार प्रतीत होता है।

देवीभागवत स्कंद 3 अ0 10 मे देवदत्त और गोभिल मे स्वर भग सम्बन्धी विवाद के उल्लेख से पता चलता है कि 'गानदोष' विवेचन परपरा भारतीय सगीत मे अति प्राचीन रही है। इसी का कालातरीय शिक्षा ग्रन्थों एव सगीत शास्त्रों मे विस्तार प्राप्त होता है। देवर्षि नारद एव पर्वत ऋषि प्रसग मे नारद द्वारा वीणा युक्त गान का उल्लेख मिलता है। उनकी सगीत कुशलता एव स्वर, ग्राम, मूर्च्छनादि का भी उल्लेख मिलता है। इसी पुराण मे भगवती सरस्वती को सगीत की अधिष्ठात्री देवी के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया। राधामहोत्सव प्रसग से (स्कद 7 अ0 12) स्वरताल पद के सम्पर्क प्रयोग द्वारा रसात्मक सिद्धि के सिद्धान्त का भी परिचय प्राप्त होता है। मत्स्यपुराण मे सामसंहितागायाको को 'कार्ता' संज्ञा दी गयी है। वैष्णव खड में भगवान के विभिन्न नामों का स्वरयुक्त गान किया गया है, गोविद दामोदर माधवेति। कालातर मे चैतन्य महाप्रभु जैसे सेतों की सगीत का यही आधार रहा है। इसके अतिरिक्त वैष्णव खण्ड मे यमुना के माध्यम से, गोपियों को वीणा, वेणु, मृदगादि वाद्य यत्रों सहित श्रीकृष्ण के

1- स्कदपुराण - काशीखण्ड, पृ0 645, 673

नाम सकीर्तन एव महत्वपूर्ण सगीत सम्बन्धी सिद्धातो का प्रतिपादन किया गया है। हरिवश पुराण मे पृघुराज के यज्ञ मे सूत एव मागध की उत्पत्ति की चर्चा की गयी है, जो स्तुतिगान हेतु नियुक्त किये गये थे।

पुराणों मे वाद्यों का सम्बन्ध गगा-गायत्री सहस्रनाम मे देवियों से स्थापित कर वाद्यों की पवित्रता द्योतित की गयी है। गायत्री को गानलोलुपा, झस्सरी, वाद्यकुशला, डमरू, निनादिनी, ढक्काहस्ता इत्यादि विरूद प्रदान किये गये है। इसी प्रकार विभिन्न पुराण ग्रथो मे गगा को कलावती, गान वत्सला, विपञ्ची वीणारूप, झल्लरी वाद्य कुशला आदि के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है।

सीत की अधिष्ठात्री सरस्वती के अलावा ब्रह्मा शिव विष्णु आदि का वाद्यों से सम्बन्ध विवेचित है। नटराज एव कृष्ण के विभिन्न सगीतिक स्वरूप वर्णित है। इसके साथ ही वाद्यों के अनेक प्रकारों का अनेकश उल्लेख मिलता है, यद्या, वीणा (तन्त्रवाद्य), वल्लकी, विपञ्ची, अवनद्ध वाद्यों मे - मुरज, पुष्कर, मृदग, पटह, पणव, झल्लरी, ढक्का, दुदुभि, दुर्दुर, डमरू आदि का उल्लेख हुआ है। सुषिर वाद्यों के अन्तर्गत् शख, वेणु, गोमुख, आडम्बर, भेरी और घन वाद्यों मे झाँझ, घटा, आदि तथा विशेष वाद्य थे जलावाद्य जलदर्दुर, मुखवादित्र इत्यादि।

मगलगान व जम्बूलमालिका (विवाहावसर पर परिहास) के रूप मे स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले देशी सगीत का हरिवश पुराण मे स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण-बलराम के मधुरा आने पर वृद्धस्त्रियों द्वारा स्तुति एव मगल गान का उल्लेख प्राप्य है, तदनुसार - वृद्ध सीजन सधैश्च गाय द्वि स्तुति मगलम् विवाह के अवसर पर बारातियों को 'गारी गीत' सुनाने की परपरा का सकेत भी अनिरूद्ध के विवाहोत्सव मे नारद श्रीकृष्ण रावाद मे मिलता है।

पुराणों मे गायन की विभिन्न विधियों का वर्णन विस्तार से मिलता है। गाधर्व का प्रयोग देवताओं की अर्चना और मनोरजन के समय किया जाता था, ऐसे भी सकेत मिलते है।

हरिवश पुराण मे नृत्य, गीत, वाद्य वादन के विशिष्ट आयोजन का वर्णन प्राप्त होता है। यदुवशी कुमारों व स्त्रियों द्वारा गीतों के गायन मे प्रवीणता का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

पुराणग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गधर्व गण, अप्सराये एव किन्नर गीत नृत्य मे पारगत थे तथा विशेष समारोहों मे मृत्युलोक भी जाया करते थे। अप्सराओं मे तिलोत्तमा, उर्वशी, रम्भा, मेनका आदि प्रमुख थी जबकि चित्ररथ, तुम्बरू, नारद, हाहा, हूहू, चित्रसेन आदि प्रमुख गधर्व थे। पौराणिक साहित्य से इस बात की भी जानकारी प्राप्त होती है कि गायकों व वादकों के अनेक समूह बन गये थे जैसा कि वैणिक, मादर्दगिग, पाणविक, मौरजिक इत्यादि अनेक सामूहिक नामो से स्पष्ट होता है।

नृत्य कला के अन्तर्गत् रास नामक सामूहिक नृत्य के लिए 'हल्लीसक' तथा गाधर्व के एक विशेष प्रकार का उल्लेख हुआ है जिसे 'छालिक्य' कहा गया है। हरिवश मे छालिक्यगान की विशेष प्रशसा की गयी है।

मत्स्यपुराण मे आचार्य भरत की उत्पत्ति प्रजापिता ब्रह्मा से हुई बतायी गयी है। इसके साथ ही इसी पुराण मे उर्वशी एव पुरूरूवा के वृक्षरूप धारण का भी प्रसग प्राप्त होता है, जिन्हे भरत द्वारा शापित किया गया था।

वायुपुराण मे संगीत शास्त्रीय विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख हुआ है। इसमे गाधर्व सिद्धान्तों मे वर्णित किये गये विषयो का भी विवेचन प्राप्त होता है जो सामगान की परपरा से पृथक है। इसमे गाधर्व के षड्जादि सप्त स्वरो का सम्बन्ध सप्तकल्पों

से स्थापित किया गया है। इससे सप्तस्वरों के विकास की दीर्घकालीन अवधि का आभास मिलता है। इसमे सप्तस्वर, तीनग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाये तथा उनचास तानों को 'स्वरमडल' की सज्ञा दी गयी है। वर्ण, अलकार एव गीतों का वर्णन भी इस पुराण मे प्राप्त है। गीतों मे - वहिर्गीत, मुद्रक, अपरातक तथा उत्तर के विवरण प्राप्त होते है। वस्तुत वायुपुराण मे वर्णित सगीत शास्त्र के सिद्धान्त भरतपरपरा से अनेकधा भिन्न प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार पौराणिक वाडमय मे सगीत सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण एव उपादेय प्रसगो का विस्तार से वर्णन मिलता है, अत पुराण साहित्य की सागीतिक उपादेयता निरापद न महत्वशील है। पुराणों मे गीत, वाद्य, नृत्य इन तीनों कलाओं को पूजा की अनिवार्य पवित्र सामग्री के रूप मे प्रतिष्ठित किया जाना निसदेह महत्वपूर्ण है जिनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप मे ज्ञानियों, महापुरूषों, भक्तों से अवश्य रहा है।

रामायण महाकाव्य में संगीत :-

रामायण कालीन सागीतिक इतिहास प्राचीन भारतीय साहित्य मे महत्वपूर्ण व शिक्षाप्रद रहा है। आदि काव्य के रूप मे सम्प्रतिष्ठित महर्षि बाल्मीकि की रचना रामायण गेय शैली मे की गयी थी, स्वयम् महर्षि रचित अपनी गान शैली भी थी जिसकी शिक्षा उन्होंने श्रीराम के दोनों पुत्रों कुश-लव को प्रदान की थी। रामायण महाकाव्य का गेय रूप गाधर्व के सिद्धान्तानुकूल था। वस्तुत भारतीय काव्य और सगीत का सम्बन्ध आदिकाल से ही घनिष्ठ रहा है क्योंकि कविहृदय व्यक्ति की भावाभिव्यक्ति ही रचना के रूप मे कविता कहलाती है, तमसा तट पर महर्षि बाल्मीकि ने जब क्रौञ्च-मिथुन (जोडे) के नरपक्षी को व्याघ्र द्वारा मारे जाने पर मादा पक्षी का करूण-कलरव सुना तो सहसा उनके मुख से अनुष्टुप छद मे निषद्ध श्लोक निस्तृत हुआ -

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।

यत् कौञ्चमिघुनादेकमवधी काममोहितम् ।।

सहसा शोक विग्न मानस से प्रस्फुटित उक्त श्लोक पर जब महर्षि ने विचार किया तो उन्होंने शिष्य से कहा -

पादबद्धोऽक्षर समतन्त्रीलय समन्वित ।

शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यद्या।।[1]

अर्थात् 'हे तात्' शोकाकुल स्थिति मे जो यह श्लोक मेरे मुख से निस्तृत हुआ है, यह चार चरणों मे आबद्ध है, इसके प्रत्येक चरण सम अक्षरों वाले है। उसे वीणा की लय पर गाया जा सकता है, अत मेरा यह वचन श्लोक रूप मर्ते गये होना चाहिए, अन्यथा नहीं।

इस प्रकार ब्रह्मा की प्रेरणा व नारद द्वारा प्रस्तुत राम कथा के आधार पर महर्षि बाल्मीकी ने उक्त श्लोक को आधार बताया, तदनन्तर रामायण महाकाव्य की सर्जना की।

बाल्मीकि रामायण मे विवृत है -

पाठये गेये च मधुर प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम्। जातिभि सप्ताभिर्युक्त तंत्रीलयसमन्वितम्

रसै श्रृगार करूण हास्यरौद्रभयानकै वारादिभी रसैपुक्त काव्यमेतददगायताम्।

तात्पर्य यह है कि वह महाकाव्य पढने और गाने दोनों मे मधुर तीन प्रमाणो से युक्त सप्तजातियों मे निबद्ध कर, वीणा के साथ स्वर एव ताल मे गेय, नव रसों श्रृगार, करूणा, हास्य, रौद्र, भयानक, वीरादि से समन्वित है। स्पष्ट है रामायण मे सगीत परक शब्दो का प्रयोग, सगीत की तत्कालीन श्रेष्ठ स्थिात का द्योतन करता है। 'त्रिप्रमाण' का आशय

1- बाल्मीकि रामायण, सर्ग 2 बा0का0 18

है ताल के विलंबित मध्य 'द्रुत-तीन लयों से युक्त - प्रमाणमिति ताल परिच्छिन्न गानम्', सात शुद्ध जातियाँ। जैमिनीयाश्वमेध नामक ग्रन्थ मे वर्णित है कि कुमार लव गान के साथ ताल दे रहे थे और कुश वीणावादन कर रहे थे।

रामायण मे उल्लेख मिलता है कि ल। एव कुश की योग्यता को परखकर महर्षि ने उन्हे रामायण गान की शिक्षा दी थी।[1] क्योंकि उनमे गाधर्व गुण धारण करने की क्षमता थी।

महर्षि बाल्मीकि से सम्पूर्ण गाधर्व एव रामायण की शिक्षा प्राप्त कर लव और कुश गाँधर्व तत्व, मूर्च्छना एव स्थान के प्रयोग मे निष्णात, मृदुभाषी, स्वर सम्पदा से परिपूर्ण हो गये।[2]

महर्षि ने लव-कुश को ऋषि-समूह के समक्ष रामायण के सस्वर गान का आदेश दिया, जो समस्त गाँधर्व तत्वों से युक्त था इस पर ऋषियों ने सम्मति व्यक्त की एव आशीर्वाद प्रदान किया 'अभिगीतमिद गीत सर्व गीतिषु कोविदौ। आपुष्य प्रष्टि जनन सर्वश्रुति मनोहरम्।" अर्थात् समस्त गीतों के विशेषज्ञ राजकुमारों । यह काव्य आयु एव पुष्टिप्रदाता, सबको प्रिय, श्रवण सुखद मधुर सगीत से युक्त है। तुम दोनों ने इसका गायन बडे ही सुदर ढग से किया है। उन्होंने दोनों कुमारों को अनेक विद्यार्थी जनोचित उपहार भी प्रदान किये।

रामायण मे श्रीराम द्वारा आज्ञा प्राप्त लव एव कुश के सुमधुर गायन का वर्णन किया गया है, उससे उनकी सगीत कुशलता स्पष्ट होती है - तत्री के लय के साथ, स्वेच्छानुसार श्वास लेते हुए - स्वचित्तायतनि स्वनम् - मधुर रसात्मकता से युक्त,

---

1- बाल्मीकि रामा0 स0 4 श्लोक 4-7 बालकाड

2- बाल्मीकि रामा0 स0 4 श्लोक 10-12 बालकाड

सुस्पष्ट उच्चारण युक्त गान को जब श्रोताओं ने सुना तो मत्रमुग्ध हो गये। स्वय श्रीराम उनके सुदर गायन कला को देखकर मुग्ध हो गये। वह गान 'मार्ग विधान युक्त' था। गाधर्व के साथ 'मार्ग शब्द का प्रयोग रामायण काल मे गाधर्व के अर्थ मे मार्ग शब्द के प्रयोग को प्रमाणित करता है 'मधुर' और 'रक्त' गान के गुण है - मधुरशब्देन माधुर्य जिसका आशय है भावानुसार अगों द्वारा की गयी चेष्टा।

लकाकाड सर्ग 94 मे प्राचीन सगीतोचार्यों द्वारा बताये गये जाति के नियमो से युक्त - अपूर्वा पाठ्यजाति च समलकृताम् विभिन्न लय-तालों मे निबद्ध तत्री के साथ कौतूहल उत्पन्न करने वाले रामायण गान का उल्लेख है -

प्रमाणैबहुभिर्बद्धा तत्री लय समत्वितम् कौतूहलपरोऽभवत्।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सभी विद्या विशारदो ने अपने-अपने विषयों की दृष्टि से रामायण गान मे प्रयुक्त विषयो की प्रामाणिकता को स्वीकार किया था। रामायण गान को ताल एव लय से युक्त - तत्वाललयोपपना, विभिन्न सर्गों मे विभाजित वीणा वादन के व्यजनों से युक्त-तत्रीलय व्यञ्जन योगयुक्तम्।' कहा गया है। यहा व्यजन से तात्पर्य वीणावादन मे प्रयुक्त 'धातु' से है।

नाट्यशास्त्र अभिनव भारती मे धातु का तात्पर्य - तत्री मे प्रहार विशेष से उत्पन्न रजक ध्वनि से है। व्यजन धातु के प्रयोग से वीणा वादन मे विचित्रता उत्पन्न की जाती है। वीणा के साथ 'व्यजन' शब्द का प्रयोग कर महर्षि बाल्मीकि ने वादन विशेषज्ञता का आभास दिलाया है। रामायण मे प्रसग आया है कि -

शत्रुघ्न जब मथुरा पुरी से लौट रहे थे तो उन्होंने महर्षि बाल्मीकि के आश्रम मे रात्रि विश्राम किया था और रामायण-गान को सुना था। तत्रीलयसभायुक्त त्रिस्थानकरणान्वितम्, अर्थात् वीणावादन की लय तीन स्थानों - मद्र, मध्य व तार मे प्रयुक्त 'करण' नामक धातु से युक्त थी। उसका सम्बन्ध गुरू लघु प्रयोग के कारण लय से

अनिवार्यत जुडा हुआ था। रामायण मे प्रयुक्त 'समतालसमचितम्' मे नाट्यशास्त्र के अनुसार 'सम' के आठ प्रकार है। अक्षर सम, अग सम, ताल सम, यमि सम, ग्रह सम, न्यास सम, अपन्यास सम, पाणि सम। इन 'सम' भेदों के रामायण मे प्रयोग से निष्कर्षित होता है कि रामाण गान, गाधर्व गान, व वादन के नियमों से युक्त गान था। अनेक विद्याओं मे पारगत, सुयोग्य गुरू के निर्देशन मे कुश व लव ने अनेक विद्याये सीखीं और गाधर्व गान मे दक्ष हो गये। वे गाधर्व के विभिन्न नियमों - स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, जाति, ताल, लय, वादन की विशिष्ट क्रियाओं, करणादि धातुओं, कठ साधनानुकूल सूक्ष्म विद्याओं, गायकों, वादकों के गुणों से पूरी तरह परिचित हो गये थे। रामायण के बालकाड सर्ग-5 मे उल्लिखित है - वधू नाटक सधैश्च सयुक्ता सर्वथा पुरीम् अर्थात् स्त्रियो से युक्त (वधू) नाट्य मडलियों अयोध्या पुरी मे विद्यमान थी। इससे सामान्य वर्ग मे गीत-सगीत जैसी ललित कलाओं के प्रचलन का द्योतन होता है। उस अयोध्यापुरी मे अन्यान्य कलाओं के शिल्पी निवास करते थे जिनमे गीत सगीतकार भी थे। ऐसा सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। श्रीराम सर्वगुण सम्पन्न थे, विविध कलाओं के ज्ञाता भी थे-

वैहारिकाणा शिल्पाना विज्ञातार्थ विभागवित्।

आरोहे विनये चैव युक्तो वारणवाजिनाम्।। अयो0 सर्ग 1/28.

स्पष्ट है, सगीत वाद्य, नृत्य, चित्रकलादि शिल्पों का प्राधान्य था। अयोध्या की प्रजा ने श्रीराम को गाँधर्व विद्या मे भूतल पर सर्वश्रेष्ठ बताया।[1] इससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन शिक्षा प्रणाली मे गाधर्ववेद भी समाहित था, जिसकी शिक्षा आचार्यो द्वारा प्रदान की जाती थी। महर्षि बाल्मीकि ने रामायण गान के माध्यम से लव एव कुश को गांधर्व शिक्षा प्रदान की थी। यही नहीं महर्षि वशिष्ट भी गाधर्व विद्या पारगत थे जिन्होंने

1- गाधर्वे च भुवि श्रेष्ठो वभूव भरताग्रज, अयो0 2/35

राम एव भाइयों को शिक्षा प्रदान की थी, क्योंकि भरत जब ननिहाल से वापस आ रहे थे तो अयोध्या उन्हे कई तरह से सूनी सी प्रतीत हो रही थी -

"भेरीमृदगवीणाना कोणसधहित पुन किमद्य शब्दो विरत . ।। (अयो0 71/29)

अर्थात् भेरी मृदग, वीणा के वादनदड (कोण से) उत्पन्न ध्वनि से सदेव निनादित रहने वाली अयोध्या आज सूनी लग रही हे, जो अशुभ सूचक है।" इस प्रकार भरत द्वारा सगीत प्रिय अयोध्या का वर्णन एक स्पष्ट साक्ष्य है। इसके साथ अयोध्यापुरी मे सागीतिक वातावरण की समुस्थिति के अन्याय प्रमाण भी प्रसगत उल्लेखनीय है। श्रीराम के वनगमन के अवसर पर कहा गया है - राजा दशरथ का जो भवन सदैव मुरज-पणव वाद्यों के मेघ सदृश ध्वनि से अनुगुञ्जित रहता था, वह नारियों के विलाप से दु खमय लग रहा है।[1]

अयोध्यापुरी मे गीतोत्सव, वादन व नृत्य के आयोजन बद हो गये, लोग हतोत्साहित से हो गये, समूची अयोध्या सूनी, निर्जन सी हो गयी है, और ऐसी लग रही थी मानो जलहीन सागर हो।

अयोध्या नगरी के साथ ही बाल्मीकि रामायण मे किष्किन्धापुरी मे भी सागीतिक वातावरण की गूँज दिखती है जैसा कि विवृत्त है, लक्ष्मण को सुग्रीव के अन्त पुर मे "वीणा के साथ किसी के द्वारा कोमल कठ से, गीतों की सुमधुर ध्वनि सुनायी पडी, जो सम ताल व पदाक्षरों से युक्त थी।[2] रावण की नगरी लका मे तो सगीत का मानों साम्राज्य ही छाया हुआ था, जहाँ वीणा, विपची, प्रणव, पटह, डिडिम, गुड्डुक, मुरज, आडम्बर, मृदगादि आतोद्य वादन मे स्त्रिया पारगत थीं। वे नृत्य के साथ सगत भी

1- गाधर्वे च भुवि श्रेष्ठो वभूव भरताग्रज, अयो0 339/4।।

2- किष्किन्धा0 स0 33/2।।

करती थीं। वहाँ तो नारियाँ सुपुप्तावस्था मे भी अपने-अपने वीणा, प्रणव, मृदगादि विभिन्न वाद्य यत्रों को पास मे ही रखे हुये थीं।[1]

लका नगरी मे जिस समय हनुमान जी घूम रहे थे उन्हे वीणादि वाद्यों की सुखद ध्वनि सुनायी दी, तीनों सप्तकों के स्वर भी अनुगुञ्जित हो रहे थे। इन सभी प्रसगों से रामायण मे गीत सगीत की लोकप्रियता के सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। रावण स्वय एक सगीतज्ञ था, उसके द्वारा शिव की सस्वर स्तुति की गयी थी।

इसी प्रकार रामायण मे सगीत के विभिन्न रूपो की भी झलक मिलती है। अतिथि आगमन के समय, स्वागत हेतु विवाहोत्सवों में अन्य सामाजिक अवसरों पर तथा युद्ध के समय विभिन्न रूपों मे सगीत का प्रयोग होता था। उस समय सास्कृतिक,सामाजिक, धार्मिक व मागलिक प्रत्येक अवसरों पर सगीत की उपादेयता थी। तत्कालीन समाज मे पुरूषो के साथ स्त्रिया भी गीत, वाद्य, नृत्याभिनय कला मे पूर्णत दक्ष थीं। जनसामान्य से लेकर महर्षि एव राजपुरूष - सभी गांधर्व और गान के उभय पक्षों से अवगत थे। वस्तुत रामायण मे सगीत के लौकिक एव पारलौकिक दोनों ही सुखों की सम्प्राप्ति मे सगीत कला एक सहायक श्रेष्ठ एवं आवश्यक तत्व थी। यह बात हमे महर्षि बाल्मीकी इस अन्यतम कृति मे स्पष्टत· ज्ञात होती है। निश्चय ही यह आदिकाव्य (रामायण) सगीतिक परिवेश से ओतप्रोत था।

महाभारत में प्राप्य सांगीतिक तत्व .-

महाभारत श्रीकृष्णद्वैपायनव्यास जी की अप्रतिम एवं महान् रचना है, जिससे भारतीय सस्कृति समग्र पक्षों की जानकारी प्राप्त होती है। उस ग्रन्थ के सम्बन्ध

1- सुदरकाड सर्ग 10-11

मे मनीषियों की सम्मति रही है - यदि ह्यास्ति तदन्पत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् - अर्थात् जो महाभारत मे है, वहीं अन्यत्र है और जो इसमे नहीं है, वह (अन्यत्र) कहीं नहीं है। निस्सदेह इस सुविशाल ग्रन्थ मे भारतीय धर्म, दर्शन, राजनीति, युद्धनीति, ज्ञान, योग्य, वैराग्य, भक्ति, समाजिक, राजनीतिक स्थितियों, कलादि ज्ञानविज्ञान से सम्बद्ध विषयों वशावलियों, मन्वन्तरों, आख्यानोपाख्यानों तथा प्राचीन ऐतिहासिक वृत्तान्तों का भी सविस्तार वर्णन द्रष्टव्य है।

महाभारत काल मे सगीत के सभी पक्षों का विकास हुआ। इस काल मे सगीत के त्रिविध स्वरूपों का - गीत, वाद्य एव नृत्य का सम्यक परिचय विभिन्न प्रासगिक साक्ष्यों से प्राप्त हो जाता है। उस समय पुत्र-जन्म के शुभ-अवसर पर नृत्य एव सगीत के भव्य आयोजन किये जाते थे, जो अद्यावि सामाजिक उपयोगिता को कायम रखे हुए है। पाडुपुत्र सुवीर अर्जुन के जन्म के मागलिक अवसर पर अनेक गधर्वो ने गीत गाये एव 'तुम्बरू ने मधुर गान किया था। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।

गन्धर्वे संहित श्रीमान् प्रागायत च तुम्बुरू (54) इस अवसर पर भीमसेन, उग्रसेन, अनद्य तृणप नन्दिा चित्ररथ इत्यादि अनेक गन्धर्वों का आगमन हुआ और सुप्रसिद्ध तुम्बरू, हाहा, हूहू का समुधुर गान प्रस्तुत हुआ ।[1] यही नहीं आदिपर्व के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि मेनका, सहजन्या, कर्णिका, पुजिकस्थला, ऋतुस्थला, धृताची, विश्वाची, पूर्वचित्ति, उम्लोवा, प्रम्लोवा और उर्वशी जैसी प्रधान अप्सराओं ने गीत गाये एव अन्यान्य अप्सराओं ने नृत्य में भाग लिया था।

महाभारत के शांतिपर्व में विवृत है कि व्यास पुत्र शुकदेव जी के जन्म की बेला मे भी 'विश्वावसु, तुम्बरू , हाहा, हूहू' जैसे गन्धर्वो ने गायन प्रस्तुत किया था तथा अप्सराओं ने नृत्य।

अभिमन्यु पुत्र परीक्षित के जन्मोत्सव मे भी अनेक गायक एव नर्तक सम्मिलित हुए थे और अपनी कला का प्रदर्शन किया था।

महाभारत के आदिपर्व मे अनेक गन्धर्वों की उत्पत्ति का उल्लेख मिलता है, तत्कालीन समाज मे सगीत मानव-जीवन के सभी अवसरों पर विद्यमान थी यहाँ तक कि अतिम सस्कार पर्यन्त इसका सम्बन्ध चला आ रहा था।

यही कारण है कि अनेक सम्मान्य पुरूषों, राजाओं-महाराजाओं के शवयात्रा के समय भी अनेक प्रकार के सागीतिक वाद्यों का प्रयोग किया जाता था और यह परपरा अद्यापि वर्तमान है। महाराज पाडु की अतिम यात्रा के समय वाद्यों का वादन किया गया था।[1] पितामह भीष्म के महाप्रयाण काल मे देवताओं ने दुदुभि वादन किया था और फूलो की वर्षा भी की गयी थी। इतना ही दाह-सस्कार के समय सामगायकों ने सामगान भी उनके सम्मान मे गाया -

यजन बहुशश्चाग्नौ जगु सामानि सामगा ।[2]

आज भी व्यक्तियों की शवयात्राओं मे घटा, घडियाल, ढोल, मजीरा, शखध्वनि की जाती रही है, और हरिनाम का कीर्तन भी किया जाता रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि सगीत किसी न किसी रूप मे, व्यक्ति के जीवन मे रची बसी थी।

सगीत जीवन मे नवरसता का सचार करती रही है। यही कारण है कि 'प्रभावी' के रूप मे इसका सदुपयोग मगल गान, होता रहा है। श्रीकृष्ण व युधिष्ठिर के भवनों मे अनेक पारगत सूत, मागध, बदीजन सुमधुर गान करते थे। इनके राजप्रासाद सदैव

1- सर्ववादित्र नादैश्च समलंचक्रिरेतत । आदि प0अ0 126/

2- म0भा - अनु0 पर्व अ0 169/16

वीणा, शख, मृदग, वेणु इत्यादि वादन-यत्रों के स्वर से अनुगुञ्जित रहते थे। पाडव अर्जुन जिस समय द्वारिकापुरी मे निवास करते थे, तो उन्हे प्रात बेला मे सुमधुर गीत, स्तुति, मगलपाठ द्वारा वीणा की मधुर ध्वनि से जगाया जाता था। महाभारत के उद्योग पर्व मे उल्लिखित है कि बदी, मागध सूत एव स्त्रियो द्वारा मधुर गीत गाया जाता था। महात्मा विदुर के आवास स्थल पर श्रीकृष्ण को जगाने के लिए सूत व मागधों ने गायन-वादन किया था।

विभिन्न राजपसादों मे सगीत प्रेरणा व उत्साह के स्रोत रूप मे प्रतिष्ठित रही है। राजा के निवास स्थान नगर एव दुर्ग मे सागीतिक वातावरण का होना मगल कारक माना गया है।[1] गीत एव वाद्यों के समुचित उपयोग के सम्बन्ध मे राजपुरोहितो के दायित्व होते थे। महाभारत मे विवृत है कि -

चित्रसेन, महामात्योगन्धर्वाप्सिरस्तथा,

गितवादित्रकुशला साम्यतालविशारद ,

प्रमाणेऽथ लये स्थाने किन्नरा कृतनिश्रमा ।।

सयोदितास्तुम्वुरूणा गधर्व सहितस्तदा,

गायन्ति व्यितानैस्ते यथान्याय मनस्विन ,

पाण्डुपुत्रानृर्षीश्चैव रमयन्त उपासते ।(39)। सभी प0 37/39

युधिष्ठिर की राजसभा मे अनेक गधर्व किन्नर तुम्बरू की आज्ञा से विभिन्न वाद्य यत्रो के साथ गान करते थे। इस प्रकार सभी जनों का मनोरजन संगीत गीत से होता रहता था। महाभारत मे साम्यताल प्रमाण, लय, स्थान, दिव्यतान इत्यादि सागीतिक शब्दों का उल्लेख हुआ है जिनका सम्बन्ध गाधर्वों से रहा है।

1- शान्ति पर्व0 26/91। सुशुभ सानुनाद च सुप्तशस्त निवेशनम् ।

वनपर्व मे उल्लेख आता है कि अर्जुन जब इन्द्र लोक को प्रस्थान कर रहे थे तो उनके स्वागतार्थ गधर्वो द्वारा गाथा गान किया गया था। उसके साथ ही अनेक अप्सराओं ने भी विभिन्न भाव भगिमाओं युक्त मधुर नृत्य प्रदर्शित किया था।

न केवल राजप्रासाद, सभाए अपितु ऋषियों-महर्षियों के पुनीत आमश्रस्थलों मे भी सागीतिक वातावरण विद्यमान था। आदि पर्व अ 76 में प्रसंगित है कि देवगुरू वृहस्पति के पुत्र कचव शुक्राचार्य के आश्रम मे जब अध्ययन कर रहे थे तो उन्होंने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी को प्रसन्न रखने हेतु सगीत कला का प्रदर्शन किया था, वहीं देवयानी ने भी उनका साथ निभाया था।

महाभारत काल तक सामगान की भी अनेक शाखाये विद्यमान थीं, ऐसे साक्ष्य प्राप्त होते है, राजा दुष्यन्त के महर्षि कुण्व के आश्रम मे प्रवेश के समय ऋग्वेदी ब्राह्मणो ने ऋचा का सस्वर पाठ किया था तथा सामवेदी ऋषियो ने भारूण्ड साम का गान किया था। 'पूगयशिप' नामक साम का गायन भी प्रस्तुत किया गया था।

कुदलीवन मे गंधर्वों व अप्सराओं ने श्री हनुमान जी को रामचरित का गान कर आनदित किया था, जिसका उल्लेख उन्होंने भीम से किया भी है तदनुसार,

तदिहप्सरसस्तात् गन्धर्वाश्च सदानघ

तस्य वीरस्यचरितम् गायन्तो रमयप्तिमाम।' (वनपर्व अ0 148)

श्रीकृष्ण द्वारा उपमन्यु ऋषि के आश्रम को मधुरगीतों व सामगान से अनुपूरित बताया गया है।[1] दानव-गुरू शुक्राचार्य के आश्रम मे सगीत मनोरंजन का प्रमुख केन्द्र थी। इस प्रकार आश्रमों मे सगीत के विभिन्न स्वरूपों - मनोरजन व उपासनात्मक - मे सगीत का उपयोग किया जाता था।

1- अनुशासन पर्व अ0 14

याज्ञिक अवसरों पर भी गीत-गान का महत्वपूर्ण स्थान था। यज्ञ कार्य के बीच के रिक्त समय मे नारद, तुम्बरू आदि अनेक गधर्वो द्वारा मनोरजनार्थ गीतों का गायन किया जाता था युधिष्ठिर द्वारा सवादित राजसूय, अश्मेघादि यज्ञों मे विभिन्न गन्धर्वो, किन्नरों, अप्सराओं ने गीत, नृत्य, वाद्य कलाओं का प्रदर्शन किया था, जिसे 'सगीत' नाम से परिभाषित किया गया है। महाभारत मे जहाँ एक ओर सगीत शिल्प द्वारा अर्थोपार्जन को शूद्रवृत्ति के अन्तर्गत रखा गया है, वहीं दूसरी ओर राजाओं व कुलीन जनों के लिए कलाओं का ज्ञान भी आवश्यक माना गया है जैसा कि अनुशासन पर्व मे विवेचित है कि गाधर्वशास्त्र च कला परिज्ञेया नराधिवा' ईश्वर स्तुति के निमित्त गीत सगीत का प्रयोग श्रेयस्कर मान्य था। साथ ही ग्रहस्थाश्रम के अन्तर्गत विभिन्न कलाओं का ज्ञान प्राप्त करना, जिसमे सगीत भी सम्मिलित है, गर्वित नहीं था। देवराज इन्द्र ने अर्जुन से कहा था कि वाद्यकला की शिक्षा प्राप्त करने से तुम्हारा भला होगा। अर्जुन उनकी आज्ञा से चित्रसेन नामक गधर्व से गाधर्वशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करते थे। नृत्यगीत च कौन्तेय ाचित्रसेनादवाप्नुहि।। यही नहीं वृहलला के रूप मे अर्जुन ने ही उत्तरा को सगीत का ज्ञान प्रदान किया था। महाभारत काल मे राजाओं के अन्त पुर मे सगीतशाला हुआ करती थी जैसाकि विराट पर्व के एक प्रसग से जानकारी मिलती है -

यौषानर्तनशालेह मत्स्यराजेन कारिता।

मदेतन्नर्तनागार मत्स्यराजेन कारितम् ।।

नृत्यशाला का स्पष्ट उल्लेख राज समाज मे सगीत प्रियता का संकेत करता है। द्रौपदी ने भी सत्यभामा से युधिष्ठिर के परिचारिकाओ की सगीताभिनय योग्यता का परिचय प्रस्तुत किया था - नृत्यगीत विशारदाद।"

1- शांति प0 अ 192/16

सगीत कला मे स्त्रियो की निपुणता महाकाव्यकाल मे सस्कृति की एक उल्लेखनीय विशिष्टता थी। अनेक गोप-गोपियाँ नृत्यगीतवादन द्वारा पुरस्कृत की गयी थी। वनपर्व मे कथनित है कि रावण की तीनों माताए - पुष्पोत्कटा, राका तथा मालिनी - नृत्यकला एव गीत की कुशलता से अपने पति ऋषि विश्रवा को सतुष्ट रखती थीं।

वेदाग के अन्तर्गत् 'शिक्षा' मे गाधर्वशास्त्र भी परिगणित था अत उस काल मे स्त्री-पुरूष दोनों ही वर्गो के लोगों की इस कला मे अभिरूचि थी। इसके साथ ही मागध, सूत, बदी, गायक, नृर्तकों का अपना एक विशिष्ट वर्ग भी था जो सगीत शास्त्र मे निपुण था। शातिपर्व एव अनुशासन पर्व मे भगवान शिव को 'सर्वशिल्प प्रर्वत्तक' नर्तक एव वादक रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है। पितामह ब्रह्मा द्वारा भगवान शिव की सहस्रनामाराधना उनके सगीत सर्जक स्वरूप को इंगित करती है। शिव को नृत्यप्रिय, नित्यनर्तनशील वेणु, पणव, तुम्ब वीणादि वादक, सर्वतूर्यनिनादी, वाद्य-सग्राहक, वशीवाद्यरूप, गाँधार स्वर रूप, ताण्डव नृत्यकर्ता कलाकाण्ठालवमात्रा मुहूर्त क्षण इत्यादि विरुदों से विभूषित किया गया है।[1] अनुशासन पर्व के उल्लेखानुसार भगवान शंकर के वरदान से देवर्षि नारद एव महर्षि गर्ग को नृत्यकला, गीतवाद्यादि सहित चौसठ कलाओं का ज्ञान मिला है। शांतिपर्व के उल्लेखानुसार - पितामह ब्रह्मा के आदेश से तपस्या के द्वारा नारद को गाधर्व वेद का ज्ञान प्राप्त हुआ। नारद अनेक शास्त्रों मे निष्णात थे।

महाभारत युद्ध के अवसर पर भी पहले ही दिन उभयपक्षो ने क्रकच, नरसिह, भेरी, मृदग, मुरज, शखादि वाद्यों का वादन किया था जो गगनभेदी था। वस्तुत सेना को उत्साहित करने हेतु इनका प्रयोग आवश्यक भी था। द्रोणाचार्य जब सेनापति के पद नियुक्त किये गये तो उनके सम्मानार्थ स्तुतिगान व नृत्य प्रस्तुत किये गये थे।

1- शिवअष्टोत्त्तर सहस्रनाम 'शा0' पर्व

युद्धारभ से पहले अनेक नियम बनाये गये थे जिनमे यह भी प्रावधान था कि वादकों, नर्तकों पर किसी भी तरह से प्रहार नहीं किया जाना चाहिए। महाभारत मे प्राप्य उल्लेखों से द्योतित होता है कि सगीत का प्रयोग अवसरानुकूल ही कोमल अथवा भयकर नाद युक्त होता था।

महाभारत महाकाव्य मे गाधर्व के सिद्धान्तों के साथ गान व देशी सगीत के सिद्धान्तों का भी मूल रूप मे उल्लेख प्राप्त होता है, इन्हीं का सगीत शास्त्रो मे विस्तार किया गया है। ताली देकर गाने की प्रथा प्रचलित थी - शम्या, समताल जैसे शब्दों का उल्लेख इसी ताल सिद्धातों का प्रयोग उस युग में होता था। महाभारत के आश्वमेधिक पर्व मे (अ0 52) मे शब्द को आकाश का एकमात्र गुण माना गया है -

तत्रैक गुणमाकाश शब्द इत्येव च स्मृत ।

तस्य शब्दस्य वक्ष्यामि विस्तरेण वहून् गुणान् ।।

षडज्, ऋषभ, गाधार, मध्यम, पचम, निषाद, धैवत, इष्ट, अनिष्ट तथा सहत ये शब्द के दश भेद है। इसके अतिरिक्त स्वरों के शास्त्रीय सिद्धान्त का भी शातिपर्व मे विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है जिसके अनुसार शब्द आकाश का एक गुण है, जिसका अनेक रूपो मे विस्तार हुआ है। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत, पचम, और निषाद - ये आकाश से उद्भूत सप्त भेद है। अपने व्यापक रूप मे ये सर्वत्र विद्यमान रहते है किन्तु पटह, मृदंग, भेरी, शंख, मेघ तथा रथ की घर्घराहट जड़ पर चेतन स्वरूप सुनाई देने वाले शब्द भेद के ही अन्तर्गत है।[1]

वस्तुत महाभारत मे प्राप्य उक्त साक्ष्यों से यही निष्कर्षित होता है कि इसमे नाद की त्रिविध विशेषताओं का वर्णन अप्रत्यक्ष रूपेण प्राप्त होता है जो आधुनिक ध्वनि

1- शांतिपर्व अ0 184

विज्ञान के सिद्धान्तो से न्यूनाधिक रूपेण मल खाता है। ग्रामरागो का प्रचार उस काल तक हो चुका था तथा विभिन्न समारोहों पर उनके प्रयोग से उनकी लोकप्रियता साबित होती है। महाभारत कालीन प्रचलित वाद्यों मे तत्, अवनद्ध, सुषिर और घन - इन सभी का प्रयोग होता था। तत् वाद्यों मे वीणा उल्लेखनीय थी। मनु के मतानुसार - देवता, ब्राह्मण तथा अतिथि पूजन हेतु प्रयुक्त सामग्री मे 'वीणा' का होना भी आवश्यक है। महाभारत मे सप्ततत्री प्रथिता चैव वीणा का उल्लेख (वनपर्व) प्राप्त होता है। वीणा मे सात तार होने चाहिए। महर्षि अगिरा के कथनानुसार पक्षान्त मे व्रत के उपरान्त भोजन करने वाले अनशनधारी, व्रती, उपासक, साठ हजार वर्षो तक स्वर्ग मे निवास करते हुए - वीणा, बल्लकी तथा वेणु आदि वाद्यों के द्वारा जगाए जाते हैं। वनपर्व मे द्रौपदी की वाणी को गांधार स्वर से की गयी मूर्च्छना युक्त आलाप की भाँति बताया गया है। महाभारत के अनेक स्थलों पर उल्लेख हुआ है। श्रीकृष्ण के पाचजन्य शख से नि सृत ध्वनि की तुलना ऋषभस्वर से की गयी है।

प्रात कालीन गीतों मे मागध, सूतों, बदीजनों द्वारा जिन वाद्यों का मुख्यत प्रयोग किया जाता था, उनमे वेणु और वीणा उल्लेखनीय थ। वस्तुत वीणा, वेणु और मृदग - ये तीनों ही सर्वाधिक लोकप्रिय एव प्रमुख वाद्य यत्र माने जा सकते है। युद्ध के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले भेरी, मृदग, पणव, दर्दुर अनबद्ध क्रकच, गोमुख, सुषिर वाद्य है। नाट्य शास्त्र मे अनेक अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख मिलता है जिनमे भेरी पटह, झझा, दुदुभि व डिडिम को गभीर ध्वनि उत्पादक वाद्य बताया गया है।

महाभारत युग मे सामूहिक गान, वादन एव नृत्य की परपरा विकसित हो चुकी थी। सगीत की विविध विधाओं का समाज हित की दृष्टि से उपयोग पर ध्यान रखना शासन का प्रमुख कर्तव्य था। तत्कालीन युद्ध मे वाद्य समूहों के अनिवार्य वादन

की परपरा से ऐसा प्रतीत होता है कि 'सैन्य सगीत' विधा का अलग रूप मे विकास हो चुका था। महाभारत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय के दो सर्वश्रेष्ठ पुरूष श्रीकृष्ण [illegible] अर्जुन सगीत कला मे परम् पारगत थे। श्रीकृष्ण 'छालिक्यगान' नामक विशेष सगीत विद्या के ज्ञाता थे, जिसे उन्होंने भूतल पर स्थापित किया था। राजमहलों मे स्त्रियों को सगीत की शिक्षा प्रदान करने की विशेष व्यवस्था थी जिनमे राजकुमारियों के साथ ही तदेतर वर्गीय स्त्रियों को भी इस कार्य मे सम्मिलित करते थे। इस प्रकार सगीत की सार्वजनीनता का स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होता है।

इस प्रकार महाभारत मे उल्लिखित विभिन्न प्रसगों के आलोक मे हम कह सकते है कि जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सगीत का किसी न किसी रूप मे प्रयोग अवश्य होता था, इससे महाभारत कालीन समाज मे सगीत की लोक प्रियता प्रमाणित होती है। वस्तुत इस युग मे सगीत के सभी पक्षों का वहुविध विकास हुआ।

- - - - -

5 **प्रतिपादित विषय का उद्देश्य :-**

प्रस्तुत विषय को लेने के पीछे मेरी जिज्ञासा और वाग्गेयकारो के बारे मे जानने की इच्छा थी। मैं यह जानना चाहती थी कि वाग्गेयकारों ने उत्तर भारतीय शास्त्रीय सगीत म अपनी खोज से किस प्रकार का योगदान प्रदान किया। हमारे विचार से वाग्गेयकारो के विषय मे अभी तक विशेष शोधकार्य नहीं किया जा सका है। वास्तव मे वाग्गेयकारों के बारे में जाने बिना शास्त्रीय सगीत का ज्ञान अधूरा है। अनेक सगीत कार्यक्रमो एव सगीतज्ञो से सम्पर्क होने मेरा ध्यान वाग्गेयकारो की ओर आकृष्ट हुआ। मैंने सोचा कि वाग्गेयकारो पर शोध कार्य करने से सगीत जगत को कुछ विशेष जानकारी उपलब्ध हो सकेगी। साथ ही जिन महान वाग्गेयकारो ने सगीत को सवारा और आगे बढ़ाया उनका परिचय व्यक्तित्व एव कृतित्व एक स्थान पर एकत्र हो सकेगा। यदि मेरे इस कार्य से शास्त्रीय सगीत के वाग्गेयकारो का योगदान प्रकाश मे आ सके तो मैं अपना उद्देश्य सफल मानूँगी।

वाग्गेयकारों ने भारतीय संगीत के प्राचीन काल, मध्यकाल और आधुनिक काल मे भी अपने शास्त्रीय चितन - मनन एव सृजन से सगीत जगत को गौरवान्वित किया है। ध्रुवपद, ख्याल, ठुमरी, टप्पा आदि सभी क्षेत्रो मे वाग्गेयकरो ने अपनी रचनाओ का सृजन किया है। स्वर, शब्द एव काव्य का मणिकचन सयोग इनके सगीत सृजन की विशेषता है। हरेक वाग्गेयकार की अपनी शैली है, उसका अपना मौलिक सृजन है जो शास्त्रीय सगीत की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। एक गायक के रूप मे प्रायोगिक सगीत और शास्त्रकारो के सैद्धातिक पक्ष का उदघाटन प्रस्तुत विषय के शोध मे परिलक्षित होता है। प्रायोगिक सगीत एव सैद्धातिक पक्ष का पारस्परिक सामन्जस्य प्रस्तुत विषय की उपलब्धि है।

शास्त्रीय सगीत के सैद्धांतिक पक्ष तथा व्यावहारिक पक्ष का निजी व्यक्तित्व पर भी प्रभाव पडता है। वाग्गेयकारो के कम्पोजीशन का गायक के रूप मे आने मे सुखद अनुभूति होती है। मुझे स्वत. भी रचना करने की प्रेरणा मिली। शास्त्रीय एव प्रायोगिक पक्ष का सतुलन भी प्राप्त हुआ। गायन मे एक ही रचना को विभिन्न रागो मे और विभिन्न लयो मे प्रस्तुत करने का प्रयास मैंने किया है। इस प्रकार गायक का दायित्व और बढ़ जाता है। शास्त्रीय पैमाना भी नये स्वरो के प्रयोग म सहायक होता है। प्रतिपादित विषय का उददेश्य वाग्गेयकारो के प्रति अपनी जिज्ञासा एव ज्ञान की पूर्ति तथा एक गायक के रूप मे उनके कृतित्व को प्रयोगिक स्तर पर ग्रहण करना है।

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

संगीत - अर्थ एवं परिभाषा .-

शास्त्रीय सगीत मूल भूत अर्थ में शास्त्र सम्मत सगीत मानी जाती है। तात्पर्य यह है कि जो संगीत शास्त्र विहित सिद्धांतों के अनुरूप हो वही शास्त्रीय संगीत है। आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार सगीत के त्रिविध रूप माने गये हैं - शास्त्रीय सगीत, लोक सगीत तथा अशास्त्रीय सगीत। शास्त्रीय सगीत के अन्तर्गत वर्तमान समय मे ध्रुपद, होरी और ख्याल गायन को समाहित किया जाता है जबकि ग्रामीण अचलो मे गाये जाने वाले तथा आदिवासी बहुल क्षेत्रो के सगीत को लोक सगीत के अन्तर्गत रखा जाता है। सगीत के तीसरे प्रकार अशास्त्रीय सगीत के अन्तर्गत ठुमरी, भजन, कव्वाली, गजल तथा सिनेमा से सम्बन्धित सगीत गायन को रखा जाता है। किन्तु शास्त्रीय सगीत का यह दृष्टिकोण तर्क सम्मत नहीं लगता। शास्त्रो का राग के सम्बन्ध मे स्पष्ट दृष्टिकाण है -

योमं ध्वनिविशेणस्तु स्वर वर्ण विभूषित ।
रजको जनचित्ताना स राग· कथितो धै ।।

इस सन्दर्भ मे म0 विष्णु नारायण भातखंडे जी के विचार उल्लेखनीय हैं[1] गायक सदैव समाज की रूचि का अनुसरण करके चलते हैं। समाज को नाद शास्त्र के तत्व विदित हों यह बात नहीं, वह तो केवल यह देखता है कि कर्णप्रिय है या नहीं। कई गायक राग मे खूबसूरती से विवादी स्वर का प्रयोग कर लोगो को अधिक प्रसन्न करते हैं, और अच्छा गायन वही है जो जन चित्त का रजन करे।

---

1. भातखंडे - हिन्दुस्तानी सगीत शास्त्र " भाग एक पृ0 46'

संगीत सम्बन्धी पुरातन ग्रन्थो में बाईस श्रुतियो को गायन का आधार माना गया है, जबकि मध्यकाल मुस्लिमो का अधिपत्य कायम था सगीत के आधार को बारह श्रुतियो अर्थात स्वरो में बताया गया। सात स्वर सा, रे, ग, म, प, ध, नि, तथा रे ग, ध नि, कोमल स्वर तथा बारहवां स्वर तीव्र मे

तानसेन जीवनी, व्यक्तित्व तथा कृतित्व के लेखक डा0 हरि निवास द्विवेदी ने सगीतज्ञ तानसेन के सन्दर्भ में लिखा है कि तानसेन बाल्यावस्था से राजा मानसिह तोमर (1486 - 1516 ई0) के दरबारी थे और विक्रमादित्य (1516-1562 ई0) के काल तक राजसभा को सुशोभित किया था। इसी ग्रन्थ मे अमीर खुसरो तथा गोपाल नायक के मध्य सागीतिक प्रतियोगिता की भी चर्चा हुई है। इस आधार पर श्री कैलाश चन्द्र ब्रहस्पति ने ' सप्त प्रगट सप्त गुपुत ' का विवेचन किया है तदनुसार ' सात गुपुत नामों मे ही भरत और शारगदेव की परंपरा की कुंजी विहित थी। जिन पापो तिनही लुकायौ मे उसी परपरा को अक्षुण्य रखने की भावना विद्यमान थी। वस्तुत: स्वरो की भारतीय संज्ञायें तो सात ही थीं। भले ही उनमें कोमल, तीव्र इत्यादि विशेषणो को जोड दिया गया हो। सात प्रगट अर्थात् स्वरो के प्रचलित या प्रचारित नाम उन्हीं ध्वनियो को मूर्च्छना की दृष्टि से सज्ञाओं को "सात गुपुत' कहा गया।

शास्त्रीय संगीत एवं लोक रंजन :-

जहां तक मुस्लिम कालीन (मध्यकालीन) भारतीय संगीत का स्वरूप का प्रश्न है, उस समय 12 स्वरो को ही गायन के आधार रूप में प्रतिष्ठित किया गया। यदि गणितीय दृष्टि से विचार किया जाय तो इन बारह स्वरो से 34,448 मेलो का निर्माण होता है जिनमें मुख्य रूप से 250-300 मेल को ही राग की मान्यता दी

गयी। सम्प्रति 40-50 राग ही प्रचलन मे है, जिन्हे प्रचलित राग कहा जाता है। इसके अलावा अन्य अप्रचलित रागे भी हैं, जिनकी सगी विद्यालयो मे शिक्षा दी जाती है किन्तु प्राय आयोजनों में उनका समावेश नहीं होता है। वस्तुत प्रचलित रागो का वास्तुतः प्रचलित रागो का वास्तविक निर्धारण श्रोता - वर्ग मे ही होता है, बहुत कुछ राग चयन गायकों के अपने अनुभव पर भी निर्भर करता है कि किन रागो को श्रोतागण अधिक पसद करेंगे अथवा कम।

सुनने वाले के लिये एक आवश्यक नहीं है कि गायन मे कौन राग प्रयुक्त किया गया है अथवा किन स्वरों को स्थापित किया गया है। दरअसल राग तो लोगो के मन को रंजित कर लेने वाले होते हैं, इसी प्रकार कविता या गीतो में भी प्राय भावो की ही प्रधानता रहती है। अत. स्पष्ट है जब श्रेष्ठ कविता या गीत जब राग मे गाये जायेगे तो उनसे लोगो का स्वाभाविक मनोरजन होगा ही।

शास्त्रीय संगीत की व्याप्ति :-

वास्तव में जब सगीत का दरबारीकरण होने लगा तो वही राग - रंग परिवर्तित स्वरूप वाला होता गया। इस तथ्य का संकेत हमें भातखंडे जी के इन शब्दो में स्वत मिलती है - " इस समय हमारे यहां धीरे-धीरे सगीत की उन्नति के चिन्ह दिखायी देने लगे हैं। निरक्षर और जड बुद्धि के गायको की दया पर निर्भर रहना हमारे सुशिक्षित वर्ग को अब पसद नहीं है, केवल तानो की कवायद देखकर अब हम आश्चर्य यान्वित होना छोड़ चुके है।[1]

इस प्रकार शास्त्रीय सगीत के निर्धारित सिद्धांतो व नियमो के अनुसार सभी प्रकार के गायन शास्त्रीय गायन कहे जा सकते हैं। जिस प्रकार ध्रुपद, होरी, सादरा

---

1. हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र - प्रथम भाग, पृ0 256

तथा ख्याल शास्त्र द्वारा निर्धारित राग मे गाये जाते हैं उसी प्रकार भजन, गजल, कव्वाली, ठुमरी और सिनेसगीत को भी यदि शास्त्रीय रागों के अन्तर्गत गाया जाय तो वे भी शास्त्रीय ही कहे जायेगे न कि अशास्त्रीय। यहां तक कि यदि डिस्को या पॉप गीत भी शास्त्रीय रागानुकूल प्रस्तुत किये जायें तो वे भी शास्त्रीय सगीत का ही एक हिस्सा होंगे। अत. शास्त्रीय संगीत का तात्पर्य है कि गायन अथवा वादन शास्त्र सम्मत रागो में होना ध्रुपद तथा होरी गायको के सामने नवीन ढग का ख्याल गायन आता तो उन्हे शास्त्रीय गायन के अन्तर्गत नहीं माना। परन्तु ख्याल इतने रोचक एवं आकर्षक थे कि श्रोता सामान्य को भी सभी दरबारों व महफिलो मे मुग्ध कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कई ध्रुपद गायकों ने अपनी परंपरागत गायिकी को छोड दिया और ख्याल गायन की ओर प्रवृत्त होते नजर आये।

सगीत के क्षेत्र में जब ख्याल गायन का प्रभाव पूर्णतः पड़ने लगा तो अन्य संगीतज्ञ इसे भी शास्त्रीय संगीत की सज्ञा देने लगे। जब उन्नीसवीं शताब्दी में ठुमरी गायन की खोज की गयी तो उसे वेश्याओं का गायन अथवा अशास्त्रीय करार दिया गया। इन बातों से यही निष्कर्ष निकलता है शास्त्रो की दृष्टि मे समय परिवर्तन के साथ ही समाज भी परिवर्तित हो जाता है और गायन कला इसका अपवाद नहीं। वस्तुत सगीत शास्त्रीय दृष्टि में तो "राग" क्या है, उसका मूल स्वरूप क्या है, इसकी विवेचना होती है न कि गायन के ढंग मे। इस सन्दर्भ मे भातखंडे ने हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र में लिखा है कि "..... हमारी संगीत पद्धति के सम्पूर्ण मूल तत्व प्राचीन ही हैं".... यह कहना भी गलत न होगा कि सगीत क्रमश. विद्वानो के हांथो से निकलकर अशिक्षितो के हांथो में चला गया और अभी भी अधिकांश रूप में वह ऐसी ही स्थिति मे हैं।.. प्रत्यक्ष गायको ने मनमाने ढग से अपने गले तैयार

करके समाज की रूचि मे एक भ्रष्टता उत्पन्न कर दी। यह रूचि भ्रष्टता इस समय बज्रलेप जैसी दृढ होकर जम गयी जान पडती है।"

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है, अत समाज मे भी परिवर्तन का होना अवश्यंभावी है। अत. सामाजिक परिवर्तन के कारण ही गायन के ढंग मे भी बदलाव का होना स्वभाविक है।

शास्त्रीय सांगीतिक परंपरा व विकास :-

ऋग्वेद के प्रथम मडल के सूत्र में उस समय तक सगीत के सभी स्वरो के ज्ञात होने की जानकारी प्राप्त होती है - मनुच्छदा ऋषि· अग्नि· देवता, गायत्री मंत्र षडज स्वर: । सामवेद से साम गायन की परपरा का सूत्रपात हुआ, जिसे अनेक प्रकार से गाया जाता है। सम्प्रति दो तीन तरह के ही साम गायन न्यूनाधिक रूपेण सुनायी पड़ते हैं। समापन - महाभारत मे गायन वादन एव्र नृत्य कला के आयोजन के सकेत प्राप्त होते हैं किन्तु उसके वास्तुविक स्वरूप के सम्बन्ध मे स्पष्ट जानकारी नहीं हो पाती। एक विशिष्ट लिपि में सगीत लेखन काल का श्रीगणेश भारत वर्ष में 20वीं सदी से माना जाता है। पौराणिक साक्ष्य ब्रह्मा को संगीत का सृष्टा मानते हैं जो क्रमश· शिव, सरस्वती, एवं नारदादि को हस्तगत की गयी। तदनन्तर गधर्वो, किन्नरो, अप्सराओं ने ग्रहण किया। औपनिषदिक ग्रन्थो से आभासित होता है कि ब्रह्मा द्वारा आदिकाल मे सगीत का प्रारम्भ हुआ जो आज भी वर्तमान है और कलियुग पर्यन्त रहेगा। सागीतिक ढगों में जो भी परिवर्तन होते रहे हैं अथवा भविष्य में होते रहेगे, उसका कारण 'काल चक्र' के गतिमान होने अथवा सामाजिक परिवर्तन होता है। इस तरह सगीत में अपेक्षित बदलाव मे ब्रह्मा का हाथ निहित होता है। तात्पर्य यह है कि सगीत की प्राचीनता अथवा नूतनता के मूल मे ब्रह्मशक्ति ही प्रमुख होता है।

सामयिक परिवर्तन से जनमानस भी बिना प्रभावित हुए रह नहीं सकता। अत· संगीत भी परिवर्तन सापेक्ष कही जा सकती है। कोई भी गायक कलाकार अथवा संगीतज्ञ सगीत मे जो परिवर्तन लाता है, अथवा नवीन ढंगों ढालता है, उसके पीछे उस अनत शक्ति की ही प्रेरणा या कृपा होती है जिसके द्वारा सृष्टि का सचालन होता है।

सगीत में हुए परिवर्तनो को दो रूपों में देखा जा सकता है। प्रथमतः ध्रुपद, होरी, सादरा तथा ख्याल ढग का गायन क्रमिक (शनै. शनैः) परिवर्तन को दर्शाता है, जबकि कव्वाली, ठुमरी, भजन, गजल तथा सिनेमाई संगीत समायानुसार समाज में त्वरित रूपेण समागत हुआ। इस प्रकार के गायनो मे ध्रुपद आदि का किंचित आभास ही प्राप्त ोता है।

भारतीय संगीत के वर्तमान स्वरूप के निर्धारक पं0 विष्णु नारायण भातखंडे जी ने समुचित लिखित स्वर लिपि की खोज की। उन्होंने उत्तर भारत के अनेक गायको से विभिन्न रागों को सुना और फिर उसे लिपि-बद्ध किया। भातखंडे जी ने ' क्रमिक पुस्तक माला' मे ध्रुपद, होरी, सादरा, ख्याल ठुमरी तथा टप्पा इत्यादि का विभिन्न रागों में लिपिबद्ध किया है। ' हिन्दुस्तानी संगीत शास्त्र' नामक अमूल्य ग्रन्थ में आपने विभिन्न रागों का वर्गीकरण एवं उनके लक्षणों का तथ्यापरक, प्रस्तुतीकरण भी किया। बीसवी सदी की शुरूआत में भातखंडे जी ने शास्त्रीय सगीत के संकलन का स्तुत्य कार्य किया और लखनऊ मे 'मैरिस कालेज आफ हिन्दुस्तानी म्यूजिक' की स्थापना की जिससे अनेक युवक तथा युवतियां लाभान्वित हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त बम्बई, ग्वालियर, तथा दिल्ली में हिन्दुस्तानी सगीत की शिक्षा दी जा रही है, जिससे शास्त्रीय सगीत का गौरव बढ़ा है।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से सिने सगीत मे भी प्रत्येक ढग से ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, भजन, कव्वाली तथा गजल - आदि को आकर्षक रूपेण प्रस्तुत किया है। कालान्तर में मुस्लिम शासन काल के दौरान, सगीत का दरबारी करण हो गया और घरानो की परपरा शुरू हुई। आगरा घराना, दिल्ली घराना, पटियाला, ग्वालियर, रामपुर तथा मेवाती घराना इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं। यह परपरा गुरू-शिष्य के माध्यम से चलती रही फलत. शास्त्रीय सगीत भी लाभान्वित हुई। भातखंडे जी ने इन्हीं घरानेदार उस्तादों से गायन को सुना और लिपिबद्ध किया। सगीत के दरबारीकरण से जहा एक ओर सगीत को सुरक्षा मिली वहीं भारतीय सगीत मे शिष्य परंपरा की रूढिगत विकृति भी उत्पन्न हुई। घराने के गायको में उत्पन्न इन विकृतियों को घराने के शिष्य एक उपलब्धि मानकर इन्हे शिष्य परंपरा को देते रहे हैं। दरबारी सगीतज्ञों में अपने पुत्रों को संगीत सिखानें के पीछे आजीविका का स्वार्थ निहित प्रतीत होता है। यह कारण है कि आज भी सगीत आयोजन अथवा शास्त्रीय सगीत के अनेक कार्यक्रम प्रायः जनमानस से दूर से लगते हैं। उनमे वह आकर्षण दिखता ही नहीं, जो वस्तुत. लोक रजक हो, चित्ताकर्षक हो। आज इस विकृति को दूर करने की महती आवश्यकता है।

शास्त्रीय संगीत के गुण :-

विद्वानो द्वारा श्रेष्ठ संगीत के लिए चार श्रेष्ठ गुण माने गये हैं, सुरीलापन अर्थात् ऐसी आवाज जो सभी को आकृष्ट करने वाली हो। 2- तबीयतदारी का अर्थ है गति या कविता के भाव को समझते हुए राग तथा लय के माध्यम से गीत के भाव को सुनने वाले तक पहुचाना जिससे वह मंत्रमुग्ध हो जाय। इस सन्दर्भ मे उस्ताद फैयाज खॉ का नाम उल्लेखनीय है। वस्तुत उक्त दोनो ही प्रवृत्तियां जन्मजात होती

है। विशेषकर सुरीलापन सिखाने की चीज नहीं होती। तीसरे और चौथे गुण हैं रागदारी व लयदारी, जिसके लिये उस्ताद की जरूरत पड़ती है। भारत में लय की स्थिरता को कायम रखने हेतु ताल का विधान किया गया। गीतों को भिन्न भिन्न तालो में गाया जाता है।

संगीत के क्षेत्र मे सरोदवादक उस्ताद हाफिज अली खॉ, वीणावादक उस्ताद बंदे अली खॉ, सितारवाद हनायत खॉ और गायकी मे उस्ताद फैयाज खॉ उक्त गुणों की दृष्टि से निसंदेह अप्रतिम, सर्वगुण सम्पन्न कलाकार माने जाते हैं। इस सन्दर्भ मे सुप्रसिद्ध शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिला खॉ भी उल्लेखनीय हैं। दरबारीकरण की वजह से उस्ताद लोग अपने पुत्रों को सुरीलापन, तबीयतदारी, लय व रागदारी न होते हुए भी तालीम दिया करते ताकि उनका ओहदा कायम रहे। यही नहीं प्रतिद्वन्द्वी से श्रेष्ठता प्राने के लिये अनेक तरह की तानों की खोज करते थे और चिल्ला अर्थात चालीस दिन तक गायन अभ्यास की परम्परा थी। फलतः केवल तानबाजी ही प्रस्तुत होने लगी। इस प्रकार दरबारीकरण से 'राग जंग' की शुरूआत हो गयी जबकि 'राग रग' दूर होता नजर आने लगा।

' तान ' का शाब्दिक अर्थ होता है ' तानना ' इनका प्रयोग ध्रुपद गायकी मे भी किया जाता है परन्तु ध्रुपद एवं ख्याल की तानों में भिन्नता होती है। ध्रुपद गायन में एक स्वर से कुछ दूर के स्तवर मे भीड़, गमक द्वारा जाते हैं जबकि ख्याल में कई स्वरों से गले को दानेदार फिसलन से ले जाते हैं। कविता के महत्वपूर्ण शब्दो को तान द्वारा प्र[illegible] किया जाता है। ख्याल में कुछ शब्दों अथवा भावो को तान के माध्यम से मुखरित करते हैं। वस्तुतः तानों की शुरूआत किसी गीत के शब्द एव भाव को सीधे सुनने वाले तक पहुंचाने के उद्देश्य से की गयी थी। तानें वजन की

की होनी चाहिए। गीत के भाव के वजन की तानो का प्रयोग ही उपयुक्त होता है। विभिन्न प्रकार की वक्र एवं लम्बी न केवल अर्थहीन अपितु प्रभावरहित भी होती है।

वर्तमान स्थिति :-

आज शास्त्रीय सगीत जनमानस की दृष्टि से उतना उपयोगी नहीं हो पा रहा है, इस सदर्भ मे कहा जा सकता है कि वर्तमान शास्त्रीय सगीत भाव प्रधान न होकर राग प्रधान हो गया है। यही करण है कि आम लोग शास्त्रीय संगीत से प्राय दूर से होते जा रहे हैं। शास्त्रीय संगीत का जो दरबारीकरण हुआ उस परंपरा में आज बदलाव की अपेक्षा बलवती है इसके साथ ही जनमानस में शास्त्रीय सगीत वास्तविक तत्वो के प्रति अभिरूचि उत्पन्न करना आवश्यक है। वस्तुत प0 भातखंडे जी द्वारा पुर्नसस्थापित भारतीय शास्त्रीय सगीत के उन मानको को जिनके लिए उन्होने श्लाघनीय प्रयास किया, वर्तमान समय मे यथावश्यक परिवर्तन व परिवर्धन करते हुए वरीयता देनी चाहिए जिससे जन सामान्य इस क्षेत्र के प्रति झुके। शास्त्रीय सगीत के वास्तविक उद्देश्य को जो शास्त्र विहित है, समझे, उन्हें आत्मसात् करें।

संगीत के तत्व

शास्त्रीय सगीत के प्रमुख तत्वों में नाद, स्वर, श्रुति, राग, ताल तथा लय का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वस्तुत ये तत्व अथवा गुण ही संगीत के आधार कहे जाते हैं, जिनका सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। नाट्यशास्त्र मे सप्त स्वरो का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसके अनुसार, षडज, ऋषभ, गाधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये सात स्वर होते हैं -

षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा।

पचमों, धैवतश्चैव, सप्तमोडध निषादवान।।[1]

उक्त सप्तस्वरो मे 22 श्रुतियो का समावेशन किया गया है। श्रुति के रूप मे नाद (आहत) ही सगीतोपयोगी बन जाता है। आहत वाद्य वाद्यो पर आघात करने से उत्पन्न होता है और उसी से सांगीतिक स्वरों की उत्पत्ति होती है ऐसा नारदसंहिता मे विवेचित है। आचार्य मतंग के अनुसार जो सुनाई दे वह श्रुति है- श्रूयन्त इति श्रुतयः। श्रवणेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य होने के कारण ध्वनि ही श्रुति है श्रवणेन्द्रिय ग्राह्यवाद् ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत्। बृहद्देशी मे उल्लिखित है कि सामवेद से स्वरो की और स्वरों से ग्राम की उत्पत्ति हुई है।[2]

सामवेदात स्वरा जाता स्वरेभ्यो ग्राम सभव ।

द्वावेतो च इमौज्ञेयौ षड्जमध्यम लक्षितौ ।

---

1. अभिनव -4, पृ0 10-11
2. वृहदेशी - स्वरनिर्णय प्रकरण ।।

स्वरोत्पत्ति एवं परिभाषा -

शिक्षा ग्रन्थो मे गन्धर्व के षड्जादि सप्त स्वरो से वैदिक प्रथमादि स्वरो का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। स्वरों के सम्बन्ध मे व्याकरणाचार्यों की अवधारण है कि स्वयं राजन्तइवि स्वराः और यही विचार लगभग संगीत शास्त्रीय विद्वानो के मत से मेल खाता है क्योंकि दोनों ही शास्त्रों में स्वर सम्बन्धी समानता दृष्टिगत होती है। वर्तमान संगीत शास्त्रीय 'स्वर' शब्द का व्यवहारिक उल्लेख पाणिनीय शिक्षा, त्रैस्वर्य, तैत्तिरीय प्रातिशारूप, तथा नारदीय शिक्षादि प्राक्ग्रन्थो में मिलता है। भरतभाष्यम शिक्षाध्याय (69) मे स्वर के सन्दर्भ मे उल्लिखित है कि स्वयं रजक होने से 'स्वर' अभिधान दिया गया है।[1] बृहद्देशी स्वरप्रकरण में स्वर शब्द की निरक्ति इस प्रकार बतायी गयी है -

तत्रादौ स्वरशब्दस्य व्युत्पत्तिरिह कुथ्यते।

राजृदीप्ताविविधातो· स्वशब्द पूर्वकस्य च।।

पूर्व में 'स्व' शब्द लगाने से 'स्वर' शब्द की निष्पत्ति होती है, जो स्वयं राजित होता है अथवा बिना किसी अन्य की अवलम्बन लिए हुए ही प्रकाशित होता है, उसे 'स्वर' कहा जाता है। स्वर शब्द से अभिप्राय है रागोद्भावक 'ध्वनि' अर्थात् वह ध्वनि जो मन का रंजन करने वाली अथवा प्रसन्न करने वाली हो, स्वर कही जाती है।

स्वयं यो राजते यस्मात् तस्मादेव स्वर स्मृत·

ननु स्वर इति किम् राग जनको ध्वनि· स्वर इति।

---

1. " स्वयमात्मान रजयति निपातनात् निरूक्ति "

इसी प्रकार स्वर की निष्वन्ति एव परिभाषा के अन्तर्गत अन्य अनेक सगीताचार्यो ने अपने मत प्रकट किये हैं। अभिवनगुप्त के शब्दो में स्वम स्वेच्छवेव जातिराग भाषा भेदेषु राजन्त्र इति स्वरः।[1] अर्थात् जाति राग भाषा भेद से जो स्वयं राजित, शोभायमान शोभायमान, रजक रूप धारण करता है वह स्वर है। इससे स्वर के अनेक रूपो का भी सकेत मिलता है राग, भाषा आदि। श्रुतिस्थानाभिधातप्रभवीतोड़नुरणनात्मा स्निग्ध. मधुरः शब्द एव स्वर इतिवक्ष्याम·। तात्पर्य यह है कि श्रुति स्थान मे आघात से जो अनुरणनात्मक स्निग्ध मधुर उद्भूत हाता है, वही स्वर कहा जाता है।

कोहलाचार्य ने भी मधुर रजक ध्वनि को स्वर कहा है, ध्वनि रक्त स्वर· स्मृतः।

श्रुति एवं स्वर में सम्बन्ध :-

सगीत रत्नाकर में उल्लिखित है कि श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोडनुरवनात्मक। स्वतो रजयति श्रोतृचित्त स स्वर उच्यते। तार पर आघार करते ही उत्पन्न अनुरणन हीन ध्वनि, श्रुति और उसके पश्चात् अनुरणात्मक ध्वनि या नाद, 'स्वर' कहलाता है। अनुरणन ही नाद में स्थिरता व एक रूपता लाता है। अत. स्वर के लिये अनुरणन (गूज-आस) आवश्यक है। दन्तिल के शब्दों में वह ध्वनि विशेष जो कानो से सुनी जाती है 'श्रुति' कहलाती है और अनेकविध गीतो मे गाई जाने से उन्हें स्वरतत्व की प्राप्ति हो जाती है।

आद्रियन्ते च ये तेषु स्वरत्वमुव लभ्यते।

आचार्य मतंग के अनुसार ग्रहण किया गया अथ्रात् गीतो में प्रयुक्त श्रुति ही स्वरों की अभिव्यक्ति की कारण भूता है। ग्रह्यन्ते श्रुतयस्तावत् स्वरभिव्यक्ति हेतवः। श्रुतियां ही स्वर रूप मे परिणति होती है और उनके द्वारा ही षड्जादि स्वर अभिव्यक्त होते

। अभिवन - 4, पृ0 ।।

हैं। तात्पर्य यह है कि श्रुतियो का ही परिणाम स्वर है एव श्रुतियो के द्वारा वे व्यक्त किये जाते हैं। व्यकटमुखीन श्रुति और स्वर मे स्वर्गटक और किरीट के सदृश भेद माना है।

श्रुति एव स्वर के अभेदत्व के सन्दर्भ मे प0 अहोवल ने 'सगीत पारिजात' मे अपने विचार प्रस्तुत किये हैं तदनुसार 'श्रवणत्वगुण के कारण श्रुतिया कही गयी है, किन्तु वे श्रुतिया स्वर से पृथक नीं होती उसी प्रकार जैसे सर्प और कुडली में कोई पृथकत्व नीं है, श्रुतियां ही रागों मे प्रयुक्त होती हैं और स्वर बन जाती है। अर्थात् स्वर निर्माण मे 'राग' कारणतत्व है। सगीतविदो की धारणा है कि केशाग्र पानी सूक्ष्म अतर पर वीणा मे श्रुतिया रहती हैं और 22 श्रुतिया षड्ज पचम भाव से सम्बद्ध रहती हैं।[1]

उनके अनुसार क्रिया भेद से स्वरो मे जो वैचित्र्य उत्पन्न होता है उसी से जाति की सरचना होती है, मं0 अहोबल की दृष्टि मे स्वर अनुरणनात्मक होते हैं जबकि श्रुति मात्र अनुभव पर आधारित विषय है।

जहा तक स्वर एवं श्रुति स्थान के क्रम का प्रश्न है, आचार्य भरत आदि की दृष्टि में सर्वप्रथम स्वर होते हैं तदुपरांत स्वरान्तराल पर श्रुतिया नाट्यशाला मे प्रथमत स्वरोल्लेख किया गया है तत्पश्चात् स्वरों के अन्य भेदो का उल्लेख हुआ है -

चतुर्विधित्वमेतेषा विज्ञेयं श्रुतियोगत ।
वादीचैवाथसवादी, हनुवादी विवाद्यपि ।।

चतु सारणा क्रिया में भी सर्वप्रथम सात तारो को सप्तस्वरो मे मिलाया जाता है तत्पश्चात् 22 श्रुतियो का ज्ञान तत्री को 4 बार विभिन्न स्वरो के आधार पर उतारकर कराया जाता है।

---

1. सगीत पारिजात, 38-41।

स्वरों के भेद :-

स्वर के अनेक भेद हैं जिन्हे वादी सवादी अनुवादी व विवादी नाम से जाना जाता है तथा श्रुत्यतराल की भिन्नता से पहचाना जाता है, आचार्य भरत के दृष्टि कोण से अश स्वर ही वादी है और जिन स्वरो मे नौ या तरेह श्रुतियो का अंतर हो वे परस्पर सवादी होते हैं, जैसे षडजग्राम मे स-प, रे-ध, ग-नि, मे 13 श्रुतियो तथा स-म, मे से 9 श्रुतियो का अतर होता है। मध्यम ग्राम मे स-प, के स्थान पर रे-प मे नवश्रुतिक सवाद होता है।[1] विवादी स्वर उन्हे कहा जाता है जिन दो स्वरो के मध्य 20 श्रुतियो का अन्तर हो यथा - रे-ग, और ध-नि, ये परस्पर विवादी स्वर हैं।

इसके अतिरिक्त अन्य स्वर ' अनुवादी ' होते हैं। 'स' के - र ग ध नि, 'रे' के- म प नि, 'ग' के- म प ध, 'म' के- प ध नि, तथा 'प' के- ध- षड्षाग्राम में अनुवादी हैं। इस सम्बन्ध नान्यदेव के विचार विशेषत उल्लेखनीय है जिसके अनुसार ' बाहुल्येन प्रयुक्तो भवति स वादी ' किसी शब्द का प्रयोगाधिक्य ही 'वादित्व है । जबकि आचार्य मतग ने लिखा है कि बार-बार प्रयुक्त प्रकाशमान स्वर स्वामी के समान प्रमुख है- वदनाद् वादी स्वामिवत्। वादी स्वर का सहायक सवादी, मत्री के सदृश - सवदनात सवादी अमात्यवत् जबकि विवाद करने वाला स्वर विवादी शत्रतुवत् होता है - विवद्नाद विवादी शत्रुवत्' इसके साथ ही परिजन की भाँति अनुसरण करने वाले स्वर को अनुवादी कहा गया है - अनुवदनादनुवादी परिजनवत। मतंग इस सदर्भ मे आचार्य भरत से एकमत हैं। उनकी दृष्टि मे सवादी के स्थान पर वादी और वादी के स्थान पर सवादी का प्रयोग होने से कोई हानि नहीं है।

---

1. नाट्यशास्त्र - 22 से 28 श्लोक ।

संवादतत्व भारतीय सगीत का महत्वपूर्ण सिद्धात है जिसके आधार पर सप्तस्वरो की स्थिति ग्राम व्यवस्था के अन्तर्गत आती है। ध्वनिशास्त्र की दृष्टि मे स-प और स-म के अतिरिक्त और भी स्वर संवाद हो सकते हैं परन्तु स-प और स म का सवाद उत्तम कोटि का है।

सात मूल स्वरो के अतिरिक्त 'साधारण स्वरो ' की भी स्थापना 'अतर गाधार' व काकसी निषाद' के नाम से आचार्य भरत ने की है। षड्जसाधारण व मध्यमसाधारण प्रक्रिया द्वारा उन्होने अन्य स्वरो के स्थान मे होने वाले परिवर्तनों की भी व्याख्या की है। वस्तुत. भरतसप्तक मे कुल 15 स्वरो के स्थान मिलते हैं, जिनकी सिद्धि नाट्य शास्त्र द्वारा ही होती है और यही स्वर मध्यकालीन शुद्ध, कोमल आदि, तीव्रादि स्वरो के प्रेरक भी होते हैं।

वस्तुत गायन एव वादन में स्वर सप्तक का विशेष महत्व होता है। इस सदर्भ मे आचार्यशार्ङ.देव ने आचार्य भरत के स्वरसप्तक को अपने ग्रन्थ "सगीत रत्नाकर' मे स्पष्ट रूप मे व्याख्यायित किया है। उन्होने नाट्यशास्त्र में वर्णित जाति, ग्राम राग, तालादि को सरल स्वरलिपि के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। षड्जग्राम के सात स्वरो का नामकरण करते समय उन्होने, उन्हे 'शुद्ध' सज्ञा दी है और विकृत स्वरो के नामकरण मे भी पूर्व परपरा का आधा लिया है। आचार्य शार्गदेव के अनुसार विकृत भेद अनेक हैं जिनकी संख्या 12 है तथा शुद्ध स्वर सात हैं। इस प्रकार कुल 19 स्वर होते हैं - ते शुद्धै. सप्तभि सार्ध भवन्त्येकोनविशति। श्रुतियो एवं स्वरों के स्पष्टीकरण में उन्होने 'श्रुतिवीणा' एव 'स्वरवीणा' का आधार लिया है।

सगीत पारिजात मे प0 अहोवल ने शुद्ध विकृत स्वरो को सर्वप्रथम 22 श्रुतियो के आधार पर और बाद में वीणा के तार पर 7 शुद्ध और 5 विकृत स्वरों की स्थापना

करते हुए सरल ढग से समझाया है और उनका यह प्रयोग वर्तमान समय मे भी कुछ मतभेद के साथ किया जाता है। म0 अहोवल का शुद्ध मेल वर्तमान काफी मेल के समान सर्वसम्मति से मान्य है। उत्तर भारतीय स्वर सप्तक को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणित करने मे अहोबल का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

राग का उद्भव, स्वरूप एवं विकास :-

आचार्य भरत के अनुसार रागो की उत्पत्ति जातियो से हुई है जैसा कि सिह भूपाल एव कालिनाथ की टीका में उद्धृत है -

जाति समूल्यवाद ग्रामरागाणामिति,
जाति संभूत्वाद् रागाणाम्।[1]

नान्यदेव के भरतभाव्यम ने उल्लिखित है कि श्रुतियो से स्वरो, स्वरो से ग्रामो, ग्रामो से जातियो और जातियों से रागो की उत्पत्ति होती है। श्रुतिभ्यस्तु स्वराजात ... रागसम्भव [2] मानक हिन्दी कोष के अनुसार 'राग' शब्द की उत्पत्ति सस्कृत शब्द 'रज' से हुई है जिसका अर्थ है रगना। इस शब्द के अन्य अर्थ हैं, मन प्रसन्न करने की क्रिया, मनोरंजन इत्यादि कोष मे 'राग' को भारतीय शास्त्रीय संगीत में विशिष्ट गान प्रकार के रूप में बताया गया है, जिसका स्वरूप स्वरो के उतार - चढ़ाव के विचार से सुनिश्चित और ताल, लयापि विशिष्ट अगो से युक्त होता है।

इस संदर्भ में हम आचार्य मतंग द्वारा दी गयी राग की परिभाषा का उल्लेख कर सकते हैं जिसके अनुसार,

स्वरवर्णविशेषेण ध्वनिभेदेन बा पुन· ।
रंजयते येन य कश्चित् स राग सम्मत· सताम् ।
योडसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषित ।
रजको जनचिन्तानां स च राग उदाहृत.[3]

---

1. सिंह भूपाल सं.र भा., पृ0 6, कल्लिनाथ पृ0 8
2. भरतभाष्यम् भा0 2 जाल्पध्याय श्लोक 392/93

अर्थात षड्जादि स्वरो एवं स्थायी आदि वर्णो से विभूषित उस ध्वनि विशेष को राग कहा जाता है जिससे मानव मन का रजन होता है।

अशादि विशिष्ट लक्षणो से रागो की पहचान होती है तथा भिन्न-भिन्न स्वर समूहों स्वर लगावों से भिन्न-भिन्न रागों के नादात्मक स्वरूप का निर्माण होता है। यही नादात्मक ही ध्वनि विशेष है। ग्रामरागादि राग के ही दस प्रकार मान्य हैं जैसे कि 'सगीत रत्नाकर' मे उल्लिखित है -

' ते च रागा दशप्रकारा: - ग्रामरागा , उपरागा', रागा, भावा, विभावा, अतरभाषा, रागागासि, भाषाद्वाणि, क्रियांगानि, उपागाणीति। जाति से जातिराग बनने के सिद्धात के रूप में, जाति से रागोद्रभव का वर्णन नाट्यशाला मे प्राप्य है। जातिराग श्रुति चैव निहन्यादन्तनस्वर ।

भावा-रागो मे 'देशाख्या के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न प्रदेशो के नाम वाले रागो का उल्लेख मिलता है , जैसे - गुर्जरी, सौराष्ट्री सैंधवी, आभीरी, काम्बोसी इत्यादि, रागो की सख्या एवं विभाजन की दृष्टि से अनेक आचार्यों के अलग-अलग मत प्राप्त होते हैं तथा नष्टिकमत, मतगमत, नान्यदेवमत तथा शारंगदेव मत। शागदेव तक रागो की सख्या का विस्तार होता रहा। देशी में इसका और विस्तृत रूप दृष्टिगत होता है। इस प्रकार रागतत्व भारतीय संगीत की प्राचीनता और विकास दोनों का प्रमाण प्रस्तुत करता है एक नाम के राग का कई भाषाओ के जुडने के साक्ष्य से एक राग के अनेक स्वरूपो की परपरा भी भारत में पुरानी एव शास्त्र सम्म्मत प्रमाणित होती है। भारतीय विधाये अनेक गुरू परम्परानुसार विकास करती रही हैं, तदनुसार रागो का भी विकास होता रहा है, यह कहना असगत नहीं होगा।

देशी रागो को रागाग, भाषांग, क्रियांग, उपांग, इन चार वर्णों मे विभाजित करने का उल्लेख आचार्य मतंग के काल से प्राप्त होता है। वस्तुतः कुछ प्रमुख रागो मे ऐसे स्वर समूह होते हैं जिनमे उनकी स्वतत्र छवि बनती है, इन्हीं स्वर समूहो को 'रागाग' कहा जाता है और स्वतत्र अग वाले राग रागांग प्रमुख राग माने जाते हैं। उत्तर भारतीय संगीत में अनेक सर्वमान्य स्वतत्र अंग वाले राग हैं। प0 भातखंडे जी ने ऐसे रागों में से ही कुछ रागो का चयनकर दस मेल नामों से उत्तर भारतीय सगीत के प्रसिद्ध रागों का वगीकरण किया है। उत्तर भारतीय सगीत का प्रमुख राग विलावल भग है और गायन वादन की प्रारम्भिक शिक्षा इसी राग के स्वरो से दी जाती है। इसके अतिरिक्त कल्याण अग (यमन, शुद्ध कल्याण, धनाश्री अग, सारगाग (वृंदानी, मधुमादापिराग), कानड़ा अग (दरबारी, अडाना, कौंसी, नायकी), मल्हार अग, खमाज अंग, भैरव अंग, गौरीश्री, तोड़ी, आसावरी इत्यादि अनेकानेक रागांग वगीकरण सागीतिक ग्रन्थो में प्राप्त होते हैं। वस्तुत राग अनेक हैं और उनकी रचनात्मक भिन्नता भी अनेक हैं। परन्तु कुछ परंपरागत प्रसिद्ध रागों के आधार पर बने अगो को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता जैसे देश या सोरठ अंग इसमे अनेक रागो का गायन होता है जैसे देश, सोरठ, जैजैवंती आदि।

रागरागिनी वगीकरण पद्धति वस्तु सृष्टि की उत्पत्ति के वैदिक सिद्धांत पर आधारित हैं और वर्तमान युग में भी इस पद्धति का प्रभाव किसी न किसी रूप मे दृष्टिगत होता है। हलांकि आधुनिक समय में रागो को वगीकृत करने के लिए अन्य पद्धतियां प्रचलित हैा किन्तु इस पद्धति की ध्यान परपरा की ओर गायको का आकर्षण दिखायी देता है। दरअसल भावुकता, सरसता ही इस पद्धति की आत्मा मानी गयी है। रागरागिनी वर्गीकरण पद्धति से सुप्रसिद्ध ग्रथ 'सगीत दपर्ण मे कथनित है-

शिवशक्ति समायोगाद्रागाभ्या सभवो भवेत

पन्वास्पात् पचरागा स्यु षटस्तु गिरिजामुख

अर्थात शिव शक्ति के सयोग से रागो की उत्पत्ति हुई। महादेव शंकर के पांचमुखो से पाच राग उत्पन्न हुए और छठां राग पार्वती जी के मुख से।

म0 भातखंडे प्रथम शास्त्रकार व विचारक के जिन्होंने समय की आवश्यकता व सैद्धान्तिक बिखराव को ध्यान मे रखते हुए इस पद्धति की कमी को लोगो के समक्ष प्रस्तुत किया और इसके स्थान पर दाक्षिणान्य सगीत पद्धति के समान मे लय पद्धति को स्वीकार करने की प्रेरणा दी। साथ ही इस पद्धति की सैद्धान्तिक विवेचना युक्त ग्रथो की सर्जना भी की।

मानक हिन्दी कोष के अनुसार भरत और हनुमत के मत से छ राग निरूपित हुए थ - भैरव, मेघ, कौशिक (मालकौंस) हिन्डोल, दीपक तथा श्रीराग। बाद के आचार्यों द्वारा प्रत्येक राग की छः छ रागिनियां और छ छ पुत्र भी माना गया है। कालान्तर मे अनेकानेक नवीन राग-रागिनियां निर्मित होती गयी, जिनकी स्वर योजना आदि बहुत कुछ निरूपित व निश्चित है।

वस्तुत प्राचीन ग्रथो के रागो का आधार 22 श्रुतियो पर था जो अब 12 की सख्या मे ही है और वर्तमानकालीन 12 श्रुतियो पर आधारित सगीत मुस्लिम काल से चला आ रहा है।

राग और भाव :-

राग का सम्बन्ध मनुष्य के मूड से होता है, तथा राग मे गायी गयी कविता मनुष्य के भाव से सम्बन्धित होती है। यही कारण है सगीतशाला मे गायन को ही उच्च स्थान प्रदान किया गया है। वर्तमान समय मे जब किसी कविता या गीत को

'राग' मे गाते हैं तो ऐसे गायन को रागरग की सज्ञा दी जाती है। शास्त्रीय सगीत कारा के विचार से पाच स्वरो के मेल को राग नहीं माना जा सकता है। क्योंकि पाच स्वरो से कम के मेल से रजकता नहीं ोती है। राग के गायन मे उसके रूप को दर्शाया जाना ही उचित माना जाता है। इसके तात्पर्य राग को वादी व सवादी स्वर मेल से बराबर दर्शाने से है किन्तु अनेक चतुर उस्ताद विवादी स्वर का भी राम मे ऐसा सुंदर समन्वय कर देते हैं कि श्रोता झूम उठता है। वस्तुत रागो के माध्यम से सगीतज्ञ गीत के भाव का प्रदर्शन करता है। भावप्रदर्शन ही गायन का वह आधार है जिससे श्रोता को भावमय किया जाता है।

रागो का निर्माण समय के अनुसार किया गया अथवा पहले रागो का निर्माण हुआ तदुपरात उन्हे समय दिया गया। इस सदर्भ मे कुछ निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता है। सम्भवत भारत ऋतु प्रधान देश होने के कारण कुछ स्वर मेलो को ऋतुओ क ही समय गाने की परपरा चली, ऐसा कह सकते हैं, जैसे - राग मल्हार व बसत आदि। इसी प्रकार अनुमान कर सकते हैं कि ताप-परिर्वतन, या 24 घटे के समयानुसार विभाग के आधार पर गायन का समय तय किया गया होगा। मनुष्य के मूड मे समय का विशेष स्थान होता है। संगीतज्ञ साय सधि प्रकाश के समय पूवी तथा प्रात सधि प्रकाश के समय ललित राग गाना उचित मानते है, क्योंकि इन दोनो रागो मे कोमल व तीव्र मध्यम का योग होता है। वस्तुत गायन प्रक्रिया मे राग के रूप व कोमलता को अवश्य ध्यान मे रखा जाना चहिए।

राग के सम्बन्ध मे यह कहना समीचीन होगा कि अकेले राग अथवा कोरी कविता मनुष्य को वह आनदानुभूति नहीं करा सकती है, जो राग मे गाये गये भावपूर्ण गीत या सगीत से होगी। निष्कर्षत स्वर ताल लय व कविता के समन्वय से ही

'राग' की रचना होती है। राग से रस बरसता है तथा राग मे कविता से भाव प्रकट होता है। इस प्रकार राग मे भाव का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

गायन के विभिन्न प्रकार होते हैं जिनमे ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, भजन, गजल व कव्वाली इत्यादि उल्लेखनीय है। इनके सम्बन्ध मे यही कहा जा सकता है कि यदि उक्त सभी गायनो को शास्त्रीय राग मे गाया जाता है तो वह शास्त्रीय सगीत ही कहा जायेगा।

रागों में ध्यान की परंपरा एवं रसमयता :-

रागो मे ध्यान की परपरा सगुणोपासना का एक अग है, जिसके अन्तर्गत निर्गुण, निराकार ब्रह्म को, रागात्मक सगुणोवासनात्मक दृष्टि से मान्यता दी गयी। इसी प्रकार केवल सुना जाने वाला नाद राग के रूप मे अवतरित हुआ तब उसके चिंतन की आवश्यकता हुई। रागो की सम्मोहन एव आकर्षण शक्ति का अनुभव कर भारतीय मनीषियो ने रागो मे दिव्यशक्ति का दर्शन किया। रागो मे देवत्व भावना के सकेत भरतपरपरा मे भी दृष्टिगत होते हैं। तदनुसार श्रृगार के देवता विष्णु, हास्य के प्रमथगण, रौद्र के रूद्र, करूणा के यम, वीभत्स के महाकाल, भयानक के काल तथा अद्भुद के देवता ब्रह्मा बताये गये हैं।[1] आचार्य नान्यदेव ने भरत भाष्यम मे ग्रामो, ग्रामरागो एव मूच्छनाओ के देवताओ का उल्लेख किया है। कश्यपादि आचार्यों द्वारा भी रागो के देवताओ की चर्चा की गयी है। राग के ध्यानो का उपासना की दृष्टि से विशेष महत्व है। स्व, राजाभैया ने अपने गुरू के ध्रुपदगान से वर्षा होने का आखो देखे प्रत्यक्ष अनुभव का वर्णन ध्रुपद धमार ग्रन्थ मे किया है, जिससे आभासित होता है कि सगीतज्ञो मे रागो की उपासना की हमारे यहा प्रचीन परपरा थी। रागों के ध्यान सिद्धात का इस भाव सिद्धात से घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। शिव के ध्यान को

आधार बनाकर भैरव राग प्रस्तुत करने मे वही आपत्ति कर सकता है, जिसके हृदय मे पवित्र प्रेम भक्ति भावना न हो और ऐसे व्यक्ति को सगीतज्ञ की श्रेणी मे गिनना उपयुक्त नहीं हो सकता। अत कह सकते हैं कि रागो की देव-देवी रूप मे उपासना अनुचित नहीं है। क्योंकि कला भावाभिव्यक्ति का सबल माध्यम होती है।

वस्तुत चाहे सामगान हो, गाधर्व या देशी, हो गायन हो या वादन, चाहे ध्रुपद शैली हो या ख्याल शैली, ठुमरी हो या तराना, सगीत की किसी भी गीत विधा को रस भाव भक्ति प्रथक करके लोकप्रिय नहीं बनाया जा सकता। स्वरप्रधान आलाप मे भी राग के स्वरो मे जब रसात्मकता की अनुभूति करायी जाती है, तभी ब्रह्म का साकार स्वरूप प्रत्यक्षीभूत होने लगता है।

तालविवेचन - अर्थ एवं व्युत्पत्ति :-

ताल के सम्बन्ध मे नाट्यशाला मे उल्लिखित है -

तालोपन इति प्रोक्त:कला पात लयान्वित ।

कलातस्य प्रमाण वै, विज्ञेयं तालयोकृभि ।

अर्थात् सगीत मे काल (समय) का भाग जो कला, पात और लय से युक्त है उसे 'ताल' संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उसका कार्य है सगीत को मापना।[1] यहा कला का अभिप्राय मात्राओं के योग से निर्मित सगीत मापक ताल के रूप मे है। पाच हृस्व अक्षर, 'क ख ग घ ड. - के प्रथक अवभास युक्त उच्चारण काल ही 'मात्रा' है और दो मात्राओ के उच्चारण के मध्य का समय जो पाच लघु उच्चारण का काल है, उसी 'लय' बनती है। ताल मापन हेतु करताली अथवा सकेत को ही 'पात' कहा जाता है।

---

1 ना0शा0अ0 31/1

'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति के सदर्भ मे शास्त्रकारो के अनेक मत हैं। ताल शब्द का निर्माण 'प्रतिष्ठार्थक' 'लय' धातु के पश्चात् अधिकरणार्थक 'घज' प्रत्यय लगाने से होता है।

तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्धन्स्मृत ।

आचार्य शैलालि के विचार से त्रट के पद को 'तल' कहा जाता है, तज्जनित होने के कारण भावार्थ में 'अण्' प्रत्यय लगाकर 'ताल' शब्द का उद्भव होता है। अभिनवगुप्ताचार्य की दृष्टि मे 'ताल' की निष्पत्ति आदिदेव महेश्वर के चारनि श्वास से उत्पन्न चार अक्षरो से चचपुट मार्ग तालो की उत्पत्ति हुई है।

देवश्चतुर्भिनि.यूवारक्षराणां चतुष्टयम ।

उदीर्य तस्यातीते तु विश्रान्तो गिरिजायति ।।

उक्त आगमशास्त्रीय दृष्टिकोण के अतिरिक्त नाट्यशाला के सिद्धातो एवं विषयों मे भी ब्रह्मा-शिव परम्परा का समन्वय दृष्टिगत होता है। नंदिकेश्वर ने भरतार्ण में ताण्डव नृत्य से 'ता' और लास्य (स्त्रीनृत्य) से 'त्व' वर्ग के आधार 'ताल' को उत्पन्न बताया है। जबकि सगीत दपर्ण मे 'ता' शकर एवं 'ल' शक्ति का प्रतीक बतायी गयी है। शिवशक्तिसमायोगान्ताल नामाभिधीयते। छन्दों के हृस्व दीघ अक्षरों के उच्चारण भेद से ताल के अग-लघु और गुरू की अवधारणा निर्मित हुई। छदो को वेद का पाव (चरण-पाद) कहा गया है। छन्छ पादो वेदस्य छन्द गतिप्रदायक है, उसी प्रकार 'ताल' संगीत को गतिशीलता प्रदान करते हैं। मात्राओ सख्या भेद से छदो के विविध रूप बनते है।

आदिकाव्य 'रामायण' मे प्रयुक्त 'अनुष्टुप' छद के प्रत्येक चरण मे आठ अक्षर होते हैं। तालो मे प्रथम चतस्त्र ताल 'चच्चपुट' आठ मात्रा का ताल है। रामायण

गेय रचना है, उसी तरह दूसरा त्रयस्त्र ताल 'चांचपुट' का सम्बन्ध छै अक्षरी पाद वाल गायत्री छ[illegible] [illegible] है जो कि 24 अक्षरीय मत्र है और चाचपुट 6 मात्रा का ताल है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि तालोत्पत्ति का आभास लयबद्ध, श्वास, प्रश्वास, एक पग के पश्चात चलते समय दूसरे पग के रखने मे स्वाभाविक लय, निर्वाह दिन एव रात्रि, ऋतु परिवर्तन इत्यादि से हुआ होगा। पक्षियो के कलरव मे लयात्मकता इत्यादि प्राकृतिक उपादान 'ताल' की सरचना मे सहायक रहे होगे।

ताल भेद :-

मार्गताल मे प्रमुख चतरत्र, चच्चपुट, और त्र्यस्त्र 'चायपुट' है। जिनसे तीन और ताल मचपाणि या षट्पितापुत्रक, सम्पक्वेष्टाक और 'उद्घह' की उत्पत्ति हुई है। इन्ही तालों से अनेक तालो का विकास हुआ यथा - द्विकल, चतुष्कल, अष्टकल, षोडसकल, षण्णवतिकल इत्यादि। आर्षभी, गाधार मचमी, आध्री मे उपलब्ध स्वरताल बद्ध प्रस्तरो मे (गीतो में) चच्चपुट के चतुष्कस रूप का प्रयोग है। मचपाणि के चतुष्कल रूप का प्रयोग षडजी, धैवती, नैषादी, षडजोदीच्यवा, षडजनमध्यमा, रक्तगाधारी, कैशिकी जातियो मे प्राप्त होता है।

मतगाचार्य में ग्रामरागों में चच्चपुटादि तालो के प्रयोग, चित्र, वार्तिक दक्षिणमार्ग मे करने का उल्लेख किया है। पूर्वरग मे प्रयुक्त वहिगीतो में षट्पितापुत्रक 'ताल' का प्रयोगाधिक्य है। वृहद्देशी के उल्लेखानुसार जाति से लेकर अंतर भाषा तक रागो में प्रयुक्त चच्चयुपादि ताल मार्गताल और प्रबन्धो मे प्रयुक्त अन्य ताल 'देशीताल' के अन्तर्गत आते हैं। जो देशी रागो मे प्रयुक्त है। सगीतरत्नाकर' मे भी देशी तालो

के अन्तर्गत हपलीला, गजलीला आदिताल, सपाताल, करण पतिताल, द्रुतमठ, महतालादि का वर्णन प्राप्त होता है।

मार्गताला के प्रकारो से ही देशी तालो की उत्पत्ति हुई है, किन्तु संख्या का निर्धारण कठिन है, जैसा कि आचाय अभिनवगुप्त ने लिखा है -

असख्यानि सहत्राणि कोटीनामायुतानिच।

तालछय प्रभेदेन पुरा प्रोक्तानि शंभुना।

मार्ग मे कालाग लघु, गुरू, प्लुत, हो रहे परन्तु देशी मे इनके साथ ही द्रुत, अनुद्रुत भी समाविष्ट हो गये। विराम का भी स्थान महत्वपूर्ण हो गया। वस्तुत· देशी ताल मे प्रस्तार के माध्यम से तालों के असंख्य रूप बनते गये किन्तु उन सबके गणितीय रूप अधिक होने से उनमे से कुछ का प्रयोग ही सभव हो सका।

मध्यकाल तक रागो की भाँति तालो मे अनेक परिवर्तन होते गये। लोकतालो को शास्त्रीय सिद्धात के अन्तर्गत शास्त्रीयताल के रूप प्रदान किये गये। उत्तर भारतीय सगीत मे इसके अनेक उदाहरण प्राप्य हैं। प्राचीन मार्ग-देशी तालो का आधार लेकर बनन वाले ताल त्रिताल, चौताल, एकताल, शूल, झपताल, धमार, तीव्रा आदि हैं। इसी प्रकार लोकतालो के प्रभावो से बनने वाले ताल- दीपचदी, दादरा, कहरवा, धमाली जैसे ताल हैं। झूमरा जैसे ताल लोकव शास्त्र दोनों ही परंपराओ का संवहन करते हैं। तिलवाडा त्रिताल का ही बदला हुआ रूप है। जब- दीपचंदी पर आधारित ताल हैं। ब्रहम, रूद्र, लक्ष्मी, मत्तादि ताल अधिक प्रचारित न हो सके क्योंकि इनमे शास्त्रीय क्लिष्टता अधिक थी। मध्यकालीन ताल के दशप्राण प्राचीन मार्गतालीय सिद्धातों पर ही आधारित रहे। राग के दशलक्षणो के आधार पर ही ताल के भी दस प्राण माने गये हैं।

तालो के सम्बन्ध मे यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि तालशास्त्र का विकास वैचत्र्य, विविधता लिए हुए जिस तरह भारतीय सगीत मे हुआ है वैसा विश्व के शायद ही किसी देश मे दृष्टिगत हो।[1]

अत्यधिक चमत्कार प्रदर्शन, नवीनता उत्पन्न करने की ललक एव क्लिष्टता वश अनेक ताल स्वाभावित प्रवाहमयता के अभाव मे कालप्रवाह मे पीछे छूटते गये।

तालों का महत्व :-

तालो का शास्त्रीय सगीत मे महत्व निरापद है, याज्ञवल्क्य स्मृति मे 'ताल' को मोक्ष का मार्ग कहा गया है - तलज्ञश्चप्रयासेन मोक्षमार्ग प्रयच्दति, अर्थात् ताल का ज्ञाता अनायास ही मोक्ष पद का अधिकारी हो जाता है। ताल की महत्ता के सदर्भ मे नाट्यशास्त्रकार ने तो यहा तक कहा है कि ताल व ज्ञान के बिना गायक या वादक होना ही असंभव है, 'यस्तु ताल न जानाति, न स गाता न वादक.।[2] तात्व ही स्वर और पद को सप्रतिष्ठित करता है। वस्तुत स्वर पद की तुलना मे ताल कहीं अधिक महत्वशील है। स्वर और पद के साथ ताल के समावेशन का कारण ही यही है कि स्वर और पद के लय प्रतिष्ठा प्रदान नहीं कर सकता, यह तो 'ताल' का ही कार्य है। ताल की महत्ता इस बात मे भी है कि वह स्वरो एव पद मे समानता लाता है, जैसा कि आचार्य दत्रिल नें लिखा है - तालात् साम्यं भवेत सम्यादिन्ह सिद्धि[3] तालो से रन्जकता भी आती है। 'मानसोल्लास' नामक ग्रंथ मे विवेचित है कि ताल के बिना गीत, वाद्य, नृत्य तीनों की कल्पना करना असम्भव है, अत तीनो का ही कारण ताल है। पार्श्वदेव ने 'ताले सर्व प्रतिष्ठितम' कहा है। इस प्रकार ताल की महत्ता व उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है।

---

1 भार0 तालो का शास्त्रीय विवेचन - डॉ0 ए0के0 सेन।

2 नाट्यशास्त्र - 31/485

3 दत्रिलम् श्लोक - 110

सगीत पारिजातकार का कथन है कि गीत वाद्य नृत्य के द्वारा श्रोताओ का रजन, उपत्पादि तीनो लोको की उत्पत्ति, कीटकादि, पशुओ की गति तथा इनके कर्मादि लोक, आदित्यादि नक्षत्रों की गति तथा ब्रहमकल्प (आयु) सब तान के वशीभूत है। प0 अहोबल ने ताल के काल परिमापक मानते हुए इस सदर्भ मे उसे व्यापक रूप से प्रस्तुत किया है। वास्तव में सगीत के लिए जिस प्रकार स्वर आवश्यक है, उसी प्रकार ताल भी।

संगीत में लय स्थिति - विवेचन :-

भारतीय मनीषा लय को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार बताती है, और इसी प्रकार सगीत का आधार भी नाद व लय ही है। सगीत अथवा गायन चतु स्तम्भो में लयदारी का भी वर्णन किया गया है। वस्तुत ताल व लय का ज्ञान सगीत सीखने वाले को गुरू से प्राप्त होता है और बिना लय के सगीत नहीं हो सकता है। भारत मे लय की स्थिरता रखने के लिए ताल का चलन किया गया और गीत भिन्न-भिन्न तालो मे गाये जाते हैं। जितनी भी अधिक लयदारी गायन मे होगी उतनी सफलतापूर्वक कोई भी गायक श्रोतासमाज को मुग्ध कर सकेगा।

आदिदेव शिव द्वारा सम्पादित ताण्डव नृत्य जीवन मे लयात्मकता का द्योतक करता है जिसमे आदि शक्ति द्वारा सृष्टि का उद्भव (सर्जन) विस्तार और अन्त मे सम्पूर्ण सृष्टि का उसी शक्ति मे विलय दर्शाया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण सृजनात्मक, विकासात्मक प्रक्रिया मे लय का स्थान सर्वप्रमुख है। सब कुछ एक लयवत क्रमिक रूपेण ही संघटित हो रहा है।

लय के आधारभूत तत्व हैं मात्रा तथा मात्रा की गति। सगीतज्ञ गायन की प्राण प्रतिष्ठा लय के माध्यम से कर सकता है। इस सदर्भ मे हम मानक हिन्दी

कोश का उल्लेख कर सकते है, जिसमे उल्लिखित है - 'लय' कविता और सगीत मे गति या प्रवाह और गति या विराम पर आधारित वह तत्व है जो नियमित रूपेण होने वाले उतार - चढ़ाव तथा आपेक्षिक पुनरावृत्तियों से उद्भूत होता है। यह कविता, गायन एव नृत्य मे एक विशिष्ट तरह की कोमलता, माधुर्य और लावण्य का अर्विभाव करता है। सूक्ष्म मे लय - गति सामजस्य है। तत्वत इसका मुख्य सम्बन्ध कविताओ, गीतो, मन्त्रो इत्यादि के सस्वर उच्चारण मे लगे समय या काल से होता है। मात्राऐ ही लय तत्व का प्रमुख आधार होती है। एक मात्रा से दूसरी मात्रा के बजने मे जितनी अवधि लगती है, वही मात्राओ की गति है।

लय के भेद :-

भारतीय संगीत शास्त्र मे लय के स्थूलत तीन भेद किये जाते है - विलंबित लय, मध्य लय तथा द्रुत लय। इनमे मध्य लय मे एक मिनट की समयावधि मे 60-80 मात्राओ का समावेशन होता है। यही मात्राऐ लय एव ताल की भी आधार होती हैं। चार ताल मे 12 मात्राऐ, धमार ताल मे 14 मात्राए, झप व शूल मे 10 एकताल मे 12, कहरवा में 8 तथा तीनताल मे 16 मात्राए समाविष्ट होती है। पाश्चात्य देशीय सगीत मे गायन का आधार दो या चार की पुरावृत्ति पर मान्य है।

40 मात्रा ..60 मात्रा ... 80 मात्रा . 120 मात्रा . 140 मात्रा विलंबित लय - मध्यलय - द्रुत तथा अतिद्रुत लय - प्राय अधिकाश गायक अपना गायन मध्य लय मे प्रस्तुत करते हैं, जिसका प्रसार 60 से 80 मात्राओ के मध्य है। वस्तुत. अनुभव के द्वारा ही किस अस्थायी को किन मात्राओ (60, 70, 75, 80) से उठायेगे, सभव होता है।

जैसे रागो के भिन्न-भिन्न स्वभाव उनमे प्रयुक्त विभिन्न अतरालो के स्वरो व स्वरावलियो के प्रायोगिक रूपो पर आधारित होते हैं वैसे ही तालो की स्वभावगत विभिन्नता प्रयुक्त मात्रा सख्या, तालखडों, लयभिन्नता व बोलो की भिन्नता पर आधारित होती है। चौताल विलम्बित लय प्राधन्य है, झपताल 2,3,2,3 मात्राओ के विभाजन से बने खडो व अपने स्वभावगत मादकता के कारण - मध्य - विलम्बित लय प्रधान कलात्मक ताल है। कहरवा व दादरा स्वभाव से मध्य व द्रुत लय के ताल है। एकताल विलम्बित लय मे शालीन रूप धारण कर लेता है परन्तु मध्यद्रुत लय मे कलात्मक व श्रृंगारिक बन जाता है।

लय एवं रस में सम्बन्ध :-

विलम्बित लय का प्रयोग शांत, करूण, रसानुकूल, मध्यलय का प्रयोग श्रृंगार, हास्य के अनुकूल और द्रुतलय उत्साहवर्द्धक एव चमत्कारिक प्रदर्शन के अनुरूप होने से वीर अद्‌भुत रसानुकूलन है। नाट्‌यशास्त्रकार भरत के शब्दो मे -

यतय॰ पाणयेश्चैव लयश्चैव प्रयोक्तृभिठ ।

थाक्रम हि कर्त्तव्यं गीतयुक्ति मवेछय च।[1]

सगीतरत्नाकर मे 'रसानुकूलन वाद्यो के वादन मे लय प्रयोग का विधान किया गया है। वश, वीणा और शारीर (कठध्वनि) से उत्पन्न सामूलिक ध्वनि विशेषरंजक होती है। मार्गप्रवास, स्त्री, निर्जित पुरूष व दु॰खियो के प्रसग मे मंद्र स्वर एव मध्यलय से युक्त वेणुवादन, श्रृगार मे मध्यलय युक्त मधुर ललित ध्वनि से एव द्रुत लयाश्रित, कम्पित स्पुरित ध्वनि युक्त वशवादन क्रोध अभिमान की स्थिति मे करना चाहिए। किन्तु इस सम्बन्ध में कह सकते हैं कि आवश्यक नहीं कि उक्त आचार्यों के ही मत का आज के परिवर्तित माहौल मे पूरी तरह माना जाय। परिवर्तन सापेक्षता अनिवार्य है।

---

1 ना0शा0 अ0 31/50

वस्तुत लय का हमारी इन्द्रियो पर अविलब प्रभाव पडे बिना नहीं रहता जबकि राग को अपना असर पैदा करने के लिये कुछ समय चाहिए। शास्त्रीय सगीत ध्रुपद व होरी एव ख्याल गायन मे लयदारी द्वारा ही चमत्कार प्रदर्शित किया जाता है। लय में गायन अथवा लयदारी की उपयोगिता इस प्रकार स्पष्टत महत्वपूर्ण है।

संगीत की महत्ता :-

विधाता की सर्जन, अर्जन एव सहार के पीछे सदैव एक तारतम्य लयात्मकता अथवा गतिशीलता विद्यमान रही है, यही बात सगीत के सम्बन्ध में भी लागू होती है। सम्पूर्ण प्रकृति ही एक नियमनिष्ठ एव अनुशासित ढग से सचालित होती है। तात्पर्य यह है कि सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी और नक्षत्रादि सभी एक विशेष नियमित गति के अनुसार चलते हैं, यदि एसा न होता तो सब कुछ अस्तव्यस्त ही हो जाता इस प्रकार हम देखते हैं कि ये प्रतिबन्ध एवं नियमशीलता ही विकास एव उत्थान के प्रेरक हैं, अत यह कहना असंगत न होगा सगीत विशेषकर शास्त्रीय सगीत भी एक निश्चित नियम, सिद्धात एव समयानुसार मानव जीवन को विकास के प्रति संप्रेरित करते हुए वास्तविक आनंद की अनुभूति कराती है। अत शास्त्रीय सगीत को महत्ता अक्षुण्य है, चिरस्थायी है।

जीवन और संगीत :-

आचार्य भृर्तहरि के शब्दो में -

साहित्य सगीत कला विहीन , साक्षात पशु पुच्छ विषाण हीन ।।

स्पष्ट है मानव जीवन मे सगीत का स्थान नितान्त महत्वपूर्ण है। सगीत जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त बरकरार रहता है। मानव के इतिहास मे भाषा के उद्भव के पूर्व ही पारस्परित आदान प्रदान सगीत द्वारा ही सभव था। भारतीय सस्कृति मे विवेचित सोडष सस्कारो मे सर्वत्र सगीत के स्वर अनुगुंजित होते है। यहा के प्रत्येक उत्सव व त्योहार में सर्वत्र सगीतमयता दृष्टिगत होती है। मानव जब निरतर कार्य करते करते श्रांत हो जाता है तो उसे मनोरजन की आवश्यकता अनुभव होती है, अत

कठोर परिश्रम के बाद जब सगीत की मधुर ध्वनि, बांसुरी की ताब आदि उसके कानों में गूजती है तो उसका सारी श्रम जनित थकान दूर हो जाती है। जब वह एक विशिष्ट नियमोपनियमो से युक्त विभिन्न प्रकार की राग-रागनियो को सुनता है तो भाव विभोर हो उठता है।

आनंद का स्रोत संगीत :-

वास्तव मे सगीत विनोद की वस्तु न होकर, एक चिरस्थायी आनद का स्रोत होती है, जिससे अपूव आत्मसन्तुष्टि सम्प्राप्य होती है। विभिन्न ऋतुओ मे तदनुकूल गाये जाने वाले गीतो रागो का अपना विशेष महत्व होता है। बसत ऋतु मे गाये जाने वाले बासतीगीत, होली के धमार गीत एक अपूर्व उल्लास का सृजन करते हैं। नयी फसल के साथ नयी खुशी का आगमन होता है। इसी प्रकार वर्षा ऋतु मे तदनुकूल रागो के गायन से मन भावना सावन, धरती की हरियाली, बादलो की गडगडाहट से छन कर आती है, जन-जन के मन मे एक अमिट खुशहाली भर देती है।

संगीत भक्ति का भी एक अभिन्न अग रहा है। जितने भी श्रेष्ठ भक्त व सत हुए हैं प्राय सभी सगीत शास्त्र के अच्छे ज्ञाता व साधक थे, चाहे वह सूर हो, तुलसी है, मीरा या चैतन्य हो। उनके प्रत्येक पद मे ऐसे भाव समाहित है कि जिनमे मानवहृदय आनंद मग्न हो ही जाता है।

स्थायी प्रभाव का सर्जक :-

यूँ तो कोई भी सगीत जो कर्णप्रिय हो, हमारा मनोरंजन करती है। सुख प्रदान करती है किन्तु वहीं जब विशेष नियमो, सिद्धांतो से आबद्ध होकर प्रस्तुत की जाती है। तो वह शास्त्रीय सगीत का रूप धारण कर लेती है और उससे होने वाला प्रभाव मानव मष्तिष्क पर स्थायी रूपेण अकित होने लगता है।

सामान्य गीत सगीत सुनने मे तो अच्छे लगते हैं किन्तु उनका प्रभाव तात्कालिक होता है, ओर प्राय यही देखा जाता है कि कुछ समय के उपरांत वे लुप्त होने लगते हैं। जबकि शास्त्रीय संगीत इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि यथासमय सही ढग से प्रस्तुत किये जाने पर इसका प्रभाव दर्शक दीघा अथवा श्रोता समाज पर धीरे-धीरे सदा-सर्वदा के लिए स्थायी हो जाता है। इस प्रकार एक विशिष्ट आनद, आत्मसतोष की सृष्टि करने लगता है। विभिन्न प्रकार की रसात्मक अनुभूति कराने मे शास्त्रीय सगीत ही सक्षम है, बशर्ते कि उसमे पात्रता हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि शास्त्रीय मन पटल पा जो स्थायी प्रभाव अकित कर देती है वह परम् आहलादमय होता है। परमानद की सत्राप्ति मे सहायक होता है। देवत्व की भावना प्रस्फुटित होती है।[1] पुराणों मे गीतज्ञ के सम्बन्ध में कहा गया है कि गीतज्ञ यदि किसी कारणवश परमपद की प्राप्ति न कर पाये तो ऐसी स्थिति में वह देवता का अनुचर होता है -

गीतज्ञो यदि गीतेन नाप्नोति परमंपदम् ।

देवस्यानुचरो भूत्वा तेनैव सहमोदते।[2]

तात्पर्य यह कि गायक, गीतकार इत्यादि को देवतुल्य आनंद की प्राप्ति होती है। एक नवीन चेतना की संचार करती है शास्त्रीय संगीत, अन्तस की संवेदना को साकार करती है। सामान्य सगीत की अपेक्षा चिरन्तर प्रभाव छोड़ जाती है। नि संदेह दिव्य शक्ति का भान कराने मे शास्त्रीय सगीत ही सर्वथा सक्षम है। उपयोगी है। शास्त्र सम्मत नियमोपनियमो, राग, ताल, लय छन्द इत्यादि से समन्वित शस्त्रीय संगीत जन-मानस के सुखानुभूति के लिए अतीव आवश्यक महत्वपूर्ण है। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद

---

1. नाट्यशास्त्र - अ0 6
2 वि0 धर्मो0 पुराण खड 3 अ 2

न लिखा है कि हमारे साधु सतो की सगीत साधना का ही यह प्रभाव था कि कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, तुकाराम, नरसी मेहता ऐसी कृतिया कर गये जो हमारे और ससार के साहित्य मे सदा ही अपना विशिष्ट स्थान रखेंगी। वास्तव मे संगीत अथवा शास्त्रीय सगीत ऐसा चिरस्थायी आनंद है जिसमे हमे आत्म सुख प्राप्त होता है।

संगीत के विभिन्न तत्वों का महत्व :-

संगीत मे स्वर, लय, ताल, रागादि तत्वो की महत्वपूर्ण स्थिति होती है। स्थिर, मधुर, रजक नाद स्वरो का उपयोगिता निरापद है। स्वर का तात्पर्य ही है राग जनक ध्वनि जो मन को प्रसन्न करने वाली होती है। स्वयं स्वेष्वेव जातिराग भाषा भेदेषु राजन्त इति स्वर।[1] अर्थात् जाति राग भाषा-भेद से स्वयं शोभायमान होकर चित्त का रजन करने के कारण स्वरों अवरोह, पकड़, जाति, आलाप, तान, मीड, गमक, लय, मात्रा, ताल, सम, ताली, खाली इत्यादि तत्वो का क्रमिक प्रयोग होता है, जो उसकी विशेषता का द्योतन करते है। आलाप की मन्द गति मे गायक कण, मीड, खटका आदि उपकरणो की सहायता से अपनी हृदयगत भावनाओ को व्यक्त करता है। इसी प्रकार तान के कई प्रकारो में आलंकारिक तानो का बडा महत्व है। ये ताने सुनने मे अच्छी लगती हैं। सम्पूर्ण जाति के रागो मे इनका प्रयोग बहुत अच्छी तरह से होता है। शास्त्रीय सगीत में समय के मापन हेतु मात्राओ का विधान किया गया है। दो तालियो के बीच का समय एक मात्रा कहलाता है। मात्रा की लम्बाई चोडाई के आधार पर लय के प्रकार बने हैं। वास्तव इन मात्राओ का महत्वपूर्ण स्थान सगीत मे होता है।

---

1. अभिनव 4 पृ0 ।।

सगीत में लय एवं ताल का महत्व :-

वास्तव मे स्वर और लय शास्त्रीय सगीत के दो आधार स्तम्भ माने जाते हैं। जिनके आधार पर कलाकार सगीत का सृजन करता है। स्वर का प्रयोग रागो में तथा लय का प्रयोग तालों मे विशेष रूपेण किया जाता है। स्वर के अतिरिक्त लय और ताल सगीत के दो अविभाज्य अग है। जहां तक लय की महत्ता व उपयोगिता का प्रश्न है, यदि देखा जाय तो संगीत मे ही नहीं अपितु समस्त सृष्टि और मानव जीवन मे लय की महत्वपूर्ण भूमिका है, वह सर्वत्र व्याप्त है। लय ही जीवन है और इसका महत्व सगीत मे भी अनिवार्य रूपेण है।

शास्त्रीय सगीत मे तो लय का सम्बन्ध प्राचीनकाल से ही चला आया है। उसमें लय और ताल के प्रदर्शन हेतु अवनद्ध वर्गीय वाद्य प्रयोग में लाये जाते हैं। आदिकाल या वैदिक युग में भी ऐसे वाद्यो की झलक मिलती है। यथा भूदुन्दुभि, वानपत्ति आदि। उपनिषद, महाभारत रामायण, तथा अन्य प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो मे इस प्रकार के वाद्य यत्रो का उल्लेख यत्र तत्र मिलता है। सगीत मे लय के प्रयोग की परम्परा इस समय तक अविच्छिन्न रूपेण चली आयी है और जब तक सृष्टि मानव और सगीत रहेगा, लय का स्थान सगीत मे इसी प्रकार बना रहेगा।

सगीत का आधार अद्यपि स्वर तो है किन्तु किसी राग का विस्तार, आलाप, तान, बोलतान, आदि लय के विविध रूपो पर ही आधारित रहते हैं। वस्तुत लयात्मक स्वर विस्तारण से ही शास्त्रीय सगीत का वास्तविक आनद मिलता है। अत लय रहित स्वर सगीत-कला की दृष्टि से अधूरी प्रतीत होती है। प्रकृति मे लय की समान स्थिति होती है जबकि मानव अपनी आवश्यकतानुसार लय को घटा बढ़ा सकता है। सगीतकार पहले अपनी एक लय स्थापित कर लेता है और फिर अपनी कलात्मक

साधना द्वारा विभिन्न तरह की लयकारियों की सृष्टि करता है। लय के अनेकानेक प्रकार हो सकते हैं किन्तु इसके तीन भाग विलम्बित, मध्य और द्रुत - सर्वज्ञात है। लय वास्तव मे सगीत का प्राण है, यह कहना समीचीन न होगा और शास्त्रीय सगीत की दृष्टि से तो इसकी उपयोगिता पर कोई सदेह नहीं किया जा सकता सगीतज्ञ अपने स्वर विस्तार की इमारत इसी लय पर ही खड़ी करते हैं।

शास्त्रीय सगीत मे स्वर की भाति ताल भी रस का परिपाक करने मे सहायक होता है। श्रुति माता लाय पिता के अनुसार इस माता व पिता का आश्रम ग्रहण कर संगीतज्ञ संगीत के क्षेत्र मे निर्भीक होकर विचरण करता है। वह अपनी अनेक तरह की कल्पनाओ को स्वर समूहों तथा लय व ताल के विभिन्न प्रयोगो द्वारा प्रकट करता है। लय को ताल बद्ध करने से और तालो को विभागों तथा ताली - खाली आदि में वगीकृत करने से गायक को आसानी हो जाती है।

शास्त्रीय सगीत के तीनो अगो गायन, वादन और नृत्य में ताल की महत्ता सर्वश्रेष्ठ स्वीकार की गयी है तदनुसार -

तालस्तलप्रहिष्ठ यमिति धातोर्वत्रि स्मृत· ।

गीतं वाद्यं तथा नृत्य यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ।[1]

अर्थात् गीत, वाद्य एव नृत्य की प्रतिष्ठता ताल से हुई है एव प्रतिष्ठा वाची धातुरूप 'तल' से ताल शब्द उद्भूत हुआ है। कतिपय शास्त्रीय संगीतिक ग्रन्थों मे शिव और शक्ति के सयोग से ताल के निर्मित होने की बात भी मिलती है। ताल का प्रयोग भारतीय संगीत मे प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। ताल स्वरो का गतिप्रदाता है तथा संगीत को एक निश्चित नियम में बांधता है, जिससे शास्त्रीय संगीत की पुष्टि होती है। सगीत के सुचारू संचालनार्थ ताल आवश्यक तत्व है जिससे सगीत

---

1 संगीतरत्नाकर - सारगदेव

मे अनुशासन आ जाता है और श्रोता समाज मंत्र मुग्ध हो जात है। आज प्रचलित अनेक प्रकार की गायन शैलियो की ही भांति अनेक प्रकार की ताने भी प्रचलित हैं, यथा ख्याल के लिए एकताल, लिबाडा आदि ध्रुपद के लिए चारताल, सूलताल अदि तथा गीत भजन के लिए दादरा, कहरवा, इत्यादि ताले हैं। इन सभी का उद्देश्य सगीत मे एक सयम तथा व्यवस्था का संस्थापन करना ही है, आज हम संगीत के ऐसे कार्यक्रम की कल्पना नहीं कर सकते जिसमे लय और ताल के प्रदर्शन हेतु ताल वाद्य का प्रयोग न होता हो। अत· स्पष्ट है कि शास्त्रीय सगीत मे लय और ताल का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

भारतीय सगीत में ताल का समावेश उसकी अपनी मौलिक विशेषता कही जा सकती है । गायन, वादन तथा नृत्य मे भी लय और ताल का महत्व बहुत अधिक है। सितार आदि के तोड़े व झाले और नृत्य के ततकार तथा परन्, बोल, भाव आदि का गहरा सम्बन्ध तबला, पखावज आदि के बोल विस्तारों से है। शास्त्रीय सगीत के साथ ही लोक सगीत भजन, कीर्तन आदि मे भी लय व ताल तत्वो का अत्यधिक महत्व परिलक्षित होता है। निर्ष्कषता कह सकते हैं कि लय व ताल के अभाव मे सगीत निष्क्रिय, नीरस, तथा अचेतन प्रतीत होगी। लय निसंदेह सगीत का साक्ष्य है जिसका लक्ष्य है परम आनंद की अनुभूति कराना । इस दृष्टि से शास्त्रीय सगीत की भी महत्ता द्योतित होती है।

शास्त्रीय सगीत मे गायक अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर नये-नये स्वर समूहो की रचना करता है और उसे प्रत्येक स्थल पर ताल आदि की ही सीमा मे निबद्ध रहना पड़ता है। हलांकि स्वर सौन्दर्य उच्च स्तरीय लोगों के लिये अधिक

बोधगम्य होता है। लय का प्रभाव क्षणिक हो सकता है किन्तु स्वर का स्थायी होता है, किन्तु शास्त्रीय सगीत के ज्ञान के लिए उसकी यत्किंचित शिक्षा अपरिहार्य है।

भरतनाट्यम या कत्थक प्रस्तुत करते हुए कलाकारों की कला का वास्तविक आनद तो तभी मिलता है जब तत्सम्बन्धी कतिपय बारीकियों, शास्त्रीय नियमो की भी जानकारी हो। इस दृष्टि से शास्त्रीय सगीत अपेक्षाकृत जटिल प्रतीत होता है। तथापि जनसामान्य पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही पडता है।

संगीत की महत्ता इस बात मे भी निहित है कि वह विश्व का एक नैतिक विधान है जो दिव्य सौन्दर्य प्रदान करता है। मानव मष्तिष्क मे नवीन रगो को भरता है। अनेक मनोरम कल्प नामे जगाता है। भावनाओ में रंगीन उडान नयनाभिनाम, सुषमा, एवं निराश के प्रांगण में आनंद का प्रपात प्रवाहित करता है तथा प्रत्येक पदार्थ मे जीवन और उत्साह के अभिनव स्फुरणों को मुखरित करता है। महात्मा गांधी ने संगीत के विषय में लिखा है कि सच्चा संगीत वही जो केवल मन और इन्द्रिय को ही तृप्ति न दे बल्कि आत्मा को भी ऊपर उठाये। वह सगीतज्ञ की पवित्रता शान्ति और आनंद का प्रमाण होना चाहिए। वास्तव मे शास्त्रीय सगीत का भी मूल भूत लक्ष्य इन्हीं विचारों में निहित है। क्योंकि शास्त्रीय संगीत बहुत ही गम्भीर विषय है जिसमें अवगाहन करने पर अनेकानेक आनद स्वरूपा का भान होता है।

विभिन्न कालों में संगीत की स्थिति :-

वैदिक काल में वैदिक वांगमय मे मानव धर्म के आध्यात्मिक और भौतिक स्वरूप का वर्णन किया गया और मानव जीवन को सर्वोत्कृष्ट बनाने के लिए सत्यं शिव सुन्दरम् की खोज की गयी। चार वेदो मे सामवेद में मात्र सगीत के तत्वो का

ही वर्णन प्राप्य है। इनमें विभिन्न शास्त्रीय सांगीतिक स्वर सदर्भों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्राचीन ग्रथो मे भी शास्त्रीय सगीत के विभिन्न तत्वों का प्रभूत रूप में उल्लेख प्राप्त हो जाता है जिससे उसकी महत्ता प्रकट होती है।

नारदीप शिक्षा और वृहतदेशी मे स्वरो के विकास का क्रम वर्णित है। सामवेद मे ग्रामो का उल्लेख किया गया है तथा वाद्य प्रकार भी विवेचित है वाद्यो मे दुन्दुभि, वानस्पति तथा वीणा आदि मुख्य है।

रामाण मे विभिन्न प्रकार के वाद्यो का वर्णन हुआ है तथा इसमे उस काल मे शास्त्रीय सगीत के महत्व का पता चलता है। महाभारत मे अनेक वाद्य यत्रो के नाम प्राप्त होते हैं। अनेक गंधर्वों, पक्षो, किन्नरों द्वारा शास्त्रीय संगीत की महत्वपूर्ण स्थिति का ही सकेत करते हैं। पुराणो मे सर्वत्र गायन वादन और नृत्य की चर्चा मिलती हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में संगीत शास्त्रीय सिद्धांतो गीत के तीन भेद सस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश, गद्य, पद्य तीन स्थान उत्पत्ति कारक अंगो से युक्त तीन ग्राम इक्कीस मूर्च्छनाये, उनचास ताने, स्वर पद लय का चार प्रकार से प्रयोग, वादी सवादी, अनुवादी, मूर्च्छनाओं के आदि अत, स्वरो के रसानुसार प्रयोग, जाति के दशलक्षण चार प्रमुख अलंकार (प्रसन्नादि, प्रसन्नान्त, प्रसन्नादिअत व प्रसन्नमध्यम) सप्तगीत, दक्षनिर्मित, तीन गीत (ऋक, गाथा, पाणिका) इन विषयो का सक्षेप मे उल्लेख किया गया है।[1] पौराणिक साहित्य में गीत वाद्य और नृत्य इन तीनो कलाओ को महत्वपूर्ण मानते हुए पूजा की अनिवार्य पवित्र सामग्री के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है।

वस्तुत साधना शिक्षा और सांस्कृकि उत्थान की दृष्टि से शास्त्रीय सगीत की उपादेयता निर्विवाद है। गाधर्व के सिद्धातानुसार रामायण गान का लक्ष्य क्षणिक

---

1. विष्णु धर्म0 खड 3 अध्याय - 2

आवेश या उत्तेजना नहीं अपितु आक्षुण्य तुष्टि और पुष्टि प्रदान करना है।

आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के छः अध्यायो में सगीत की विस्तृत चर्चा की गयी है जिससे ज्ञात होता है कि उस समय तक संगीत और नाट्य का सम्बन्ध घनिष्ट हो चुका था। भरत सप्तक में कुल 15 स्वरो के स्थान प्राप्त होते हैं जिनकी सिद्धि नाट्यशास्त्र के द्वारा होती है। ये ही स्वर मध्यकालीन, शुद्ध कोमलादि, तीव्रादि स्वरो के प्रेरक रहे। शास्त्रीय संगीत के ही अन्तर्गत नाद का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जो नद् अव्यक्तानां ध्वनौ के अनुसार अव्यक्त ध्वनि रूप है, जिसे अनाहत नाद कहा गया है। नादानुसंधान में यौगिक प्रक्रियाओ के द्वारा स्थूल शब्द से धीरे-धीरे सूक्ष्म की साधना की ओर आगे बढ़ जाता है। नि शब्द होकर केवल प्रणव परमात्मरूप की अनुभूति ही इस नाद साधना की अंतिम स्थिति है। 'अहतनाद' श्रुति के रूप में संगीतोपयोगी हो जाता है। इसी प्रकार गांधर्व या मार्ग सगीत का प्रमुख लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति बताया गया है। इसे अत्यधर्मनिष्टं देवानां तथा प्रीतिकरं कहा गया है इन शब्दो मे गांधर्व का अलोकिकत्तव अदृष्ट फल (मोक्ष) समाहित है।

आचार्य दत्तिल के 'दत्तिलम्' मतंग मुनि के 'वृहददेशी' नारद के नारदीय शिक्षा इत्यादि प्राचीन कालीन ग्रंथों मे शास्त्रीय संगीत को सविस्तार विवेचना उस युग मे इसका महत्ता का ही परिचय देती है।

मध्यकाल में भी शास्त्रीय संगीत की स्थिति काफी महत्वपूर्ण थी। उस समय सगीत की अच्छी प्रगति हुई। छोटी बड़ी रियासतो द्वारा संगीत को एवं संगीतज्ञो का आश्रय प्रदान किया गया था। लगभग 13वीं शताब्दी तक जब मुस्लिम विजेताओ ने भारत मे अपना राज्य स्थापित कर लिया तो उनकी सभ्यता, सस्कृति और संगीत का प्रभाव भी यहा पर पड़ने लगा, विशेष रूप से उत्तर भारत मे एक नवीन प्रकार की

सगीत पद्धति पनप उठी। इस प्रकार भारत में दो सगीत पद्धतिया हो गयी - एक कर्नाटक सगीत पद्धति और दूसरी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति, संगीत का सर्वाधिक विकास अकबर बादशाह के समय मे हुआ। इस युग की कृतियां सगीतमकरन्द (नारद कृति) मे राग, रागिनी का निरूपण मिलता है जयदेवकृत गीतगोविंद मे प्रबन्धों और गीतो का संग्रह है। शारगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर ' में श्रुतियो, सचार ग्राम व तालादि का महत्वपूर्ण विवेचन किया गया है।

उत्तर मध्यकाल में शास्त्रीय संगीत की स्थिति महत्वपूर्ण थी। अधिकतर मुसलमान शासक सगीत प्रेमी थे। उन्होने दरबार में संगीतज्ञों का आदर किया और कला को भी प्रोत्साहन दिया। यह युग संगीत के विकास का युग माना जाता है, जिसमे नयी-नयी गायिकी, राग-रागिनी वाद्यो एव तानो का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय के अमीर खुसरो एव कल्लिनाथ के नाम उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने विभिन्न तालो, ख्यालो तरानो, की खोज की तथा राग रागिनी वर्गीकरण मे महत्वपूर्ण कार्य किया। सगीत का स्वर्ण युग अकबर के शासनकाल को माना जाता है। 'आइनेअकबरी' के अनुसार गायक बैजू, तानतरग, गोपाल तथा मुख्य सगीत सम्राट तानसेन उस समय के ही थे। तानसेन ने दरबारी कान्हड़ा, मियाँ की सारंग, मियाँ की मल्हार आदि रागो की रचना की। 'संगीतपारिजात' अहोबलकृत ग्रन्थ में सर्वप्रथम वीणा के तार पर बारह स्वर की स्थापना का प्रयत्न किया गया। श्रीनिवास ने 'रागतत्व निबोध' की रचना की जिसमे वीणा के तार की लम्बाई के आधार पर 12 स्वरो की स्थापना की गयी।

18वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सगीत रियासतों मे फली फूली। यही आधुनिक काल के रूप जाना जाता है। इस समय विदेशी आंग्लाधिपत्य कायम हो गया था।

वस्तुत यह काल सगीत विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण नही था। 1900 के बाद पुन शास्त्रीय सगीत की स्थिति सुधरने लगी और इस दृष्टि से पं0 विष्णुदिगम्बर पलुस्कर तथा प0 विष्णुनारायण भातखडे का योगदान महान रहा है। स्वतंत्रता के उपरात शास्त्रीय सगीत के क्षेत्र मे भारत सरकारी द्वारा अनेक प्रयत्न किये गये। विभिन्न क्षेत्रों में शास्त्रीय सगीत के प्रोत्सानाथ आकाशवाणी केन्द्रों की स्थापना की गयी। सगीत प्रतियोगिताए आयोजित की जाती रही है। वयोवृद्ध एव प्रसिद्ध सगीतज्ञो को सम्मानित किया जाता रहा है, अनेक महत्वपूर्ण संस्थाओ का शास्त्रीय संगीत के सम्बन्ध मे योगदान उल्लेखनीय है, जो इसके महत्व को पूर्णत प्रसारित व प्रचारित कर रही हैं।

इलाहाबाद की प्रयाग संगीत समिति, लखनऊ की भातखंडे सगीत विद्यालय, ग्वालियर की माधव संगीत विद्यालय, बम्बई की गांधर्व संगीत महाविद्यालय आदि महत्वपूर्ण सस्थाये हैं। अनेक पत्र पत्रिकाओं ने भी शास्त्रीय सगीत की महत्ता का प्रसार-प्रचार किया है। शास्त्रीय सगीतज्ञों में प0 ओकारनाथ ठाकुर, बडे गुलाम अली खॉ, उस्ताद अमीर खॉ, श्रीमती केसर बाई केरकर, श्रीमती गिरिजा देवी आदि उल्लेखनीय हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत के महत्व को विदेशों में प्रतिष्ठापित करने वाले सगीत पुरोधाओं मे सितारवादक सर्व श्री प0 रविशकर, विलायत खॉ तबला वादक श्री शामता प्रसाद तथा अल्ला रक्खा खॉ आदि का विशिष्ट योगदान रहा है।

इनके अतिरिक्त आज भी अनेक सम्मान्य सगीतज्ञो के नाम शास्त्रीय सगीत के महत्ता के परिचायक हैं जिनमे सर्वश्री भीमसेन जोशी, निखिल बनर्जी, स्व0 अहमदजान थिरकवा, अब्दुल हलीम जाफर लालजी श्रीवास्तव, रामनारायण, बिसमिल्ला खॉ, रौशन कुमारी तथा स्व0 गोपाल मिश्र इत्यादि अनेक कलाकार उल्लेखनीय हैं।

देश बडे बडे नगरो मे प्रतिवर्ष एक उत्कृष्ट सगीत सम्मेलन का आयोजन करना आवश्यक सा हो गया है। कलकत्ता, बम्बइ आदि महानगरो मे अनेक शास्त्रीय सगीत के सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र मे अनेक विद्वान नयी नयी खोजें भी कर रहे हैं, ताकि इसकी महत्ता लोक मे बरकरार रहे।

शास्त्रीय संगीत के लोकप्रियता - एक विवेचन :-

आज के वैज्ञानिक एव औद्योगिक विकास के युग में मानव जीवन निरन्तर व्यस्त होता जा रहा है। ऐसी स्थिति मे प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि शास्त्रीय संगीत को जन सामान्य के बीच किस प्रकार लोकप्रिय बनाया जाय। क्योंकि आज प्राय: देखा जा रहा है कि जनता सरल सगीत या चित्रपट संगीत की ओर कहीं अधिक आकृष्ट हो रही है।

आजकल कुछ लोग ही शास्त्रीय सगीत के कार्यक्रमो को निष्ठा व रूचिपूर्वक सुनते हैं। शास्त्रीय संगीत के प्रति उदासीनता का कारण यदि गौर से देखा जाय तो इसका उत्तरदायित्व कलाकार व श्रोता दोनो पर ही जाता है। संगीत कला मानव जीवन को आदि काल से ही प्रभावित करती रही है और भविष्य मे उसकी महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तव मे कलाकार को इस सदर्भ में पूर्ण मनोयोग से साधना करने की आवश्यकता है, ताकि शास्त्रीय संगीत के वास्तविक स्वरूप का दर्शन हो सके। वर्तमान समय मे अधिकाश कलाकारो की साधना मे हृद पक्ष का अभाव स्पष्टत परिलक्षित होता है। तात्पर्य यह है कि प्रदर्शन एव चमत्कारिकता को अधिक प्रश्रय दिया जाता रहा है। आज के गायको की लयात्मक साधना का का लक्ष्य कुछ दूसरा ही प्रतीत होता है। वे एकबार में सारी लयकारिया प्रदर्शित

कर देना चाहते हैं। अतिविलंबित और अतिद्रुत लय के प्रयोग बुद्धिकौशल के परिचायक तो हो सकते हैं किन्तु हार्दिक भावनाओ के नहीं। इस सन्दर्भ हम कह सकते हैं कि शास्त्रीय की लोकप्रियता, आकर्षक स्वरूप एव महत्ता को अक्षुण्य रखने के लिए सगीतज्ञो को विभिन्न लयो का भावो के अनुकूल ही करना चाहिए। इसके साथ ही शास्त्रीय सगीत की लोकप्रियता हेतु भीलो की भाषा सरल, सरस, स्पष्ट एव हृदयग्राही होना अनिवार्य है। ख्याल शैली में गेय गीतो की भाषा भावमयी, प्रवाहमयी होनी चहिए। ताकि श्रोतागण उसके प्रति आकर्षित हो तथा नाद सौन्दर्य का साक्षात्कार कर सके। राग की प्रकृति को समझते हुए तदनुसार ही गीत गाये जाय तो बेहतर होगा। शास्त्रीय सगीत की लोकप्रियता के लिए आवश्यक है कि देश काल और परिस्थति का भी ध्यान रखा जाय, और गीतों की सृष्टि करने में नवीनता, जन सामान्य की रूचि, बौद्धिक क्षमता को ध्यान मे रखते हुए कार्यक्रम को प्रस्तुत करना चाहिए।

शास्त्रीय संगीत के प्रस्तुतीकरण मे कंठ सगीत के साथ तबला व तंबूरा के अतिरिक्त कतिपय अन्य वाद्यमंत्रो की भी व्यवस्था अपेक्षित है। शास्त्रीय सगीत के महत्व को सामान्य वर्ग तभी पूर्ण रूपेण समझ सकता है जब उसे सगीत की शिक्षा दी जाय। अत: इस ओर भी ध्यान देना होगा। इसके लिए संगीत के कुशल, प्रभावी शिक्षकों का होना भी आवश्यक है। इस प्रकार जनसाधारण को शास्त्रीय सगीत के महत्व को प्रतिपादित किया जा सकता है। श्रोताओं की रूचि का सस्कार करक समाज मे शास्त्रीय संगीत के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया जा सकता है।

शास्त्रीय संगीत सम्मेलनों की महत्ता :-

शास्त्रीय सगीत की महत्ता के परिचायक सम्मेलनो की भी भूमिका महत्वपूर्ण है। वास्तव मे सगीत सम्मेलन ही एक ऐसा आयोजन है जो जातीयता, प्रान्तीयता आदि की भावनाओं से परे है। कलाकर की कोई विशिष्ट जाति नहीं होती, वह तो मुख्यत

कलाकार ही जाना जाता है। सगीत सम्मेलन मे बगाल का कलाकार हो या मद्रास का चाहे महाराष्ट्र का हो या उत्तर प्रदेश का उसे उसकी कला का यथोचित सम्मान समान रूपेण ही मिलता है। अत इस प्रकार के सागीतिक सम्मेलनो से राष्ट्र की एकता में वृद्धि होती है। इनके माध्यम से जन सामान्य को शास्त्रीय सगीत की वास्तविकता से परिचित कराया जा सकता है ताकि वे उसके महत्व को समझ सके। वास्तव मे जनता के अतिरिक्त कलाकारो को भी अपने सगीत और साधना के परिचय का स्वर्णिम अवसर संगीत सम्मेलनो मे ही प्राप्त होता है। किन्तु इस सदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि शास्त्रीय सगीतज्ञो को अपनी कला प्रदर्शन का मूल ध्येय आर्थिकोपार्जन ही नहीं होना चाहिए। इसके साथ ही संगीत कार्यक्रम के आयोजको की सगीत के ज्ञान की अपेक्षा रखी जाती है। इसके कार्यक्रमो मे राजनीति दलबदी का समावेश कदापि न होना चाहिए। सगीत सम्मेलन आज जनता के लिय जरूरी सा हो गया है। जिसमे यदि पूर्वाग्रहो से दूर रहा जाय तो गायन, वादन और नृत्य की त्रिवेणी मे प्रत्येक जन अवगाहन कर सकेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शास्त्रीय सगीत की महत्ता सभ्यता के आदिकाल से ही रही है, जिसका विभिन्न युगो में विकास होता रहा है, और अद्यावधि भी इसकी महत्ता व उपयोगिता तद्वत ही है। शास्त्रीय सगीत ही वास्तविक सगीत है जिससे हार्दिक रसानुभूति होती है। सत्यम, शिवम् सुन्दरम की भावनाक साक्षात्कार होता है। वास्तव मे यह एक ऐसा आगाध, असीम सागर है जिसमे जितना ही अवगाहन होगा, जितना ही डूबेगे उतने ही मोती हमे प्राप्त होगे। अत शास्त्रीय सगीत की महत्ता निरापद है, सार्वयुगीन है।

शास्त्रीय एवं प्रायोगात्मक संगीत का सम्बन्ध :-

प्रत्येक कला के दो मुख्य पक्ष होते हैं शास्त्रीय पक्ष और दूसरा क्रियात्मक या प्रयोगात्मक पक्ष। वास्तव मे जो संगीत स्वर, ताल, राग, लय, इत्यादि के नियमो से बांधकर तथा आकर्षक रीति से गाया अथवा बजाया जाता है, वही शास्त्रीय सगीत कहलाता है। लोक सगीत का तो कोई शास्त्र नहीं होता परन्तु शास्त्रीय सगीत का एक नियमित शास्त्र होता है तथा उसी शास्त्र के अनुसार गायन अथवा वादन होता है। नियमित शास्त्र के अनुसार ही इसे गाने या बजाते हैं। इसलिए इसे शास्त्रीय सगीत कहकर पुकारा जाता है। शास्त्रीय संगीत मे राग के नियमो का पालन करना ही पडता है न करने से हानि होती है। इसके अतिरिक्त लय ताल की सीमा मे रहना पडता है।

शास्त्रीय पक्ष के अन्तर्गत उनके नियमो, पारिभाषिक शब्दों आदि का अध्ययन होता है। चूकि सगीत भी एक कला है अत इसके भी दो भेद होते हैं। शास्त्रीय एव प्रायोगात्मक शास्त्र पक्ष को ही सैद्धान्तिक भी कहा जाता है और प्रयोगात्मक को क्रियात्मक या व्यावहारिक पक्ष के नाम से अभिहित करते हैं।

शास्त्रीय- सैद्धान्तिक संगीत :-

इसके अर्न्तगत संगीत का सम्पूर्ण शास्त्र आ जाता है। इसमें सगीत के पारिभाषिक शब्द जैसे - नाद, श्रुति, स्वर, सप्तक, थाट, राग, ग्राम, मूर्च्छना, गमक, तान आलाप इत्यादि आते हैं। इसके साथ ही शुद्ध शास्त्र मे सगीत जाति, आरोह, अवरोह, स्वर, लय, मात्र, ताली-खाली, आदि की परिभाषा सगीत का इतिहास आदि भी समाहित होता है।

शास्त्रीय पक्ष में भी क्रियात्मक शास्त्र और शुद्ध शास्त्र दो भेद होते हैं।

क्रियात्मक शास्त्र मे क्रियात्मक सगीत का अध्ययन किया जाता है जैसे - रागो का परिचय, गीत की स्वर लिपि, लिखना, तान-आलाप, ताल, टुकडा, रेला, मिलते-जुलते रागो की तुलना आदि। इस शास्त्र से क्रियात्मक संगीत मे बडी सहायता मिलती है। शास्त्रीय सगीत का सैद्धांतिक पक्ष लिखित होता है और अनेक नियमो से बधा होने के कारण बहुत विस्तृत भी।

व्यावहारिक या प्रयोगात्मक पक्ष :-

जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत का सैद्धांतिक पक्ष काफी विकसित है उसी प्रकार उसका व्यावहारिक या प्रयोगात्मक अग भी काफी प्रबल है। कला का मूल उद्देश्य उसकी अभिव्यक्ति करना होता है, उसे भली भांति व्यक्त करना होता है और विशेषकर सगीत तो एक ऐसी कला है जिसका प्रत्यक्ष मे ही व्यवहार होता है। दूसरे शब्दो मे सगीत का प्रयोगात्मक पक्ष वह है जिसे हम कानो द्वारा सुनते हैं अथवा आंखो द्वारा देखते हैं। तात्पर्य यह है कि इसके अन्तर्गत गाना, बजाना और नृत्य करना आता है। गायन और वादन को हम श्रवण करते हैं जबकि नृत्य को देखते हैं। क्रियात्मक रूप में राग, गीत के प्रकार, आलाप-तान, सरगम, झाला, रेला, टुकडा, आमद, मींड आदि की साधना आती है। सगीत का यह पक्ष काफी महत्वपूर्ण होता है।

शास्त्रीय सगीत के व्यावहारिक अंग में हम गायन के प्रकार, नृत्य अथवा वादन के प्रकार, गायकी, शैली, घराने, ध्वनि का उतार-चढ़ाव, आलापचारी, ताने इत्यादि को समावेशित करते हैं।

भारतीय रागो तथा गायन अथवा वादन शैलियो का क्षेत्र बहतुत बडा है। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि शास्त्रीय सगीत का व्यावहारिक या प्रयोगात्मक अंग अधिक प्रबल है। प्राचीन समय मे सगीतज्ञ उतना पढे-लिखे नहीं हुआ करते थे।

अत सगीत के व्यावहारिक अग की ओर विशेष ध्यान दिया करते थे।

जहा तक सगीत के दोनो पक्षों मे सम्बन्ध का प्रश्न है कह सकते हैं कि शास्त्रीय और प्रयोगात्मक दोनों ही एक सिक्के के दो पहलू हैं। तात्पर्य यह है कि प्रयोगात्मक सगीत एव शास्त्रीय सिद्धांतो में आविधिन्न सम्बन्ध है। किसी भी वस्तु का व्यावहारिक ज्ञान तभी सही ढग से हो सकता है जब हम उसके सम्बन्ध मे उसकी उत्पत्ति प्राचीनता, स्वरूप एव्र विकास इत्यादि की भी जानकारी रखे, और तदुपरात उसे प्रयोग मे लाया जाय। इस दृष्टि से सगीत के भी शास्त्रीय पक्ष का उतना ही महत्व है जितना कि उसके प्रयोगात्मक पक्ष का। वस्तुत प्रयोगात्मक प्रक्रिया सिद्धातो को कसौटी मे कसने का जरिया होती है। उसका अमल किस रूप में भली भांति किया जाय ताकि वह चित्ताकर्षक और कल्याणकारी हो। अत संगीत के क्षेत्र मे उसके विभिन्न शास्त्रीय सिद्धांतो व नियमोपनियमो को कार्य रूप में परिणत करने हेतु उन्हें प्रयोग में लाया जाता है। इसके दोनो पक्षो को ही जानकारी अत्यावश्यक हो जाती है।

जिस प्रकार एक शास्त्रीय नृत्यांगना की नर्तन कला, उसके हाव भाव, बारीकियो का यदि दर्शक को अच्छी तरह से ज्ञान होता है तो वह उसका यथेष्ट व समुचित मूल्यांकन कर सकता है। अन्यथा एक सामान्य दर्शक भले ही उससे कुछ न कुछ आनद प्राप्त करता है परन्तु पूर्ण संतुष्टि नहीं प्राप्त हो पाती। अत· स्पष्ट है जब सगीत के महत्वपूर्ण नियमों सिद्धांतों का हमें ज्ञान होगा तो हम उसको प्रयोग मे लायेगे और एक विशिष्ट लाभ व आनंद की प्राप्ति कर सकेंगे। इस प्रकार शास्त्रीय एवं प्रयोगात्मक संगीत के उभयपक्षो मे गहरा सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। ऋतु व मौसम के अनुरूप सगीत का प्रयोग करने का आनंद ही कुछ और होता है। भरे-पूरे बादलो,

वर्षा, बूंदो की झड़ी हो रही हो और सावन के गीत गाये जायें मल्हार राग का प्रयोग किया जाय तो उसका आनद विशेष ही होगा। इसी प्रकार बसत मे बहार - बसत गया जाय, होली के अवसर पर होली गीत गाये जाय तो उसकी बात कुछ निराली होगी। यही बात विभिन्न वाद्यो के सम्बन्ध में भी लागू होती है। राग-रागनियो के बारे में भी लागू होती है।

शास्त्रीय संगीत के प्रमुख तत्वों का उभय पक्षीय विवेचन :-

इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के स्वर, लय, ताल, तानो का व्यावहारिक प्रयोग किया जाना चाहिए। शास्त्रीय सगीत के अन्तर्गत कतिपय महत्वपूर्ण तत्वो की विवेचना इस सदर्भ मे अप्रसागिक न होगी। सामान्यत. हम जो कुछ भी सुनते है उसे ध्वनि या आवाज कहा जाता है। किन्तु संगीत का सम्बन्ध केवल उस ध्वनि से है जो मधुर हो, कर्णप्रिय हो। सगीत शास्त्र मे मधुर ध्वनि को ही नाद सज्ञा से अभिहित किया जाता है। ध्वनि की उत्पत्ति के लिये हमें प्रयोगात्मक पक्ष पर ध्यान देना होता है जिसके आधार पर ही हम अनुभव करके कहते हैं कि किसी भी ध्वनि की उत्पत्ति कम्पन से होती है। जब किसी वाद्य को बजाते हैं तो उसमें कम्पन होता है और ध्वनि की उत्पत्ति होती है। उदाहरणार्थ सितार अथवा बेला मे तार के कम्पन से, ढोलक, तबला और पखावज में चमड़े के कम्पन से तथा बांसुरी और शहनाई मे हवा के कम्पन से ध्वनि उत्पन्न होती है, संगीत शास्त्र मे इस प्रक्रिया को ही आंदोलन कहा जाता है।

प्रयोग के आधार पर यह ज्ञात होता है कि तार पहले ऊपर जाकर अपने स्थान पर आता है, इस प्रकार एक आदोलन पूरा होता है जब तक तार छेड़ने का प्रभाव रहता है, तार आंदोलित रहता है और आवाज होती रहती है। जैसे जैसे

तार पर छेड़ने का प्रभाव कम होता जाता है, आवाज भी कम होती है जाती है। वैज्ञानिको ने आंदोलन की संख्या को नापने का प्रयास किया है, इस आधार पर उन्होने यह निष्कर्ष निकाला है कि जैसे जैसे हम स्वर के ऊपर बढ़ते जाते हैं, स्वरों की आदोलन सख्या में भी प्रति सेकेण्ड वृद्धि होती जाती है और जैसे-जैसे 'सा' से नीचे की ओर चलते हैं, स्वरों का आंदोलन संख्या मे न्यूनता होती जाती है।

सगीत में नियमित और स्थिर आंदोलन वाली ध्वनि का प्रयोग किया जाता है, जिसे नाद कहा जाता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि जो शास्त्रीय सगीत के सिद्धांत है, वही प्रयोगात्मक सगीत में व्यावहारिक रूप ग्रहण करते है, फलतः दोनो मे पारस्परिक सम्बन्ध को उजागर भी कर देते हैं। शास्त्रीय संगीत मे नाद की तीन विशेषताएं मानी गयी है, नाद की लघुता अथवा दीर्घता, ऊंचाई तथा निचाई एवं नाद की जाति अथवा नादवैशिष्ट्य गुण। धीरे से उत्पन्न की गयी ध्वनि ही छोटा नाद तथा जोर से उत्पन्न की गयी ध्वनि बड़ा नाद कहलाती है। छोटे और बड़े नाद में स्वर एक रहता है किन्तु दोनो मे अन्तर इतना ही है कि छोटे नाद की ध्वनि थोड़ी दूर तक सुनाई देती है जबकि बड़े नाद की अधिक दूर तक यही बात प्रत्येक वाद्य यंत्रो के लिये लागू होती है। मंद एवं तीव्र वादन के मुताबिक आवाज की दूरी का भी अतराल निर्धारित होता है। इसके साथ ही नाद की उच्चता तथा निम्नता के सम्बन्ध में गाते बजाते समय यह आभास होता है कि 'सा' से ऊचा 'रे' ,'रे' से ऊचा 'ग', 'ग' से ऊंचा 'म', 'म' से ऊचा 'प', 'प' से ऊंचा 'ध' रहता है। इसी तरह ऊपर बढ़ते जाने पर स्वर भी ऊंचा होता जाता है। वस्तुतः नाद की उच्चता व निम्नता उसकी आदोलन सख्या पर निर्धारित होती है। 'प' की आंदोलन सख्या 'ग' से ज्यादा होगी और 'सा' की 'ग' से कम होगी क्योंकि सा से ऊचा 'ग' और 'ग' से ऊचा 'प' होता है।

वैज्ञानिको के मतानुसार कोई भी नाद अकेला नहीं उत्पन्न होता। सहायक नादो की सख्या तथा उनकी जोरदारी प्रत्येक वाद्य मे अलग-अलग होती है। यही कारण है कि बेला का स्वर सितार से, सितार का सारगी से, सारंगी का तबले से तथा हारमोनियम का स्वर सरोद के स्वर से पृथक होता है। इस प्रक्रिया को नाद की जाति अथवा गुण कहा जाता है। नाद की जाति के कारण ही हम विभिन्न वाद्यो की ध्वनियो के अन्तर को समझ लेते हैं। सगीत शास्त्रीय विद्वानो की धारणा है कि अधिकतम बाईस नाद (स्वर) सगीत मे प्रयुक्त किये जा सकते हैं, जिन्हे 'श्रुति' कहा जाता है। दो नादो के बीच के अन्तराल को स्पष्ट करने वाली ही श्रुति कहलाती है। तेइसवीं श्रुति से द्वितीय सप्तक की शुरूआत हो जाती है। इस प्रकार प्रयोगात्मक सगीत से ही स्पष्ट हुआ है कि प्रत्येक श्रुति नाद है किन्तु प्रत्येक नाद श्रुति नहीं, केवल 22 नाद ही श्रुति कहे जाते हैं।

बाईस श्रुतियों में से चुनी गयी सात श्रुतियां जो एक दूसरे से कुछ अन्तर पर है तथा जो सुनने मे मधुर है, स्वर कहलाती हैं। इनके नाम हैं - षडज्, ऋषभ, गधार, मध्यम, पचम, धैवत, और निषाद। इन्हीं स्वरो के प्रथम अक्षर को प्रयोग मे लाते हैं - सार, रे, ग, म, प, ध, नि,

स्वरो के दो उपभेद होते हैं - (1) शुद्ध या प्राकृत (2) चल या विकृत स्वर। निश्चित स्थान पर रहने पर शुद्ध कहे जाते हैं। जबकि अपने नियत स्थान से थोडा उतर जाने पर विकृत स्वर कहे जाते हैं। सप्तस्वरो में केवल षडज् और पचम स्वरो को छोड़कर शेष पाच स्वर विकृत हैं। इनके भी कोमल और तीव्र विकृत उपभेद होते हैं। इस प्रकार एक सप्तक मे सात शुद्ध चार कोमल और एक तीव्र

कुल मिलाकर 12 स्वर होते हैं - (1) सा (2) कोमल- रे (3) शुद्ध -रे (4) कोमल -ग (5) शुद्ध- ग (6) शुद्ध - म (7) तीव्र -म (8) प (9) कोमल -ध (10) शुद्ध- ध (11) कोमल - नि (12) शुद्ध -नि ।
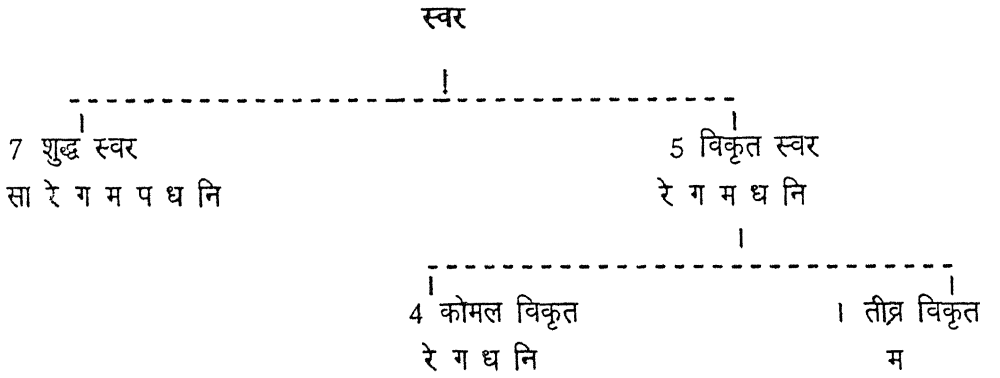
शास्त्रकारो द्वारा श्रुति-स्वर विभाजन इस सिद्धांत के अनुसार किया गया है षडज्, मध्यम और पंचम स्वरों में चार-चार श्रुतिया, निषाद और गाधार में दो-दो श्रुतियां तथा ऋषभ और धैवत में तीन तीन श्रुतियां होती हैं।[1]

प्राचीन एवं आधुनिक दोनों ही ग्रन्थकारों ने इस सिद्धांत को मान्यता दी है। प्रयोगात्मक दृष्टि से इसका विवरण इस प्रकार है - चौथी पर 'सा', सातवीं पर 'रे', नवीं पर 'ग', तेरहवीं पर 'म', सत्राहवीं पर 'प', बीसवीं पर 'ध', तथा बाईसवी पर 'नि'। आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार पहली पर 'सा', पांचवी पर 'रे', आठवीं पर 'ग', दसवीं पर 'म', चौदहवीं पर 'प', अठारहवी पर 'ध' तथा इक्कीसवी पर 'नि' ।

---

1. चतुश्चतुश्चतु चैव षडज् माध्यम पंचमा ।
   द्वे द्वे निषाद गांधारो त्रिस्त्री ऋवभ धैवतो ।।

सप्तस्वरो के समूह 'सप्तक' के मुख्य तीन रूप शास्त्रो में वर्णित है- मंद्र, मन्ध्य, तार। मन्द्र अर्थात् साधारण आवाज से दुगनी नीची आवाज -मन्द्र सप्तक की है। मध्य अर्थात् जो आवाज न अधिक नीची होती है और ऊंची। उदाहरणार्थ- अगर मध्य 'प' की आन्दोलन 360 है तो मन्द्र 'प' की 360 की आधी 180 होगी, इसी प्रकार अगर मध्य 'म' की आन्दोलन 320 है तो मन्द्र 'म' की आंदोलन 320 की आधी 1_0 होगी। तार अर्थात् मध्य सप्तक से दुगनी ऊंची आवाज को तार सप्तक की ध्वनि कहते हैं। प्रयोग मे लाने पर स्पष्ट होता है कि इसके स्वरों के उच्चारण में हमारे तालु अथवा मस्तक पर प्रभाव पड़ता है।

प्रयोगात्मक सगीत से स्पष्ट होता है कि यदि मध्य सप्तक के 'रे' की आंदोलन संख्या 270 है तो तार 'रे' की आन्दोलन 270 की दोगुनी 540 होगी।

इस प्रकार शास्त्रीय एवं प्रयोगात्मक दोनो ही दृष्टियो का संगीत विद्या में उपयोग होता है।

सप्तक के 12 स्वरों में से क्रमानुसार 7 मुख्य स्वरों के समुदाय को 'थाट' कहा जाता है जिनसे रागों की उत्पत्ति होती है। थाट को मेल भी कहा जाता है। अभिनव राग मजरी के अनुसार राग उत्पन्न करने की शक्ति को थाट या मेल कहते हैं।[1]

थाट व आलाप परिचय :-

थाट में सात स्वर क्रमानुसार होते हैं आरोह - अवरोह का होना अनिवार्य नही है। थाट को राग का जनक भी कहते हैं। यह गाया नहीं जाता। हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति में 10 थाट माने गये हैं जिनसे विभिन्न रागो का उद्भव हुआ है-

---

1. मेल स्वर समूह स्याद्राग व्यंजन शक्तिमान अभि0 राग मजरी ।

1. विलावत थाट - सा रे ग म प ध नि (शुद्ध स्वर)
2. कल्याण (यमन) - केवल 'म' तीव्र और अन्य शुद्ध स्वर
3. खमाज - नी कोमल और अन्य शुद्ध स्वर
4. आसावरी - म ध नी कोमल शुद्ध स्वर
5. काफी- ग, नी कोमल शेष वही
6. भैरवी - रे ग ध नी कोमल शेष वही
7. भैरव- रे, ध कोमल शेष वही
8. मारवा - रे, कोमल, मध्यम तीव्र तथा शेष शुद्ध स्वर
9. पूर्वी - रे, ध, कोमल, म तीव्र और शुद्ध स्वर
10. तोड़ी- रे ग ध कोमल, म तीव्र और शेष शुद्ध स्वर

गाने एवं बजाने में होने वाली विभिन्न क्रियाओं को वर्ण कहा जाता है, जिसके स्थायी, आरोह, अवरोही, संचारी भेद होते हैं। इसी प्रकार शास्त्रो में राग के संदर्भ में कहा गया है। कि कम से कम पांच और अधिक से अधिक सात स्वरो की कर्ण प्रिय सुमधुर रचना 'राग' कहलाती है।[1] प्राचीनकाल में राग के दस लक्षण मान्य थे - ग्रह, अंश, न्यास, उपन्यास, औडत्व, पाण्डव, अल्पत्व, बहुत्व, मन्द्र और तार। आधुनिक समय मे राग के नियम व लक्षण है, राग की थाट से उत्पत्ति का होना, कम से कम 5 स्वर, आरोह अवरोह का होना, वादी संवादी स्वरो का राग मे होना रंजकता, षड्ज स्वर का आधारत्व, रसात्मक अभिव्यक्ति इत्यादि। रागो की प्रमुख तीन जातियां हैं -

---

1. योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषित. ।
रंजको जनचिन्तानां स राग· कवितोबुधै ।। अभिनव राग मंजरी ।

(1) सम्पूर्ण - सप्त स्वर युक्त यथा राग विलावल (2) षाडव - 6 स्वर युक्त जैसे राग मारवा (3) आडव - 5 स्वर युक्त सत्रजाति जैसे राग भूपाली। इनमें भी प्रत्येक की तीन-तीन उपजातिया होती हैं।

संगीत शास्त्र में कुछ विशिष्ट नियमो से बधे हुए स्वर समुदाय अलकार या पल्टा कहे जाते हैं। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं -

आरोह- सा, सा, रे रे, ग म, म म, प प, ध ध, नि नि, सा सा,

अवरोह- सा सा, नि नि, ध ध, प प, म म, ग ग, रे रे, सा सा

आरोह- सा रे सा, रे ग रे, ग म ग, म प म, प ध प, ध नि ध, नि सा नि

अवरोह- सां नि सां, नि ध नि, ध प ध, प म प, म ग म, ग रे ग, रे सा रे

इसी प्रकार अनेक अलकार बनाये जा सकते हैं। इनका रागो की सौन्दर्यवृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

किसी राग के स्वरों का उसके वादी, संवादी तथा विशेष स्वरो को दिखलाते हुए विस्तार करना, साथ में उसे वर्ण, गमक, अलकार आदि से आभूषित करना, उस राग का आलाप कहलाता है। राग का स्वरूप स्पष्ट करने हेतु उसके स्वरों को सजा-सजा कर धीमी लय में उसका आलाप करते हैं। आलाप भाव प्रधान होते हैं। आधुनिक समय में गीत के पूर्व आलाप गायन का बहुत महत्व है। इसके चार विभाग हैं, स्थायी अन्तरा, सचारी और आभोग।

यदि आलापों को द्रुतलय में गाया अथवा बजाया जाय तो वे ही तान कहलाती है। तानों के लिये अभ्यास की जरूरत ज्यादा पड़ती है। इनमें वर्ज्यावर्ज्य स्वरों का ध्यान रखना पड़ता है। तानो मे लय का महत्व अधिक है इसलिए दुगुन, तिगुन,

चौगुन, अठगुन आदि विभिन्न लयो में ताने ली जाती हैं। तानो के त्रिभेदो मे शुद्ध या सपाट तान कूट तान, मिश्र तान उल्लेखनीय हैं। राग की पकड बारम्बार कहकर राग के स्वरूप को श्रोताओं के समक्ष रखा जाता है यथा- राग खमाज की पकड़- नि, ध म प ध म ग यही पकड़ है। इसी प्रकार स्वर, गमक, खटका, मुर्की, कपन मीड, ग्रह, अश, न्यास स्वर, इत्यादि अनेक सागीतिक पारिभाषिक शब्द हैं, जिनका शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत उल्लेख किया जाता है। रागो के विभिन्न स्वरूप होते हैं यथा - आश्रय राग, पूर्वराग, उत्तरराग, संधि प्रकाश (रात दिन की संधि बेला में गेय) राग इत्यादि।

कुछ तालों का प्रयोगात्मक विवरण :-

भातखंडे पद्धति के अनुसार तालो में प्रयोग होने वाले चिन्ह हैं (×) सम, (C) खाली, S अवग्रह, धागे - अर्थात् एक मात्रा मे दो बोल, धागेतिट - एक मात्रा मे चार बोल, तालियो के स्थान पर तालो की सख्या। कहरवा में ताल में चार मात्राएं होती है, एक विभाग होता है और पहली मात्रा पर सम होता है यथा -

मात्रा	-	1	2	3	4
बोल	-	धागि	नति	नक	धिन
ताल	-	×			

कुछ लोगो के अनुसार इस ताल मे 8 मात्रामे होती हैं -

मात्रा	-	1, 2	3 4	5 6	7 8
बोल	-	धा गि	न ति	न क	धि न
ताल	-	×	2	0	3

ताल -दादरा में 3-3 मात्राओं पर विभाग होते हैं। कुल दो विभाग होते हैं जिनमे एक ताली और एक खाली होती है पहली मात्रा पर सम तथा चौथी मात्रा पर खाली,

मात्रा -	1, 2, 3,	4, 5, 6
बोल-	धा धी ना	धा ती ना
ताल-	×	

कुछ सगीतज्ञो की दृष्टि मे इसके बोल निम्नवत् हैं -

मात्रा-	1, 3, 2,	4, 5, 6
बोल -	धी धी ना	ती ती ना
ताल -	×	

तीन ताल अथवा त्रिताल में 16 मात्राए होती हैं। 4-4 मात्राओं के 4 विभाग होते हैं जिनमे 3 ताली और खाली होती है। पहली मात्रा पर सम, नौंवी मात्रा पर खाली तथा पांचवीं व तेरहवीं मात्राओ पर तालियां पडती हैं -

मात्रा -	1, 2, 3, 4,	5 6 7 8	9 10 11 12	13 14 15 16
बोल -	धा धि धि ध	धा धि धि धा	धा ति ति ता	ता धि धि धा
ताल -	1	2	0	3

अन्य मतानुसार -

मात्रा-	1 2 3 4	5 6 7 8	9 10 11 12	13 14 15 16
बोल-	ना धि धि ना	ना धि धि ना	ना ति ति ना	ना धि धिं ना

किसी भी ताल को विभिन्न लयो मे कह या लिख सकते हैं। जैसे - झपताल के एक आवर्तन में ही उसके बोल दो बार कहना दुगुन या दून या दून कहलाते है -

मात्रा-	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
बोल-	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना
ताल -	×		2			0		2		

इसी प्रकार झप ताल के एक भावर्तन मे ही उसके बोल तीन या चार बार कहना या लिखना तिगुन या चौगुन की लय कहलाती है।

मात्रा -	1	2	3	4	5
बोल-	धीनाधी	धीनाती	नाधीधी	नाधीना	धाधीना
ताल -	×		2		

6	7	8	9	10
तीनाधी	धीनाधी	नाधीधी	नातीना	धीधीना
0		3		

कतिपय रागों का प्रयोगात्मक विवरण :-

'क्लयाण' राग में मध्यम, तीव्र तथा बाकी सब स्वर शुद्ध लगते हैं। इसको मुस्लिम युग मे राग ईमन या यमन कहा जाने लगा। कभी-कभी इस राग में शुद्ध माध्यम की प्रयोग किया जाता है तब इस 'यमन-कल्याण' कहा जाता है जैस - नि रे ग, म ग, रे ग, रे सा। इस राग में करूण रस की प्रधानता है। गान्धार स्वर वादी होने से यह पूर्वागवादी है। पूर्वांग मे आरोह करते हुए प्राय· 'सा' को छोडकर 'निरेग' कहत हैं तथा उत्तरांग के स्वर कहते हुए 'प' स्वर को छोडकर 'म ध नि सा' कहते हैं।

थाट- कल्याण जाति सम्पूर्ण

वादी- गाधार सवादी निषाद

समय- रात्रि का प्रथम प्रहर

आरोह- सा रे ग म प ध नि सा ।

अवरोह- सा नि ध प म ग रे सा ।

पकड़- नि रे ग रे, सा, प म ग, रे, सा

स्वर विस्तार की दृष्टि से प्रयोगात्मक विवेचन इस प्रकार है -

1. नि रे, सा, नि रे ग, रे सा, नि, ध नि रे ग, ग रे, नि रे, सा ।
2. नि रे ग, रे सा, नि रे, सा, नि ध, रि रे ग, रे नि, रे,
   सा, नि, ध, प, म, ध, नि, रे, ग, ग, रे, नि, रे सा।
3. म, रे, सा, ध नि रे ग, रे ग म ग, प, म, ग, रे ग रे, नि रे, सा
4. नि, रे ग म प, म ध प, म ग, म ध, नि ध प, म ध, सां,
   नि ध प, म ग, रे ग, रे नि ने सा।
5. ग, म ध नि सां, नि रे सा, नि रे ग, रे, सा, नि ध, नि ध
   प, म ग, रे ग, रे सा, नि रे सा ।

राग - विलावल[1]

थाट- विलावल जाति सपूर्ण

वादी- **धैवत** सवादी गाधार

समय- दिन का प्रथम पहर

आरोह- सा रे ग म प ध नि सा ।

अवरोह- सा नि ध प म ग रे सा ।

पकड- ग म रे, ग प, ध, नि सा ।

---

1. बिलावल लक्षण - मृदु मध्यम तीवर सबही सुर सोहत जेहि माहि।
   ध ग वादी सवादि है कहत विलावल ताहि।।

बिलावल राग मे सब स्वर शुद्ध लगते हैं। इस राग मे गान्धार तथा निषाद स्वरो का प्रयोग वक्र होता है। जैसे -

' ग म रे ग प' या ' ग म रे सा' तथा नि ध मा'

जब इस राग के अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग धैवत स्वर के सहारे होता है जैसे - सा, नि ध नि ध प अथवा 'सां नि धं प ध नि ध प, तब यह राग अल्हैया बिलावल कहलाता है जो अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित है। इसका आरोह-अवरोह है- सा, रे, गरे, गप, ध, नि, ध नि सां,। सा निध,प, ध नि, म ग, म रे सा, पकड- ध नि ध प, ध ग, म रे सा ।

स्वर विस्तार -

1 सा रे, सा ग रे, सा, नि ध, प ध सा, ग रे ग, प, म ग म, रे सा ।

2. सा ग रे ग र म ग, म रे, ग प, ध प म ग, म रे, ग, म प, म ग, म रे सा ।

3 सा रे ग म रे, सा ग रे, ग प ध प, म ग, रे ग प, ध नि, सां, सा ध प, म ग, म, रे, सा ।

4. (कोमल निषाद के साथ) ग प ध नि, सा, सा, नि ध, नि ध प, ध ग, रे ग प, ध नि, ध प, म ग रे, ग प, ध नि, सा, रे, सा, ध नि ध प, म ग, म रे सा ।

5 प, प, ध नि सा, रे सा, ग म रे, सा, ध नि, ध प, ध ग प, ग ग, म,रे, ग प ध नि, रे सा, ध प, ध नि, ध प म ग, म रे, सा ।

राग काफी - था - बिलावल जाति सम्पूर्ण

स्वर - ग और नि कोमल बाकी स्वर शुद्ध

वादी सवादी - प स, विस्तार सप्तक - मध्य व तार

राग की प्रकृति - चचल, गाने का समय - रात्रि का

द्वितीय प्रहर - आरोह सा रे ग म प ध नि सां, अवरोह - सा नि ध प म ग रे सां,

पकड - सासा, रेरे, गग मम प,

कभी कभी इस राग में जब शुद्ध ग और नि का प्रयोग करते हैं तब इसे मिश्रकाफी कहते हैं।

आसावरी राग -

थाट - आसावरी। जाति - औडव सपूर्ण आरोह में ग, नि वर्जित। ग, ध नि स्वर कोमल, वादी संवादी स्वर ध ग, विस्तार सप्तक - मध्य व तार, राग की प्रकृति शान्त, गायन- समय - द्वितीय पहर (दिन का) आरोहखरोह - सा रे ग म प ध सा, सा नि ध प म ग रे सा। पकड़ - म प, ध म प, ग रे सा, इस राग मे म प ध म प, ग रे सा, वह स्वर समूह बार-बार लिया जाता है। प ग की संगति होती है।

राग पूर्वी -

थाट पूवी - जाति -सपूर्ण, स्वर - रे ध कोमल, दो मध्यम वादी, संवादी स्वर ग नि, विस्तार सप्तक - मध्य व तार, राग प्रकृति - गम्भीर, समय- शाम का संधि प्रकाश। आरोहखरोह - सा रे ग म प ध नि, सा सां नि ध प म ग रे सा पकड- नि सा रे गा म, ग म, ग, रे ग, रे. इस राग मे दोनो मध्यम लगते हैं जैसे- प म ग म ग अथवा प म ग म ग रे म ग । इसके विशेष स्वर सा, ग, प और नि है।

राग वागेश्वरी -

थाट - काफी, जाति - पाडव सम्पूर्ण स्वर - ग नि, कोमल शेष स्वर शुद्ध, वादी सवादी स्वर म सा, विस्तार सप्तक - मन्द्र व मध्य, राग की प्रकृति - गम्भीर, समय- रात्रि का दूसरा प्रहर (मध्यरात्रि) आरोहखरोह - सा नि ध नि सां म ग म ध नि सा। सा नि ध म, ग, म, ग रे सा। पकड- सा नि ध सा, म ध नि ध, म ग रे सा। इसकी

तबले का शास्त्रीय एवं प्रयोगात्मक परिचय :-

तबले के दस वर्ण या बोल होते हैं जो धा, धिन, ते रे, तिन, ना, क, धी ता, कि, कत्त कहे जाते हैं।[1]

1. दाहिने तबले पर निकलने वाले दाहिने हाथ के बोल हैं -ता, ते, टे, तेरे, ना, किट, ति, दिं, तुन
2. बाये (डिग्गा) पर निकलने वाले बायें हाथ के बोल हैं - घे, घन, क, कत्त किन ।
3. दोनो तबलो पर एक साथ निकलने वाले दोनो हाथो के मिश्रित बोल - धा, धिन्ना, कधान, गिन, त्रिक, किट तक, किड़ नग, गिद, किड़ान इत्यादि।

उक्त बोलों को भली भांति सुयोग्य उस्ताद से सीखना चाहिए, तभी वास्तविक प्रयोग सफल होगा। तबला वादन हेतु उपयुक्त आसन भी अपेक्षित है वीरासन इस सदर्भ में अधिक उपयुक्त होता है। तबले पर हाथ रखने की भी शैली का ध्यान रखना आवश्यक है।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार उपर्युक्त सिंहावलोकन से स्पष्ट होता है कि शास्त्रीय सम्बन्ध होता है। शास्त्रानुकूल नियमों सिद्धातो के अनुसार ही गायन वादन एवं नृत्य का समायोजन अधिक प्रभावी सिद्ध होता है। विभिन्न रागों, तालों, सुरसंगति, वाद्ययन्त्रों के अभ्यास से ही शास्त्रीय संगीत में निखार आता है। यदि सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक अथवा क्रियात्मक दोनो ही पक्षों पर ध्यान दिया जाय तो निसंदेह शास्त्रीय सगीत के प्रति जनसामान्य की अभिरूचि जाग्रत और विकसित होगी। इस कार्य के लिये काफी परिश्रम व सच्ची निष्ठा की आवश्यकता है।

---

1. ध धिन तेरे तिन ना क धी, ता किन, कत्त, विचारि
   तबले के दस बोल ये, इनको लेव सुधारि

संगीत एवं शास्त्रीय संगीत में भेद :-

सगीत एक ऐसी ललित कला है जिसमें स्वर और लय के द्वारा हम अपने भावो को प्रकट करते हैं। स का अर्थ होता है उत्तम (सम्यक) गीत का अर्थ होता है, गायन अथवा गेय वस्तु। तात्पर्य यह हुआ कि उत्तम गायन को ही संगीत कहते हैं।

तात्पर्य बोध :-

सामान्य बोल चाल की भाषा मे सगीत से गायन का तात्पर्य समझा जाता है किन्तु सगीत मे गायन वादन और नृत्य तीनो के समावेशित स्वरूप को सगीत से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार सगीत के तीन प्रमुख अग हुए- गायन, वादन और नृत्य आचार्य शारंग देव के अनुसार, गायन, वादन (बजाना) और नृत्य (नाचना) इन तीनों के सम्मिलित स्वरूप को ही संगीत कहते हैं।[1] पाश्चात्य देशो मे सगीत के अन्तर्गत केवल गायन, वादन को रखा जाता है जबकि नृत्य को नहीं। परन्तु भारतीय सगीत मे इन तीनो कलाओं का संयोग होता है और उन्हे एक दूसरे से अलग नहीं रखा जा सकता। वास्तव में यदि केवल नृत्य हो रहा हो और उसके साथ वाद्य न बज रहे हो तो नृत्य मे पूर्ण आनंद की अनुभूति नहीं होती। अर्थात् ये कलाये परस्पर सह सम्बद्ध है। आश्रित है तीनो ही एक दूसरे की पूर्ति करते हैं। गायन, वादन और नृत्य को, वादन गायन और नृत्य को और नृत्य गायन और वादन की सहायता करता है।

---

1 गीत वाद्य तथा नृत्यं त्रय सगीत मुर्च्यत - सगीत रत्नाकर ।

गाते बजाते समय भाव प्रदर्शनार्थ हांथो की गतिशीलता, गाते समय मुखाकृति मे किंचित प्रसांगिक परिवर्तन इत्यादि नृत्य की व्यापकता को द्योतित करते हैं। हलांकि 'गायन' इन तीनो में ही श्रेष्ठ है क्योंकि गायन के अधीन वादन है और वादन के अधीन नृत्य है जैसा कि संगीतरत्नाकर कार ने स्पष्ट किया है - नृत्यं वाद्यानुग प्रोक्त वाद्य गीतानुवर्त्तिव।.' सरांशत गाने, बजाने और नाचने की कला ही सगीत है।

प्रत्येक कला में जैसे सगीत, मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला। भावनाओं की अभिव्यक्ति ही परिलक्षित होती है परन्तु उनके स्वरूप व माध्यम में परिवर्तन होता रहता है जैसे - यदि पेंसिल, रग, कागज इत्यादि सामग्री के माध्यम से भावो को जब व्यक्त किया जाता है तो वह रचना चित्रकला कहलाती है। इसी प्रकार जब कोई शिल्पी या कारीगर अपने छेनी - हथौड़ी इत्यादि के माध्यम से तराशने की क्रिया द्वारा भव्य इमारतो, गुफाओं इत्यादि की सर्जना करता है तो वह कलात्मक प्रस्तुति 'वास्तु या स्थापत्य ललित कला के रूप मे अभिहित होती है। इसी प्रकार जब कलाकार (गायक या सगीतज्ञ) स्वर एवं लय के द्वारा अपने भावो को व्यक्त करता है तो सगीत की सर्जना होती है। वस्तुत. पच ललित कलाओ - सगीत, कविता, चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला मे सगीत का स्थान सर्वोपरि है। अनुश्रुति के अनुसार सर्वप्रथम प्रजापिता ब्रहमा ने सरस्वती को और सरस्वती ने नारद को संगीत की शिक्षा प्रदान की। तत्पश्चात् नारद ने भरत को और भरत ने 'नाटशास्त्र' द्वारा जन सामान्य सगीत का प्रचार प्रसार किया। सगीतोत्पत्ति के ऐसे अनुक मत-मतान्तर, किवदती के रूप मे मिलते हैं। वास्तविकता जो भी हो इतना तो निश्चित ही है कि संगीत चित्ताकर्षक भावव्यजक, हृदयानुरजक श्रेष्ठ ललित कला है।

सगीत का मुख्य आधार है 'नाद' अथवा आवाज इसीकारण इस कला को 'नादब्रहम' के रूप में भी प्रतिष्ठित किया गया है। वास्तव में सगीत स्वरो का

ऐसा सम्मिलित स्वरूप है जो कलाकार की हृदयगत भावनाओ को मधुर बनाता है और तदुपरात लोक-जगत मे प्रस्तुत करता है।

संगीत का ध्येय :-

इस सदर्भ में आंग्ल विज्ञान रस्किन का मत समीचीन कहा जा सकता है कि सगीत कला का मुख्य उद्देश्य अथवा ध्येय अन्तरात्मा का उत्थान तथा उसे कलात्मक व आनदमय स्वरूप प्रदान करना ही होना चाहिए। सगीत 'हृदय की भाषा' कही जाती है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी सगीत को सौन्दर्य का साकार एव सजीव प्रदर्शन माना है। इस कला सम्बन्ध प्राणिमात्र से है `जसके अर्न्तगत मानव के साथ ही पशु-पक्षी भी परिगणित किये जाते हैं। वस्तुत· सगीत अन्तस मे नवचेतना का संचार कर देने वाला अमृत रस है। इस कला से परम आनंद की सम्प्राप्ति होती है, परमात्मा-साक्षात्कार सम्भव हो जाता है। निराश मन को एक दु खी या संतप्त जन को अपूर्व शान्ति सुख और सतोष प्रदान करती है सगीत। वास्तव मे सत्यम्, शिवम, सुन्दरम का वास्तविक भान करा देने मे यह ललित कला सक्षम है। बशर्ते कि इसमें पैठ जाया जाय। इसी लिए कहा गया है कि साहित्य संगीत कला विहीनः, साक्षात पशु पुच्छ विषाण हीन· अर्थात साहित्य, सगीत और कला से विहीन व्यक्ति वास्तव मे पशु से भी बदतर है। इस प्रकार अन्य ललित कलाओ मे सगीत की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है।

प्रश्न है सगीत और शास्त्रीय सगीत से क्या तात्पर्य है, इसमे अन्तर क्या है। इस बात को समझने के लिए हमे दोनो के मूलभूत तथ्यो पर विचार करना होगा। सगीत के अनेक स्वरूप या भेद हो सकते हैं। यथा लोक सगीत, भाव सगीत, चित्रपट सगीत, क्षेत्रीयता के आधार पर भी नामकरण किये जा सकते हैं।

लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत में भेद :-

लोक संगीत के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की सामान्य किन्तु कर्णप्रिय सगीत सम्मिलित की जाती है। ढोलक के गीत, लोरी, भजन, आल्हा, चक्की के गीत, अनेक प्रान्तो मे पृथक-पृथक परम्पराओ में प्रस्तुत किये जाने वाले वैवाहिकोत्सव सम्बन्धी गीत, विभिन्न प्रकार पर्वो त्योहारो से सम्बन्धित गीत, अति उल्लेखनीय है इसके साथ ऋतु व मौसम के अनुकूल गाये जाने वाले गीत जैसे - सावन, झूले के गीत, फिल्मी गीत इत्यादि आते हैं। इन गीतो का मूल ध्येय जन साधारण का, शिक्षित या अशिक्षित नर-नारियो का मुक्त-मनोरजन करना ही होता है। इसके गायन वादन मे किसी विशिष्ट सागीतिक नियमो, सिद्धाता की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे गीतो मे लय स्वर तथा काव्य तीनो का आनद प्राप्त होता है। इनमें से भी कतिपय गीतो मे लय की महत्ता होती है, ढोलक के गीत, चक्की के गीत, कीर्तन इत्यादि क गायन मे लयकारी की भूमिका होती है कतिपय गीत ऐसे भी होते हैं जिनमें काव्यात्मकता का पुट बरकरार रहता है अर्थात काव्य का भी लय के साथ महत्व निहित रहता है। भजन, काव्यगीत विभिन्न साहित्यिक रचनाए इसी कोटि मे आती है कुछ गीत ऐसे भी होते हैं जिनमे स्वरों की उपयोगिता अपेक्षाकृत ज्यादा होती है इस प्रकार के गीतो में फिल्मी सगीत को रखा जा सकता है। लोक सगीत एक ऐसी विधा है जिसमे रागो की शुद्धता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। सामन्यत सगीत के दो प्रकार माने जाते हैं - शास्त्रीय सगीत एव भाव सगीत शास्त्रीय सगीत उस कहा जाता है जिसका एक नियमित शास्त्र होता है और जिसमे कतिपय विशिष्ट नियमो, सिद्धांतो का पालन अपरिहार्य भी होता है। तात्पर्य यह है कि जो सगीत स्वर, ताल, राग, लय, इत्यादि क नियमो से आबद्ध होकर तथा आकर्षक

ढग से प्रस्तुत किये जाते हैं, गाये अथवा बजाये जाते हैं, वे शास्त्रीय सगीत के रूप मे कहे जाते है। लोक सगीत का कोई शास्त्र नहीं होता परन्तु इसकी नियमावलिया लिखित रूपण प्राप्य है। शास्त्रीय संगीत मे लय एव ताल की सीमा मे ही रहना पड़ता है अन्यथा उसे दोष पूर्ण कहा जाता है। शास्त्रीय सगीत के भी दो पक्ष होते हैं। सैद्धांतिक एव व्यावहारिक, जिनका विवेचन पहले ही किया जा चुका है।

भाव सगीत बिना किसी शास्त्रीय बधन के भावना प्रधान होती है, इसमे किसी भी तरह से स्वर प्रयो किया जा सकता है, इन्हे चाहे जिस भी ताल मे गाया जा सकता है। यही नहीं इनमे आलाप, तान, सरगम, इत्यादि के प्रयोग भी अपेक्षित नहीं होते। लोकरंजकता हेतु यदा कदा आवश्यकतानुसार कतिपय शास्त्रीय सिद्धातो का भी आश्रय लिया जा सकता है किन्तु अनिवार्यता नहीं है।

भाव संगीत के प्रकार :-

भाव सगीत के भी तीन मुख्य भेद किये जा सकते हैं - (1) चित्रपट सगीत (2) लोक सगीत (3) भजन और गीत

सिनेमा या फिल्मो मे जिन गीतो का प्रयोग किया जाता है वही चित्रपट सगीत या गीत कहे जाते हैं। कतिपय शास्त्रीय गीतो से युक्त गीत भी चित्रपट मे प्रयुक्त किये गये हैं यथा - बैजू बावरा, का गीत- आज गावत मन मेरो, मन तरपत हरि दर्शन का आज, झनक झनक पायल बाजे का - गिरधर गोपाल इनकी शैली शास्त्रीय होते हुए भी ये चित्रपट गीत के रूप मे जाने जाते हैं। सामान्यत: चित्रपट सगीत अथवा फिल्मी गीतो मे भावानुकूलता व आकर्षकता होती है। नाना प्रकार के वाद्यों का मिश्रित प्रयोग भी दृष्टव्य होता है। प्राय: गीतो में रसात्मकता

होती है। श्रृगार रस प्रधान होता है। इसके साथ ही प्रेम, भक्ति व शांत, वीर रस से भी परिपूर्ण गीत व रचनाए भी प्रयुक्त की जाती है। गीत सुरीले होते हैं तथा आकर्षक कुठो द्वारा गया जाता है। फिल्मी गीतो को रेकार्डिंग (ध्वनि बद्ध) के पहले भली भाँति जाच की जाती है। इस प्रकार अनेक लक्षणो से परिपूर्ण होने के कारण फिल्मी गीत व संगीत जन सामान्य मे अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रियता हासिल कर लेती है क्योंकि इनका सीधा प्रभाव जनमन पर पडता है। आकर्षक लय व सुर कठ मे गाये जाने से ये विशेष समझ मे आते हैं। सुरसाम्राज्ञी लता के गीत, मुकेश के दर्द भरे गीत हो या मन्ना डे, महेन्द्र कपूर के गाने हो अथवा मो0 रफी के विभिन्न प्रकार से गाये गये गीत हो, कुछ ज्यादा आकर्षक होते हैं।

लोकगीत, ग्रामीणाचलो मे ग्रामीण नर नारियो द्वारा गाये गये उन्मुक्त गीत होते हैं। लोक सगीत की महत्ता अद्यावधि विद्यमान है। इन गीतो मे सैकडो वर्षों से चली आ रही रीति रिवाजो की मनोहर झाकी दृष्टिगत होती है। इनके अन्तर्गत अनेक प्रकार के गीत सम्मिलित होते हैं।

विभिन्न सुअवसरो पर गाये जाने वाले लोकगीतो में उल्लेखनीय है शादी के गीत, मगलाचार, तिलकोत्सव के गीत, मंडप में वर-कन्या से सम्बद्ध सुमधुर वैवाहिक गीत इसके अतिरिक्त गारी गीतो का भी अपना महत्व है। वर्षा ऋतु के गीत, आल्हा, बिरहा, लोरी, बाऊल, माहिया, भटियाली, माझी लोकगीतो की परम्परा भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। लोकगीत लोक भाषा मे अत्यत ही सहज, सरल होते हैं किन्तु भावों रसों से सराबोर भी जो किसी भी व्यक्ति को सुखद कल्पनाओ मे पुनीत परम्पराओं मे दूर सोचने को विवश कर देते हैं। कतिपय लोक गीत कुछ स्वरो मे ही सीमित होते हैं तथा उनमे लयात्मकता का पुट अधिक होता है। ऐसे गय गीत जनसामान्य पर सीधा असर डालते हैं और वह थिरकने

लगता है ताली बजाने लग जाता है लोकगीतों मे प्रयुक्त होने वाला प्रमुख वाद्य यत्र ढोलक है, जो पूरा साथ निभाता है। इसके अतिरिक्त मंजीरे का भी प्रयोग किया जाता है। लोक गीतो की ही भांति भजन और सामान्य गीतों के गायन मे शास्त्रीय सगीत के विधि-विधानों का बधन नहीं होता। भजनो के अन्तर्गत परम आराध्य (ईश्वर) के गुणों का भावपूर्ण भक्तिसिक्त गायन होता है। व्यक्ति अपने आराध्य ईष्ट देवी देवता की स्तुति, वदन अथवा प्रार्थना गाकर करता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न सुरों व लयो मे आरती गायन, देवीगीत, विभिन्न भक्त संत कवियो की गेय पदावलियो व रचनाओं के विभिन्न रूपों में गायन सम्मिलित है। जैसे-सूर के पद, मीरा की पदावलियां, तुलसी के दोहे व चौपाइयां इत्यादि। 'गीत' से तात्पर्य उन रचनाओ से है जो प्राय साहित्य से सम्बन्धित होती है। ऐसी साहित्यिक रचनाओ को अथवा कविताओं को जब स्वर ताल मे आबद्ध करके गाते हैं तो वे ही 'गीत' के नाम से जाने जाते हैं। ये राग तालादि शास्त्रीय नियमो से पूर्ण स्वतंत्र होती है। चित्ताकर्षक होती है। भावानुकूल शब्दों के द्वारा इन गीतों का सर्जन किया जाता है। इस सम्बन्ध मे कह सकते हैं कि -

सहृदय व्यक्ति की
भावाभिव्यक्ति ही
रचना बन जाती है।
कविता कहलाती है।

इसके अतिरिक्त चित्रपट गीतों की रचना बहुत चलती-फिरती होती है और शब्द भी सस्ते व सरल होते हैं, उनमे संगीतात्मक भरी जाती है। जबकि सामान्य गीत व कविता पूर्णतः भावो से ओतप्रोत होती है। कतिपय गीत दादरा व कहरवा ताल मे भी गाये जाते हैं।

इस प्रकार अनेक क्षेत्रीय भाषाओ मे गीतो का सगीतमय गायन आज भी लोकप्रिय है। हो शास्त्रीय सगीत की परिधि से सर्वथा मुक्त संगीत कहा जा सकता है।

चित्रपट एवं शास्त्रीय संगीत :-

चित्रपट सगीत की भी कुछ अपनी विशेषताएं होती हैं। हल्के फुल्के गीत, आकर्षक रचना, सस्ते ढग से शब्द किन्तु भावो से युक्त होते हैं। इसमे वाद्य-समूहों का उत्कृष्ट प्रयोग होता है। चलती-फिरती बन्दिशो, मधुर कंठ के द्वारा गाया जाना आदि चित्रपट सगीत की प्रमुख प्रवृत्तिया हैं। वस्तुत: इस संगीत का मुख्य उद्देश्य ही है श्रवणप्रिय हो और माधुर्य से युक्त हो, साथ ही जन सामान्य मे सीधे प्रभाव भी डालता हो।

शास्त्रीय सगीत मे सिद्धातो के परिपालन की अपरिहार्यता है। स्वर, लय व तालबद्ध होना, रागानुकूल स्वर सयोजन, गायन वादन प्रक्रिया मे क्रमिकता, आलाप, तान, बोलतान, सरगम आदि की तैयारी और सफाई के साथ उच्चारण करना आदि शास्त्रीय सगीत के आवश्यक नियम हैं। इनका अनुकरण करते हुए आनंद की प्राप्ति कराना ही हिन्दुस्तानी शास्त्रीय सगीत का मूलभूत लक्ष्य रहा है। किन्तु शास्त्रीय नियमो की जटिलता में प्राय. यह भी देखा गया है कि गायक अथवा सगीतज्ञ अपने मूलभूत ध्येय से दूर भी होने लगता है। गलाबाजी के चक्कर मे कलाकार की कला-रसता लुप्त सी होने लग जाती है, जैसा कि आज के शास्त्रीय गायको प्राय. देखने को मिलता है। इसका सामान्य संगीत अथवा चित्रपट सगीत मे उक्त प्रकार की कोई जटिलता नहीं होती। उसका वास्तविक उद्देश्य रंजकता, मधुरता और भावात्मक सौन्दर्य का सर्जन ही होता है न कि शास्त्रीय सगीत की तरह पाडित्य प्रदर्शन। इसमें मधुर कंठ युक्त गायकों, सगीत निर्देशको, पृष्ठभूमि सगीत देने के लिए कलाकारो की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। चित्रपट सगीत मे अभिनय एवं गायन दोनों में सह सम्बद्धता

बरकरार रहती है। जिसे दुबारा देखने पर अथवा सुनने पर विशेष आनद मिलता है। शास्त्रीय सगीत मे इस प्रकार का अभिनय तो नहीं रहता और हाथ पैर अथवा मुह की विभिन्न क्रियाएं, श्रोताओं पर उतना प्रभाव भी नही डालती है।

भाव सगीत अथवा चित्रपट संगीत मे उसकी प्रशंसा के लिए आवश्यक नहीं की श्रोता व दर्शक नियमों का ज्ञाता हो क्योंकि वह तो मात्र सुख व आनद का ही अनुभव करना चाहता है, उसे बारीकियो से क्या लेना देना। जबकि शास्त्रीय संगीत मे प्रशसको को यदि तत्सबन्धी स्वर-तालादि का ज्ञान नहीं है तो वह दिखावा मात्र प्रतीत होती है। तात्पर्य यह है कि शास्त्रीय संगीत की प्रशस्ति हेतु सांगीतिक तत्वो का यत्किंचित् ज्ञान सर्वथापेक्षित है। भले ही उसकी पूरी बारीकियों का सूक्ष्म ज्ञान न हो तथापि इतनी अपेक्षा अवश्य रहती है कि आलाप किसे कहते हैं? ज्ञान क्या है? कौन सी राग प्रयुक्त की गयी है। इत्यादि। शास्त्रीय सगीत में उसका महत्व कितना है? गायक अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर नये नये स्वर समूहो की सृष्टि करता रहता है। उसे प्रत्येक स्थल पर ताल इत्यादि की परिधि में रहना पड़ता ही है। शास्त्रीय सगीत में लय की अपेक्षा स्वरों की प्रधानता रहती है। स्वर सौन्दर्य उन्हीं के लिए बोधगम्य होता है जो उच्च स्तरीय बुद्धि सम्पन्न होते हैं या ज्ञान रखते हैं। दूसरी ओर चित्रपट सगीत में लय की प्रधानता हुआ करती है।

दोनों में कुछ तत्वों की आवश्यकता :-

सामान्य सगीत एवं शास्त्रीय सगीत मे भेद होते हुए भी कतिपय तत्व ऐसे भी हैं जो दोनों में सामान्य रूपेण उपयोगी हैं। जैसे - ध्वनि, नादशीलता, सरसता, लयात्मकता, वाद्ययंत्रों का प्रयोगादि।

वस्तुत बालक के रोने की आवाज भी ध्वनि कही जाती है और ईटों या पत्थरों की टकराहट से भी ध्वनि उत्पन्न होती है किन्तु कतिपय ध्वनियो को हम सुनना नहीं पसंद करते और कुछ को बार बार सुनना चाहते हैं। संगीत व शास्त्रीय सगीत मे वही ध्वनि महत्वपूर्ण होती है जो मधुर हो, कर्णप्रिय हो, आनद प्रदान करे। संगीत मे यही मधुर ध्वनि नाद कही जाती है।

कठ का सुरीला होना काफी कुछ ईश्वरीय हुआ करता है तथापि गायन मे आवाज को इधर उधर तथा ऊपर नीचे से जाना पडता है। सुरीलेपन के लिए अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। गायन मे श्वास का विशिष्ट महत्व होता है। किस प्रकार और किस समय श्वांस लेनी चाहिए। दोनों ही बातें गायन की रंजकता हेतु आवश्यक है सुरीलापन के साथ ही मधुरता भी दोनों ही प्रकार की विधाओ मे महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ऐसे अनेक गायक हैं जिनमें सुरीलेपन का गुण तो दिखता है किन्तु मधुरता नहीं दृष्टिगत होती अतः इसके लिये भी अभ्यास आवश्यक है।

संगीत में स्वर एवं ताल पद्धति :-

हिन्दुस्तानी संगीत मे स्वर तथा ताल लिपि की दो पद्धतियां प्रचलन मे रही है। भातखंडे एव विष्णु दिगम्बर पद्धति भातखंडे प्रणाली के अनुसार स्वर एवं तालो को इस प्रकार चिन्हित किया जाता है शुद्ध स्वर - ध ग रे नीचे पड़ी रेखा तीव्र स्वर म - ऊपर खड़ी रेखा। तार सप्तक के स्वर रे ग प - ऊपर बिन्दु। मध्य सप्तक के स्वर - सा रे ग कोई चिन्ह नहीं होता एक स्वर मे आधी मात्रा ग रे सा रे- नीचे चद्राकार लगना। चौथाई मात्रा का चिन्ह सा रे ग प इस तरह एक मात्रा मे चार स्वर हुए। इसी प्रकार एक चांद की एक मात्रा मे अनेक स्वर लिपि

बद्ध किये जा सकते हैं जैसे- प ध नि सा रे गा (1/6 मात्रा) कामा (,) चिन्ह यह बताता है कि एक मात्रा के दो बराबर बराबर हो जाते हैं जैसे - सा, गरे अर्थात् सा = 1/2 मात्रा और ग = रे = 1/4 मात्रा । स्वरों के आगे पड़ी रेखा चिन्ह से स्वरों के उच्चारण में वृद्धि होती है जैसे - सा - - सा, यहां पर सा में तीन मात्राएं है। गीत का उच्चारण बढ़ाने के लिये अवग्रह ( ) प्रयोग होता है जैसे - 2 या म, मो ह न । सम का चिन्ह - × खाली को - 0- (2 रूप) से चिन्हित करते हैं तालियो पर ताली की सख्या लिखी जाती है जैसे 2, 3, 4 इत्यादि। मींड प ग । कण स्वर या स्पर्श स्वर है -ग$_{प}$ प$_{ग}$ । कोष्ठक मे स्वर विधान यथा - (सा) = रे सा नि सां अथवा सां रे नि सां।

शास्त्रीय संगीत की विष्णु दिगम्बर प्रणाली के अनुसार स्वर तथा ताल लिपि को निम्नवत चिन्हित किया जाता है - शुद्ध स्वर - ग रे - इनमें कोई चिन्ह नहीं होता। कोमल स्वर - ग ध -इनमें निचली ओर हलत का प्रयोग होता है। तीव्र स्वर है - म्र या म् - इसमें नीचे सीधा या उल्टे हलत का प्रयोग होता है। तार स्वर - गं रे - ऊपर पड़ी लकीर का होना जबकि मध्य स्वर ग रे में कोई चिन्ह नहीं लगाते। मन्द्र स्वर - गं रे - ऊपर बिन्दु, स्वरों को दीर्घ करने के लिये अवग्रह लगाया जाता है यथा - मं म। अक्षरों को दीर्घ करने के लिए बिन्दु को प्रयुक्त करते हैं यथा - रा म । विश्रांति चिन्ह (,) कॉमा एक मात्रा का चिन्ह सा रे, दो मात्रा का चिन्ह सा रे आधी मात्रा का चिन्ह सा रे चौथाई मात्रा का चिन्ह- सा रे । 1/8 मात्रा का चिन्ह - सा रे। 1/3 मात्रा का चिन्ह -सा रे 1/6 मात्रा का चिन्ह है - सा रे । ताल के प्रत्येक आवर्तन के बाद एक विराम (।) लगाते हैं। स्थायी के अन्त मे दो विराम (।।) लगाते है। जबकि सम्पूर्ण गीत के अन्त मे तीन विराम चित्रो का प्रयोग करते हैं (।।।)

सम का चिन्ह ?, खाली का चिन्ह - + ताली के स्थान पर मात्राओ की सख्या लिखी जाती है। कण या स्पर्श स्वर - $ध_{प}$ $प_{ग}$ । मींड = प ग ।

गीता को स्वर लिपि बद्ध करके उनको भविष्य मे रखने के की दृष्टि से यह पद्धति अधिक पूर्ण है क्योंकि इसमे मात्रा तथा मात्रांशो के लिये अलग-अलग चिन्ह निर्धारित हैं।

निष्कर्ष :-

इस प्रकार शास्त्रीय संगीत की उक्त दोनो ही पद्धतियां प्रयोग में लायी जाती हैं। वस्तुत. शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत शास्त्र निर्धारित नियमोपनियमो का यदि सम्यक पालन किया जाय तो उसमे चार चांद लग जायेगे और वह जन मानस में अपना स्थान अक्षुण्ण बनाये रख सकती है। लेकिन इसके लिए काफी त्याग, अभ्यास की अपेक्षा होगी। वास्तव में देखा जाय तो सगीत विद्या अथवा कला के अन्तर्गत उक्त दोनों सामान्य अथवा शास्त्रीय दोनों ही रूप समहित होते हैं। दोनो का मूलभूत उद्देश्य आनंद प्रदान करना ही है। एक सरली कृत रूपेण अपना प्रभाव प्रत्यक्षः डालता है तो दूसरा शास्त्र सम्मत रूपेण विधिवत अभ्यास के द्वारा स्थायी प्रभाव का सर्जक होता है।

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

1. शास्त्रीय संगीत के वाग्गेयकार -

जिस प्रकार शिशु माता के गर्भ मे विकसित होता है और जन्म लेता है, उसी प्रकार प्रबध रूपी शिशु का विकास वाग्गेयकार के हृदय मे होता है। वाक-प्रबध का काव्यपक्ष और गेय (गेय-पक्ष) इन दोनों का कर्ता वाग्गेयकार कहा जाता है।

शास्त्रीय सगीत के कतिपय प्रमुख वाग्गेयकारों को सूचीबद्ध रूपेण इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते है -

1 अमीर खुशरो

2 स्वामी हरिदास

3 तानसेन

4 नायक बैजू बावरा

5 गोपाल नायक

6 हस्सू हद्दू खा

7 अल्लादिया खाँ

8 प0 ओंकारनाथ ठाकुर

9 श्रीकृष्ण नारायण रातनजनकर

10 बडे गुलामअली खाँ

11 विष्णुदिगम्बर पलुस्कर

12 विष्णुनारायण भातखडे

13 बी0आर0 देवधर

14 विनायक राव पटवर्धन

15 विलाय हुसैन खाँ

शास्त्रीय सगीत के वाग्गेयकारों को प्राचीन, मध्य और आधुनिक तीन वर्गों में बाँट सकते है -

प्राचीनकालीन वाग्गेयकारों मे यदि संगीत के आदि स्रोत से देखें तो स्वय ब्रह्मा नाट्यदेव के रचयिता थे। ब्रह्मा ने महामुनि भरत को शिक्षित किया। भगवान के डमरु से उत्पन्न चौदह वैयाकरणिक सूत्रों से स्वरवर्ण या सगीत स्वरों की उत्पत्ति हुई। इसके बाद अनेक सगीत विषयक ग्रन्थों की रचना संगीतविदों द्वारा की गई जो शास्त्रीय सगीत का आधारग्रन्थ बने।

मध्ययुग के वाग्गेयकारों में प0 अहोबल, प0 जयदेव, अमरीखुशरो, स्वामी हरिदास, तानसेन, नायक बैजूबावरा, गोपाल नायक, इस्सू हद्दू खाँ, अल्लादिया खाँ आदि प्रमुख हैं।

आधुनिक युग के वाग्गेयकारों मे प0 आकारनाथ ठाकुर, कुमार गन्धर्व, गोपालनायक, प0 विष्णुदिगम्बर पलुस्कर, विष्णुनारायण भातखडे आदि अनेक वाग्गेयकारों ने आधुनिक सगीतशास्त्र को समुन्नत किया।

2. वाग्गेयकार की परिभाषा -

'वाग्गेयकार' शब्द की व्युत्पत्ति 'वाक' और 'गेय' इन दोनों शब्दों से हुई मानी जाती है, 'वाक' और 'गेय' इन दोनों का जानकार वाग्गेयकार कहलाता है। वाक् अर्थात् पद्यरचना (काव्य पक्ष) और 'गेय' का अर्थ है स्वर रचना। वाग्गेयकार के सम्बन्ध मे 'गातु' और 'धातु' शब्द भी उल्लिखित किये जाते है।

प्राचीनकाल मे जिन सगीत-विदों या विद्वानों को पद्व रचना के साथ ही स्वर रचना का भी ज्ञान होता था, उन्हे ही 'वाग्गेयकार' के नाम से अभिहित किया जाता था। पाश्चात्य सुविचारक ऐसे विद्वानों को 'कम्पोजर' कहते है। तात्पर्य यह कि वाग्गेयकार को साहित्य व संगीत इन दोनों की ही जानकारी होनी अनिवार्य हुआ करती थी।

धातुमातुसमायुक्त गीतमित्युच्यते वुधै ।
तत्र नादात्मको धातुर्मातुरक्षर सभव ।।[1]

'रत्नाकर' महोदय ने वाग्गेयकार के सन्दर्भ मे लिखा है कि -

वाङमातुरुच्यते गेय
धातुरित्यभिधीयते ।
वाच गेय च कुरुते
य स वाग्गेयकारक ।।

जिसे गायन शास्त्र का पूर्व ज्ञान होते हुए भी गायन कला का ज्ञान साधारण (कामचलाऊ) होता था, उसे पण्डित सज्ञा से अभिहित किया जाता था।

1- राजतरंगिणी से उद्धृत ।

'वदिश' के लिए प्राचीन शब्द 'प्रबन्ध' मिलता है। बंदिश की उपमा यदि एक शिशु से दे तो वदिश का वाक्पक्ष (भाषा) उस शिशु की अस्थियाँ है और गेयपक्ष - मास इसीलिए 'सामविधान' ब्राह्मण मे 'ऋचा' को 'साम' की 'अस्थि' (हड्डी) और स्वरों को 'मास' कहा गया है -

'तस्य ह वा एतस्य ऋगोवास्थीनि स्वरा मासानि .. ।[1]

वाग्गेयकार प्रबन्धों का सृष्टा हुआ करता है जिसके द्वारा विरचित प्रबधों का गान करना गायकों का कर्त्तव्य है। वाग्गेयकारों के गुणों या लक्षणों से हीन गायकों द्वारा की गयी बंदिशें सर्वथा दोषयुक्त होगी। अत एक वाग्गेयकार मे कुछ प्रमुख बातों का होना अपरिहार्य है, यथा- शब्द-शास्त्र (व्याकरण), छद शास्त्र, कोषज्ञान, कलाओं मे कुशलता सातों प्रकार के गीतों मे प्रवीणता का होना आवश्यक है। इस भाव सम्बन्धी चातुर्य, अलकार प्रयोग मे निपुणता का होना, तालों का समुचित ज्ञान होना भी जरूरी होता है। इसके साथ ही साथ राग मर्मज्ञता, सुरीलापन, सुगेयता, देशी रागों की पूर्ण जानकारी, देशी भाषाओं का भी ज्ञान सर्वथापेक्षित है।

एक वाग्गेयकार के लिए आवश्यक है कि वह नृत्य एव वाद्य में प्रवीण हो। स्वामी के चित्त का अनुवर्तन, सभा मे सूरता, प्रतिभा, वाणी पर अधिकार सभ्य जनों के चित्त का अनुरजन, अनिबद्ध स्वरी (आलाप और आलप्ति) का ज्ञान, चारों धातुओं- उद्ग्राह, मेलावक, ध्रुव और आभोग मे दक्षता व पटुता, समस्त प्रकार के प्रबधों का ज्ञान, न्यास-सम्बन्धी नैपुण्य, मद्र, मध्य और तार स्थान व्याप्ति मे सुदर-प्रयोग कोप-हीनता, दिये हुए विषय का निर्वाह, आश्चर्यमय काव्य, यथोचित शब्द विन्यास, प्रगल्भता, वर्णाधिपत्यता, सावधानता, एक अग मे प्रौढत्व तथा मुख-मडल पर प्रसन्नता-इत्यादि अन्यायन्य बातें अपेक्षित होती है।

1- सामविधान ब्राह्मण, 1-1-4

3 वाग्गेयकार के गुण -

'रत्नाकर' ने वाग्गेयकार मे होने वाले आवश्यक गुणों का उपयुक्त विवेचन किया है तद्नुसार -

शब्दानुशासन ज्ञानमभिधानप्रवीणता।
छन्द प्रभेदवेदित्वमलकारेषु कौशलम् ।।
रस भाव परिज्ञान देशस्थितिषु चातुरी
अशेष भाषा विज्ञान कलाशास्त्रेषु कौशलम्।।
तूर्यत्रितयचातुर्य हृदयशारीर शालिता।
लयतालकलाज्ञान विवेकोऽनेककाकुषु ।।
प्रभूतप्रतिभोद्भदे भाक्त्व सुभगगेयता।
देशीरागेढवभिज्ञत्व वाक्पटुत्व सभाजये।।
राग द्वेष परित्याग सार्द्रत्वमुचितज्ञता।
अनुच्छिष्टोक्ति निर्वन्धोनूत्नथातुविनिर्मिति ।।
परिचितपरिज्ञान प्रबधेषु प्रगल्भता ।
द्रुतगीत विनिर्माण पदातरविदग्धता ।।
त्रिस्थानगमक प्रौढिर्विविधालप्ति नैपुणम्।
अवधानं गुणैरेभिर्वरो वाग्गेयकारक ।।

---- रत्नाकर'

उक्त पक्तियों का आशय निम्नवत् है -

1- शब्दानुशासनज्ञान - अर्थात् व्याकरणसम्मत ज्ञान

2- अभिधान प्रवीणता - अमरकोषादि ग्रन्थों का ज्ञान

3 छन्द प्रभेदवेदित्व - सब प्रकार के छन्दों का ज्ञान

4- अलकार कौशल - साहित्य-शास्त्र मे विवेचित उपमादि सभी अलकार की जानकारी

5- रसभावपरिज्ञान - शास्त्रोक्त, वर्णन किए हुए शृगारादिक रसों का तथा विभावादिक भावों का उत्तम ज्ञान

6- देशस्थित ज्ञान - विभिन्न देशों के रीति-रिवाजों की जानकारी

7- अशेषभाषा ज्ञान - देश की सभी भाषाओं का ज्ञान

8- कलाशास्त्र कौशल - सगीतादि शास्त्रों मे प्रावीण्य

9- तूर्यत्रितयचातुर्य - गीत त्वाद्य और नृत्य मे चातुर्य

10- हृद्यशारीरशालिता - हृद्य अर्थात् मनोहर शरीर जिसे मिला हो, वह हृद्य शरीर अधिक श्रम अथवा अभ्यास न करते हुए जिसको राग की अभिव्यक्ति (प्रदर्शन) सरलता से करने मे आती है, उसे आम शरीर प्राप्त-कहते है। 'शरीर' एक पारिभाषिक शब्द है।

11- लयतालकलाज्ञान - लय, ताल तथा तालाध्याय में वर्णित कलाओं का ज्ञान।

12- अनेककाकुज्ञान - भिन्न-भिन्न स्वर-भेदों का ज्ञान। 'काकु' यह भी एक पारिभाषिक शब्द है, प्राचीन सगीत मे स्वर काकु, राग काकु, देश काकु, क्षेत्र काकु, अन्यराग काकु तथा यन्त्र काकु - इस प्रकार के छ काकुभेद बताये गये है। पडित कल्लिनाथ के अनुसार 'काकुर्ध्वनैर्विकार ।'

13- प्रभूतप्रतिभोभेदभावतत्व - अलौकिक बुद्धि नवनवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा, बुद्धि जो जिसकी।

14- सुभगगेयता - सुखद रुचिकर गायन करने की शक्ति।

15- देशीरागज्ञान - देशी रागों की जानकारी।

16- वाक्पटुत्व - सभा मे विजय पाने योग्य वाक्चातुर्य।

17-	रागद्वेषपरित्याग	-	राग द्वेष का अभाव
18-	सार्द्रत्व	-	सरसता, सहृदयता
19-	उचितज्ञता	-	किस स्थान पर क्या होगा या होना चाहिए, ऐसा विचार कर लेने की क्षमता या ज्ञान।
20-	अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बन्ध	-	स्वतत्र रचना करने की शक्ति अथवा प्रवृत्ति
21-	नूत्नधातुविनिर्मित ज्ञान	-	नयी-नयी स्वर रचना करने का ज्ञान
22-	परचित्तपरिज्ञान	-	दूसरे के मन का भाव जान लेने की शक्ति
23-	प्रबन्धप्रगलभता	-	प्रबन्धों का उत्तम ज्ञान
24-	द्रुतगीविनिर्माण	-	शीघ्र कविता करने की शक्ति
25-	पदान्तरविदग्धता	-	भिन्न-भिन्न गीतों की छाया का अनुकरण करने की सामर्थ्य
26-	त्रिस्थानगमकप्रौढि	-	तीनों स्थानो मे गमक लेने की शक्ति
27-	आलप्तिनैपुण्य	-	रागालप्ति व रूपकालप्ति का ज्ञान
28-	अवधान	-	चित्त वृत्ति की एकाग्रता।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि एक सुधी वास्तविक वाग्येयकार मे उक्त समस्त गुणों का होना आवश्यक प्राय माना जाता था। इसके अतिरिक्त मध्यम व निम्न कोटि के वाग्गेयकारों का वर्णन भी प्राप्त होता है, तदनुसार -

विधानोडधिक धातुं मातुमदस्तु मध्यम ।

धातुमातुविदप्रौढ प्रब धेष्वपि मध्यम ।

रम्यमातुविनिर्माताऽण्यधमो मद धातुकृत् ।।

इसी प्रकार अन्यत्र भी वर्णन प्राप्त होता है, शब्द शास्त्रपरिज्ञान छदोविचितनैपुणम्

इवे वाग्गेयकारस्य गुणास्सदिभा दाहृता ।

इसके विपरीत ग्राम्योक्ति अर्थात् शिष्टताहीन उक्ति, अपशब्द (अशुद्ध शब्द), अप्रस्तुत वर्णन, गमक और पद मे जडता, प्रबधज्ञान हीनता, रसानुरूप रागों के सम्बन्ध मे जानकारी का न होना, असहृदयता, क्रियानिर्वाह मे अपरिचय, मद शारीरता, मान मे न्यूनता या अधिकता, रीतिभग, राग के शुद्ध रूप की भ्रष्टता, असमय गान, अश्राव्यता, लक्षणविरोधी 'मातु' (काव्यपक्ष) धातु (गेय पक्ष) की रचना वाग्येयकार के दोष भी शास्त्रों मे बताये गये है।

वाग्गेयकार के दायित्व -

वस्तुत वाणी की रचना करके उसे गेय रूप मे ढालने वाले व्यक्ति वाग्गेयकार होते है, जिनमे व्याकरण, कोष, छद, अलकार, रस, भाव तथा देश स्थितियों का ज्ञान अनिवार्य बताया गया है। इनकी बहुत बडी विशेषता परिचित - परिज्ञान बतायी गयी है जिससे कि ये श्रोताओं के प्रत्येक वर्ग को सतुष्ट कर सके।

इस दृष्टि से सिद्ध होता है कि वाग्गेयकार को जहाँ एक ओर सगीत के शास्त्रीय एव व्यावहारिक, दोनों पक्षों मे निष्णात होना चाहिए वहाँ उसे उन सभी बातों मे चूडान्त पडित होना चाहिए, जो सत्साहित्य के निर्माण के लिए अनिवार्य है। इस दृष्टि से वाग्गेयकार का स्थान बहुत ऊँचा और उसके कर्तव्य अत्यन्त कठिन भी है।

पार्श्वदेव का कथन है कि उच्च-निम्न स्वरों एव वीर-रस प्रयोज्य अक्षरो से युक्त आरभटी-वृत्ति संवलित और उत्साहपूर्ण गीत वीरों को प्रिय होता है, श्रृगार रस-भूषित प्रेम को उद्दीप्त करने वाले शब्दों से युक्त तथा कठिन कठ ध्वनि से भापा जाने वाला गीत विरही जनों को भाता है। उलटे-सीधे शब्दों से युक्त स्वरभगी प्रधान और परिहासपूर्ण गीत विटों का मनमोहक है। गूढ़ अर्थ और परमार्थ को व्यक्त करने वाले वाक्यों से युक्त ऐसे गीत योगिबल्लभ होते है, जिनका विषय अध्यात्म होता है। शुभ वाक्यों एव मगलमय शब्दों से युक्त विवाहादि उत्सवों में प्रयोगार्थ विरचित मगल

गीत महिलाओं को प्रिय होता है। देव स्तुति से युक्त, उनके प्रभाव को प्रकट करने वाला और श्रोता सवर्ग मे आस्तिक्य भाव सचरित करने वाला गीत भक्तजनों को प्रिय होता है और गमक बहुल रूक्ष एव विषम गीत वादि वल्लभ होते है अर्थात् सगीत के उस्तादों को प्रिय होते हैं।

इस प्रकार उक्त वर्गीकरण से यही परिलक्षित होता है कि वाग्गेयकार का कर्त्तव्य कितना कठिन है। साहित्यकार या कवि जहाँ अरसिक श्रोता की रसिकविहीनता पर उपेक्षापूर्वक हँसकर छुटकारा पा लेता है, वहाँ वाग्गेयकार अथवा गायक को यह सुविधा नहीं है।

वस्तुत गीत का संयोजन ही सबकी चित्तवृत्ति को प्रसन्न करने के लिए, रिझाने के लिए होता है। भरत के रगस्थल मे स्त्रिया, बच्चे और मूर्ख भी समाहित है। रजन करना गायक का कार्य होता है ओर गायक को सर्वलोकरञ्जक सामग्री देना वाग्गेयकार का। अत वाग्गेयकारों का कार्य कवियों की तुलना मे अपेक्षाकृत कठिन प्रतीत होता है। कवि अपनी रचना का आह्लादन सहृदयों को करा सकता है, परन्तु वाग्गेयकार द्वारा प्रस्तुत सामग्री मे जनता के प्रत्येक वर्ग को रिझाने वाले तत्वों का समावेश होना ही चाहिए।

4- संगीत में स्वर और शब्द का सम्बन्ध -

सगीत शास्त्र मे स्वरों का स्थान सर्वप्रथम होता है, इसके साथ ही कतिपय सागीतिक शब्द भी ऐसे प्राप्त होते है जिन्हे परिभाषित करना आवश्यक हो जाता है। इस सम्बन्ध मे हम सगीत मे स्वर और विभिन्न सागीतिक शब्दों का उल्लेख कर सकते है, जिनमे परस्पर महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है।

स्वरस्थापन की प्रणाली और पारिभाषिक शब्द -

स्वर का कारण श्रुतियो को मानने की परिपाटी नाट्यशास्त्र की अपेक्षा कहीं अर्वाचीन है, नाट्यशास्त्र की 'स्वर विधि' के अन्तर्गत् विषय को प्रतिपादित करने क्रम इस प्रकार हैं -

1. स्वर सज्ञाओ का प्रतिपादन
2. वादी-सवादी, अनुवादी, विवादी के रूप मे चार प्रकार के स्वर एव उनमें पारस्परिक सम्बन्ध
3. वादी एव सवादी स्वरों के लक्षण
4. मध्यमग्राम मे 'पचम-ऋषभ' तथा षडज ग्राम मे पारस्परिक सवाद के प्रतिपादक श्लोक
5. विवादी एव अनुवादी का लक्षण एव कतिपय उदाहरण
6. वादी, सवादी, अनुवादी एव विवादी सज्ञाओं की अन्वर्थता
7. षडजग्रामीण स्वरों की स्थापना का ज्ञान कराने वाला श्लोक, जिसमे षडजग्राम मे श्रुतिनिदर्शन का निरूपण किया गया है।
8. षडज एव मध्यमग्रामों से परिचित व्यक्ति के लिए एक 'स्थान' मे श्रुतिसख्या एव श्रुति परिमाणों की प्राप्ति का उपाय 'चतु सारगा'

9 दोनों ग्रामों मे स्वरों की सख्या को याद रखने के लिए सग्रह श्लोक जिनमे 'चतु सारणा' का निष्कर्ष पद्यबद्ध है।

अत स्पष्ट है कि 'नाट्यशास्त्र' मे क्रमश स्वर संस्थापन एव ग्राम ज्ञान के बाद बाईस श्रुतियों का विधान एव उनके परिमाणों की जानकारी मिलती है।

षड्जग्राम की प्रथम मूर्च्छना का आदिम स्वर षड्ज है जो अन्य स्वरों का जनक है। इसके पश्चात् स्वरों की उच्चता बताने के लिए ही नाट्यशास्त्र मे क्रमश ऋषभ, गांधार, मध्यम, पचम, धैवत एव निषाद की श्रुति सख्या निर्दिष्ट की गयी है। इसके उपरान्त षड्ज की श्रुतियों का प्रतिपादन किया गया है। नाट्यशास्त्र मे उल्लिखित है कि 'षडजग्राम' मे श्रुतियों की स्थिति क्रमश[1] तीन, दो, चार, चार, तीन, दो, चार है।

वस्तुतत आचार्य द्वय भरत एव दत्तिल ने किसी भी ध्वनि को 'षडज' मानकर तदुपरान्त क्रमश र, ग, म, प, ध, नि, सा की स्थापना का तिर्देश किया है। ये दोनों ही संगीतज्ञ 'अष्टक' का बोध कराते हैं, जिसमें आदिम ध्वनि 'षड्ज' के रूप मे गृहीत है और अन्य सात स्वर उस गृहीत ध्वनि के आधार पर स्थापित किये गये हैं।[2]

जिस भारतीय आचार्यो द्वारा मध्य युग मे अपने स्वरों का स्थान निर्धारित किया गया है, उन्होंने भी स्वर स्थाना का वास्तविक कारण 'स्वर-सववादिता का ज्ञान' बताया है और तार की लम्बाई पर स्वरस्थान निश्चित करने के दृष्टिकोण की व्यावहारिक अनुपयोगिता को माना है।

1- तिस्त्रो द्वै च चतश्रश्च् चतश्रस्तिश्र एव च
द्वे चतस्रश्च षड्जग्रामे श्रुतिनिदर्शनम्।।

2- सगीत चितामणि, पृ0 113.

वृहद्देशी के प्रणेता मतग मुनि के शब्दों मे भरत तो ऋषभ से शुरू होने वाले श्रुतिमडल का निदर्शन करते है, इसका क्या कारण हो सकता है। इसका उत्तर यह कि दोनों ग्रामों की अतर मूर्च्छनाओं के प्रति पादनार्थ ही भरत का यह निदर्शन है। अथवा दोनों ग्रामों मे षड्ज और मध्यम ही ग्रामणी होते है और अन्य स्वर इसके बाद आते है।[1] उन्होंने मूर्च्छना का लक्षण बताते हुए कहा है कि आरोहावरोह क्रम से प्रयुज्पमान स्वर सप्तक को बुद्धिजीवियों द्वारा 'मूर्च्छना' समझना चाहिए। मूर्च्छना के लिए सप्तस्वरता आनवार्य है।

उनकी दृष्टि मे मूर्च्छना का लक्षण है -

आरोहावरोहगक्रमेश स्वरसप्तकम् ।

मूर्च्छना शब्द वाच्य हि विज्ञेय तद्विचक्षमे. ।

मतग ने उसी मूर्च्छना को शुद्ध माना है जिसके स्वरों का अतराल ग्राम की मूलभूत स्वरव्यवस्था के अनुसार हो। गाधार और निषाद की चतु श्रुति अवस्था से युक्त मूर्च्छनाये मतग की दृष्टि से 'शुद्ध' नहीं है। वे स्वरों के मूलभूत अतराल से युक्त स्थिति को ही स्वरों की शुद्ध अवस्था मानते है।

आचार्य कल्लिनाथ ने नाट्यशास्त्रों मे उक्त अंश स्वर लक्षण इस प्रकार दिया।[2] रागश्च यस्मिन् वसति। यस्माच्चैव प्रवर्त्तते नेता च तारमद्राजा ।।- योऽत्यर्थ मुपलभ्यते। ग्रहापन्यासविन्याससलासन्यास योगत । अनुवृत्तश्चयश्चेह सोंऽश स्याद्दशलक्षण ।

शुद्धपाठानुसार अश-स्वर राग का निवास ।- राग की प्रवृत्ति का आधार, 2- तार, 3- मद्र, 4- का नियामक ग्रह, 5- अपन्यास, 6- विन्यास, 7- सन्यास, 8- न्यास, 9- के अनुवृत्त और बहुल, ।0- होता है।

।- भरतस्तु पुनर्ऋषभादि श्रुतिमडल दर्शमीति इति - 'वृहदेशी'

2- 'सगीत रत्नाकर', स्वराध्याय पृ0-।82 अडयार सस्करण, कलानिधि टीका।

अश स्वर अथवा स्थायी (आधार) स्तर -

अश या 'स्थायी स्वर' ही मूर्च्छना का आदिम स्वर होने के कारण 'की नोट' या 'टॉनिक' होता है। जातियाँ ही रागों की जन्मदात्री होती है। अतएव उनमें निश्चित स्वर सन्निवेश का प्रयोग 'की नोट' बलकर भी होता है। अश-स्वर को ही स्थायी-स्वर माना गया है तथा इन दोनों ही पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग नाट्यशास्त्र, वृहद्देशी तथा 'सगीत रत्नाकर' मे किया गया है। स्थायी स्वर 'की नोट' अथवा 'टोनिक' का वाचक है।

मूर्च्छना-प्रसंग में 'मध्यम स्वर' -

मूर्च्छनाओं के निर्देश का आरभिक स्थल वीणा का मध्यम स्वर मान्य है। एकतत्री 'वीणा' की लम्बाई आज की वीणाओं की तुलना मे अधिक हुआ करती थी। इस पर सारिकाओं का अभाव होता था। वीणा की तत्री का केन्द्रबिन्दु मध्य स्थान का आरभक स्थल होता था और मुक्त-तार मन्द्रस्थान का। तीनों सम्पूर्ण स्थानों के इक्कीसों स्वरों का वादन इस पर होता था। मध्य स्थान के आरंभिक स्थान और 'घुडच' के मध्य का भाग 'तार स्थान' का आरंभक विदु होता था। इसमे तीनों संपूर्ण सप्तकों की प्राप्ति 'एकतत्री में हो जाती थी। मत्तकोकिला वीणा मे 21 तार हुआ करते थे। प्रथम तार मद्र-स्थान, आठवाँ तार मध्य स्थान और पन्द्रहवाँ तार तार-स्थान का आरभक स्थल होता था।

'किन्नरी' यद्यपि भरतकालीन वाद्य नहीं है किन्तु तार की लम्बाई पर स्वरोत्पत्ति के स्थल उस पर भी स्वाभाविक है।

ध्यातव्य है कि वीणा का 'माध्यम या मध्यस्थ' स्वर प्रत्येक मूर्च्छना के आदिम स्वर कहलाने के कारण 'अविनाशी' रहता है। आधुनिक वाद्यों यथा सारंगी, सरोद इत्यादि मे जिस प्रकार अपने श्रवणाधारित वादक विभिन्न स्वरों को अभिव्यक्त करते है, वैसे

ठाठ की प्राप्ति (द्विविध तानों का प्रयोग) -

आचार्य मतग का कथन है कि 'तान' प्रयोग के दो ढग है - 'प्रवेश' के द्वारा और 'निग्रह' के द्वारा। ऋषभ की अपेक्षा अधर (नीचे) लोपनीय षड्ज का विप्रकर्ष के द्वारा पीडन अर्थात् उसका 'ऋषभ' मे परिवर्तन ही 'प्रवेश' कहलाता है। यही विप्रकर्ष का आश्रय लेकर प्रवेश द्वारा तान प्रयोग कहलाता है मार्दव (उतारना या ढीला करना) के द्वारा (प्रवेश का उदाहरण, निषाद की अपेक्षा 'उत्तर' पाश्चात्वर्ती या चढे हुए) लोपनीय 'षड्ज' की तत्री को 'मार्दव' अर्थात् शिथिलीकरण 'निषाद' बना देना 'प्रवेश' हे। इस तरह 'प्रवेशण' क्रिया दो रूपों मे होती है।[1]

द्विविधा तानक्रिया तन्त्र्या प्रवेशन निग्रहस्तधा तत्र प्रवेशनम् अधरस्वरप्रकर्षादुन्तर-स्वरमादिषात् वा।। निग्रहश्चासस्पर्श ।।'

निग्रह का तात्पर्य अतर (विकार) का न होना है 'अविकृत रहते हुए भी अपनी पहली सज्ञा को छोड करके - नवीन सज्ञा के रूप मे दृष्टिगत होना है।

नाट्यशास्त्र मे भरतमुनि ने इसके पश्चात् 'मध्यमस्वरासंस्पर्श' शब्द प्रयुक्त मिलता है जो वृहदेशी मे नहीं मिलता है।

वस्तुत 'स्थिर' स्वरों के उत्पादक तारों को कसकर या ढीला करके मूर्च्छनाश्रित तानविशेषों की स्थापना ' तानक्रिया' है।

यदि किसी तान मे 'षड्ज' का लोप विहित है, तो 'षड्ज' के बोधक तार को चढ़ाकर उस पर 'ऋषभ' की स्थापना करना 'प्रकर्ष' है। इसी प्रकार षड्ज का प्रकर्ष करके (तार को चढ़ाकर) उसे 'ऋषभ' बना देना ही अधर स्वर का 'प्रकर्ष' है। यह

1- वृहद्देशी पृ0 28-29

यह प्रवेश का एक प्रकार है। लोपनीय 'षड्ज' के तार को शिथिल करके उसे 'निषाद' मे बदल देना ही 'उत्तर स्वर' का 'मार्दव' कहलाता है। लोपनीय षड्ज निषाद की अपेक्षा 'उत्तर' अर्थात् पश्चाद्वर्ती या चढ़ा हुआ है। यही 'उत्तर' स्वर का मार्दव ही प्रवेशन क्रिया का द्वितीय रूप (प्रकार) कहलाता है।

प्रवेश और निग्रह का जो नियम 'मत्तकोकिला' की तन्त्रियों को शिथिल करने मे और कसने मे उपयुक्त है, वही 'सारिकाओं' को चढाने एवं उतारने मे घटित होता है। आचार्य मतग के काल तक सारिकावाद्यों का निर्माण हो गया था। उन्होंने मतग किन्नरी' नामक वाद्य का निर्माण किया था।[1]

कंठ्य वंश विवेचन -

जिस प्रकार वीणा मे तीनों स्थानों की सपूर्ण प्राप्ति के लिए 'वीणा के माध्यम' स्वर को मध्य स्थान का आरभक स्थान माना जाता है, उसी प्रकार कंठ की उस ध्वनि को 'कठ्प अंश' की सज्ञा दी जाती है। यह कठ्प अश पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि मे गायक का 'स्टैण्डर्ड' नोट है और मध्यस्थानीय कण्ठ्प अश ही कठ का 'मध्यम स्वर' है।

कोई गायक यदि तीन पूरे सप्तकों को नहीं गा सकता तो उसे मद्र अवधि और तार अवधि मे सकोच करने के लिए ऐसी ध्वनि को कठ्प-अश मानना पडता है कि वह मद्र-स्थान मे चार-पाच स्वर और तार स्थान मे भी चार-पाच स्वर तक जा सके।

1- कुभ का सगीतराज

कामचार -

'जाति या राग' का रूप जितने स्वरों मे स्पष्ट निर्धारित हो जाय केवल उन्हीं का प्रयोग करके मद्र या तार स्थानों में अवधि विशेष तक के अनिवार्य प्रयोग की चिंता न करना 'कामचार' कहा जाता था।

'वृहद्देशी' मे 'कठ्प स्वर' के सम्बन्ध मे मतग का विचार है कि 'तार और मद्र' व्यवस्था की सिद्धि के लिए जो कुद कठ ध्वनियों द्वारा गाया जाता है, उसमे मध्यम गति अर्थात् मध्य स्थानीय कठ्प अश की प्रमुखता रहती है।

इसी प्रकार 'अश' स्वर के स्थान के विषय मे उनका मत है कि "राग का जनक होने और व्यापक होने के कारण अश की प्रधानता होती है।[1]

भरत द्वारा कथनित सप्त राग -

नाट्य शास्त्र में[2] कहा गया है कि 'मुखे तु मध्यमग्राम षड्ज (?) प्रतिमुखे स्मृत । साधारितं तथा गर्भे मर्शे कौशिक मध्यम। कैशिकञ्च तथा कार्य्य गानं निर्वहणे वुधे।"

ग्रामों की उत्पत्ति -

लक्ष्योत्पत्ति पहले होती है और लक्षण की बाद मे। इसी प्रकार जातियों का जन्म पहले हुआ और उसके बाद उनके रूप या चलन पर विचार करके उनका नामकरण किया गया। लक्षण निर्धारित किये गये।

स्वर प्रयोग मे वर्ण विशेष (गान किया और स्वरों के प्रयोग के विशिष्ट क्रम) द्वारा विचारकों को 'श्रुतियों' की पहचान करायी गयी। श्रुति भेद से ही 'ग्राम' के दो

1- वृहद्देशी पृ0 56

2- काशी संस्करण (नाट्य शा0) 426 पृ0.

प्रकार 'षड्ज ग्राम' एव 'मध्यम ग्राम' माने गये और यह निर्धारित किया गया कि अमुक 'जाति' के 'राग' का सम्बन्ध किस ग्राम से है। नाट्य शास्त्र मे उल्लिखित है कि जातिभि श्रुतिभिश्चैव स्वराग्रामत्वमागता । यथा-यथा वृत्तिभेदै काव्यवधा भवति हि" अर्थात् जिस प्रकार जातियों और श्रुतियों के द्वारा स्वर ग्रामत्व को प्राप्त हुए है, उसी प्रकार वृत्ति भेद से काव्यबध होते है। षड्जग्राम का ज्ञान पहले हुआ है और मध्यमग्राम की शुद्ध मूर्च्छनाये षड्ज ग्राम के गाधार को चतु श्रुति बनाकर स्थापित की गयी है।

उदाहरणार्थ -

सा 3 रे 2 ग 4 म, 4 प, 3 ध, 2 नि, (4 सा) षड्जग्रामीण प्रथम-मूर्च्छना।

सा, 3 रे, 4 ग, 2 म, 4 प, 3 ध, 2 नि (4 सा) उक्त मूर्च्छना का यह अंतर गांधार युक्त रूप ही म, 3 प, 4 घ, 2 नि, 4 सा, 3 रे, 2 ग, (4 म) मध्यम ग्रामीय प्रथम शुद्ध मूर्च्छना है।

वृहदेशी में उन सातों शुद्ध ग्राम रागों के प्रस्तार भी प्राप्त होते है जो 'नाट्यशास्त्र' मे चर्चित हैं। 'रत्नाकर' में मतगोक्त प्रस्तारों के साथ ही उनमे 'गेय पद' भी मिलत ळे जिसे ब्रह्मप्रोक्त कहा गया है और जिनका विषय 'हे - शिवस्तुति'।

इस प्रकार यह एक विशद विवेचन का विषय है। कुल मिलाकर संगीत शास्त्र मे स्वरों का महत्व एकतम है तो इसमे अनेकानेक पारिभाषिक शब्द उल्लिखित है, जिनका सम्बन्ध महत्वपूर्ण है।

5- संगीत में काव्य का स्थान -

जहा तक सगीत कला मे काव्य के स्थान का प्रश्न है, इस सन्दर्भ मे हम कह सकते है कि दोनों मे अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। काव्य या कविता एक ऐसी छन्दोबद्ध रचना होती है जिसका सम्बन्ध हमारे हृदय से होता है, यही बात सगीत के लिए भी लागू होती है। इसीलिए कहा गया है - 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' रस से ओतप्रोत वाक्य रचना ही कारण और और संगीत मे भी आलकारिकता के साथ ही रसात्मकता सर्वथा विद्यमान रहती है। काव्य मे तुक, लय, गति, यति का पूर्ण विधान हुआ करता है, तभी वह गेय होता है और काव्य कहलाता है, उसी प्रकार सगीत मे भी गेयता बरकरार रहती है।

संगीत मे काव्य और रस की भूमिका -

संगीत - काव्य और रस का अविभाज्य स्थान रहा है। इन्द्रियो से जो कुछ हम अनुभव करते है, उसका प्रभाव हमारे मन पर पड़ता रहता है। अनुभव तो क्षणिक होता है किन्तु उसका प्रभाव या संस्कार हमारे चित्त पर सदा के लिए अकित हो जाता है।

रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा, विस्मय और विरक्ति ऐसे ही सस्कार है जो मानव के हृदय पटल पर अनुभव परपरा के प्रभाव रूप मे अकित है। वास्तव मे, इन्हे ही स्थायी भाव की सज्ञा दी गयी है।

प्रसन्नता, शोक, घृणा इत्यादि मनोभाव व्यक्ति के लौकिक जीवन मे स्वच्छदतापूर्वक प्रकट नहीं होते। हमारे 'राग-द्वेष' उन्हे बलपूर्वक जिधर चाहे, हाँकते, लेजाते रहते है। अपनी सुख-सुविधा का प्रत्येक प्राणी ख्याल रखता है, जबकि यदि कोई शत्रुवत् व्यवहार करता हो तो उसके प्रति किसी भी तरह की सहानुभूति नहीं होती। यहाँ

तक शत्रु से सहानुभूति रखने वालों के प्रति भी हमारी दृष्टि बन सी जाती है। यही राग-द्वेष हमारे मन पर छाये रहते है। हृदय मे सदा रहने वाले भावों की यह उन्मुक्तावस्था ही दर्शक को आनंदानुभव कराती है।

वस्तुत. जब हम कोई नाटक या दृश्य विशेष को देखते है तो उसमे दृश्यमान घटनाएँ हमारे सम्मुख क्रमश आती जाती है किन्तु उनमे जो हमारे स्वभाव, मनोवृत्ति के अनुकूल होती है, वह कहीं ज्यादा प्रभावित कर लेती है।

इसी प्रकार जब कोई करूणा का प्रसंग होता है तो वह हम पर विशेष प्रभाव डालता है और हम उसे पुन देखना चाहते है ? क्योंकि उस प्रकृया से हमे एक विशेष आनद की अनुभूति होती है। मनुष्य दु ख की पुनरावृत्ति नहीं चाहता। उसे सदैव आनदद या सुख की प्राप्ति होनी चाहिए ऐसा ही वह सोंचता रहता है।

जिस प्रकार दृश्य काव्य, नाटक इत्यादि से रसानुभूति होती है। उसी प्रकार 'श्रव्यकाव्य' भी आनंद एवं रस की अनुभूति का विषय होता है। उदाहरणार्थ, रामचरितमानस के अयोध्याकाड मे 'राम वन गमन' एवं 'दशरथमरण' के प्रसग को लोग निरतर सुनते है, भखमग्न हो जाते है, राते है, फिर सुनते हैं और पुन. रोते है। यह रोना सम्मुख घटित होने वाली करूण स्थितियों से उत्पन्न रोदन से पृथक होता है। काव्य के करूणार्द्रता के सम्बन्ध कथनित है - वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान। उमडकर आँखो से चुपचाप वही होगी कविता अनजान।" तात्पर्य यह कि रसात्मकता काव्य का विशेष गुण होता है और सगीत म अपेक्षित होती है।

सगीत काव्य की भाँति राग-द्वेष को नष्ट कर देने मे सक्षम है बशर्ते कि तन्मयता व तल्लीनता पूर्वक प्रस्तुत की जाय। स्वाभाविकता व सहजता से परिपूर्ण हो।

जैसे कोई सफल साधक यदि हमारे समक्ष किसी ऐसे राग की अवतारणा कर रहा हो, जिससे करूणा फूटी पडती है, कलाकार केवल 'आलाप' कर रहा है, 'भाषा' का आश्रय यद्यपि उसने नहीं ले रखा है वह अपने स्वर प्रयोग से ऐसी स्थिति ले आता है कि हम अपनी सुध-बुध खो बैठते है। वस्तुत स्वरों के द्वारा अभिव्यक्त करूणा का 'सवाद' हमारे हृदय मे स्थित 'करूणा' से होता है, वह जागृत हो जाती है। तब हमारी आँखों से सतत अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है, और ऐसी मानसिक स्थिति का निर्माण होता है, जिसमे चारों ओर से करूणा का समुद्र उमडने सा लगता है। इस प्रकार तत्क्षण भी हमारे हृदय मे स्थित व्यक्तिगत रागद्वेष की ग्रथियाँ विलुप्त हो जाती है। इस तथ्य से यह स्पष्ट हजो जाता है कि काव्य की भाँति सगीत कला से भी स्थायी प्रभाव मनोवृत्ति पर पडना स्वाभाविक सा होता है।

विभिन्न कलाओं द्वारा प्राप्त इस आनद की जो अनुभूति होती है वह अलौकिक होती है। आनदानुभूति के समय मनुष्य अपनी वैयक्तिक सीमाओं के बधन से मुक्तप्राय हो जाता है, उसका हृदया अपार हो जाता है। वस्तुत सामान्य व्यक्ति से एक विशिष्ट मानव बन जाता है।

सगीत एक व्यापक शब्द है, जिसें गीत, वाद्य और नृत्य तीनों का समावेश रहता है। इसमे गीत की प्रधानता होती हे, वाद्य उसका अनुकरणकर्ता होता है और नृत्य उपरजक। तात्पर्य यह कि वाद्य गीत का अनुसरण करते है और नृत्य वाद्य का अनुगामी।

आज सगीत शब्द का प्रयोग अर्थहीन गायन और वादन के लिए भी होने लगा है, ऐसी दशा मे जब हम प्राचीन आचार्यों की सगीत-सम्बन्धी उक्तियों का सामजस्य सगीत के अपने माने हुए अर्थ के साध बिठाने लगते है, तब असमन्वयात्मक का सर्जन

सा होने लगता है। एक विरोधाभास की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। आचार्य कश्यप ने राग और गीत का अतर व्यक्त करते हुए कहा है कि ग्रह अंश इत्यादि इस लक्षणों से युक्त स्वर-समूह 'राग' होता है। गीत मे भी इस स्वर समूह की योजना अपेक्षित है। यह स्वर समूह या राग गीत के चार अगो मे से एक आवश्यक तत्व या अग है। गीत के अन्य तीन अग है - पद, ताल और गति। तात्पर्य यह हुआ कि केवल राग, ताल और गति गीत के अग मात्र है तथा अर्थबोध और रस-परिपाक मे पद के सहायक।

साहित्य की स्वतंत्र सत्ता -

साहित्य की भी अपनी स्वतंत्र सत्ता हुआ करती है, संगीत की भाँति, गद्य भी श्रेष्ठ साहित्य हो सकता है + किन्तु यदि भावों के अनुरूप भाषा को छंदोबद्ध कर दिया जाय, तो उसमे एक विशिष्टता आ जाती है। उदाहरण के तौर पर यदि देखा जाय तो महाकवि कालिदास ने अपने खण्डकाव्य मेघदूत के लिए मदाक्राता छद का चयन किया है, क्योंकि वह भावानुकूल है। प्रश्न उठता है कि सगीत और काव्य-साहित्य के प्रयोजन रस के साथ वाणी, स्वर, ताल और नृत्य का केसा सम्बन्ध है और कितना है ? इस सम्बन्ध मे विचारणीय है कि व्यक्त और अव्यक्त दोनों प्रकार की ध्वनियाँ नाद की विभिन्न उपाधियाँ मानी गयी है। शब्द और स्वर का मूल एक है, इनमे सम्बन्ध जन्मजात है। दोनो का ही लक्षण भावों का प्रकाशन करना है। यह कारण है कि शब्द, स्वर, ताल, लय, वाद्य और नृत्य सभी भाव प्रधान रहे है इनमे रसमयता व भावुक्ता सर्वथा सन्निहित रही है।

वास्तव मे विचार करने पर ज्ञात होता है कि ज्ञान भाव और क्रिया का क्रमिक सतरण हमारे द्वारा किये गये समस्त व्यवहारों का कारण ही होता है। उदाहरण के लिए,

सुदर फूल के रग, उसके रूप और गध से हम उसकी ओर आकृष्ट हो जाते है। और हमारे हाथ उसे तोड़ लेने को उद्यत हो जाते है, या फिर सजा देते है। वस्तुत इन्द्रियों के द्वारा किसी भी विषय का ज्ञान होने पर उस विषय के प्रति कोई विशेष भाव सहृदयों के हृदयों मे उठाना स्वाभाविक ही होता है। जो हमसे अनुकूल क्रिया करवाता है। यह एक तथ्य है। किसी सुदर, आकर्षक वस्तु को देखकर उसके प्रति अनुकूलता का भार उठना स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार जब हम कोई कुरूप विरूप या जुगुप्सित वस्तु को देखते है तो हमारे मन मे एक प्रकार का विराग भाव उत्पन्न होता है और इस प्रकार हम उससे दूर ही रहना चाहते है। कोयल की उत्कूजन हमारे कानों मे मधु रस घोल देती है। जबकि कौवे की कर्कश आवाज चिढ़ाने वाली प्रतीत होती हे। इससे स्पष्ट है कि काव्य में भी गेयता, लापदारी का होना उसका काव्यत्व प्रदर्शित करता है।

प्राय· देखा जाता है कि कतिपय वस्तुओं, चेष्टाओं या स्थितियों का बोध हमारे विनोद का कारण बन जाता है और हमें बलात् हँसी आ जाती है। किसी नव वधू को विधवा होते देख शोक से विह्ल हो जाना या फिर किसी उद्धत व्यक्ति द्वारा निर्बल निरपराध पर प्रहार करते देख क्रोधाकुल जाना, सहज बाते हैं, यही नहीं किसी के त्याग, धैर्य, साहस इत्यादि को देखकर हमारे मन मे भी उत्साह का सचार बरबस होने लग जाता है। वर्षाकाल मे नदी के प्रचड वेग की भयकता का दृश्य भयभीत कर देता है।

इसी प्रकार काव्य के सन्दर्भ मे भी कहा जा सकता है कि कवि एक संवेदनशील प्राणी होता है फलत उसे अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वर्णनीय विषयों एवं उनके कारण मानव के हृदय मे घटित होने वाले परिवर्तनों की सम्यक पहचान मिल जाती है। साहित्य समाज का दर्पण होता है समाज मे जो स्थिति घट रही है उसका प्रत्यक्ष या परोक्ष

प्रभाव कवि या रचनाकार अथवा साहित्यकार पर पडे बिना रह ही नहीं सकता। यही कारण है कि वह विभिन्न घटनाओं और स्थितियों का यथावत् चित्रण करके पात्रों मे उन घटनाओं और स्थिति-परिस्थितियों की प्रतिक्रियाओं का वर्णन करता है जो कि विभिन्न उक्तियों एव चेष्टाओं के रूप मे होती है।

काव्यकार मानव विभिन्न चरित्रगत स्थितियो अथवा प्रवृत्तियों को भलीभाँति परख लेता है और उनके अतर को समझते हुए अपने पात्रों के चरित्र के अनुकूल ही उनसे तद्वत आचरण करता है। कवि को मानव हृदय की वास्तविक परख होती है। साहित्यकार द्वारा कल्पित पात्र और घटनायें, ऐतिहासिक ही हो आवश्यक नहीं किन्तु फिर भी प्राय वह श्रोता, दर्शक अथवा पाठक को सत्य सी प्रतीत हुआ करती है। दरअसल कवि द्वारा कल्पित घटनायें, दृश्याकन व चरित्रचित्रण तथा उन घटनाओं से कल्पित पात्रों पर होने वाली प्रतिक्रियाये स्वाभाविक होती है, यही कारण है कि वे पाठकों को पढ़ते समय सत्य ही मालूम पडती है। कवि मनुष्य हृदय के जिन भावों को विश्लेषित करता है और तदुपरान्त पात्रों के सवाद, कथनोपकथन एव आचरण के माध्यम से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है, वे भाव सनातन होते है। कमोवेश प्रकारान्तर से ही सही वे आज भी विद्यमान है, जो प्रस्तरयुग से चले आ रहे है।

अतीत की घटनाओं से प्रत्येक मानव सबक सीखता है और वर्तमान एव भविष्य मे वैसा ही करने की चेष्टा भी प्राय· किया करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि युद्ध या सघर्ष पहले भी होता था और आज भी होता है, साधन व माध्यमों मे परिवर्तन भले ही हो गया हो किन्तु मूलत भाव वही रहता है। उदाहरण के लिए आज का युग वैज्ञानिक युग है अत आज पहले युग के प्रस्तर के औजारों की जगह बम इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। अपनी पतिव्रता पत्नी के चुरा लिये जाने पर राम ने विलाप

किया था, यदि आज भी ऐसा घटना घटित हो जाती है और किसी मनुष्य की पत्नी वास्तव मे सुयोग्य पतिव्रता है तो वह रोयेगा जरूर, अर्थात् सुख, दु ख, भय, उत्साह, करूणा, हास सदा-सर्वदा से घटित होते चले आ रहे है। दूसरे शब्दों मे भावों की सत्ता अनादिकाल से रही है, अभिव्यक्ति के माध्यमों मे परिवर्तन, समय, सापेक्षता का कारण ही आज भी हम महाकवियों के सुंदर काव्यों का अवगाहन सहृदयता व सरसता पूर्वक करते है, चाहे वह 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' हो या फिर 'मेघदूतम्'। जयदेव का गीतगोविन्दम् आज भी सरस सगीतमयी आनददायिनी अनुभूति कराता है। सूर, तुलसी, मीरा के पद अपनी भव्यता व गेयता के कारण ही आज भी जनमानस के अन्तस मे समाये हुए है और विभिन्न सगीतमयी सुरनहरियों द्वारा प्रस्फुटित होते रहते हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि संगीत मे काव्य का स्थान महत्वपूर्ण है, उसकी भूमिका सर्वथा निरापद है।

काव्य एवं संगीत -

काव्य (साहित्य) एव संगीत के सम्बन्ध के बारे मे कहा जा सकता है कि जब हम अपने भावों को व्यक्त करते है, तब हमारा माध्यम केवल वाणी ही नहीं होता अपितु इसके साथ ही अग-प्रत्यंग की भाव भंगिमायें भी विविधश कार्य करती है। वाणी का उच्चावच्य भावों को प्रकट करने में काफी सीमा तक सहायक होता है। वस्तुत वाणी का यह उतार-चढाव यदि सगत न हो तो अभीष्ट अर्थ का सही बोध नहीं हो सकता। वाणी के इसी उतार-चढाव को 'काकु' की सज्ञा दी जाती है। जैसे यदि हम किसी के स्वागतार्थ उसके सामने प्रसन्न मुद्रा मे न पेश आकर, रोनी सी सूरत बनाये तो वह 'आगन्तुक' पुन मिलने अथवा आने का प्रयास नहीं करेगा। इसी प्रकार को व्यक्ति यदि सुदूर बैठा हो तो उसे बुलाने मे अथवा वार्तालाप करने मे हमारी आवाज

काफी तीव्र हो जाती है। इतना ही नहीं जब चिल्लाकर क्रोध की चरम सीमा तक जा पहुचते है तो, ऐसा स्वर 'दीप्त' कहा जायेगा। निर्वेद, ग्लानि, दीनता इत्यादि भावों को व्यक्तीकरण के समय अथवा शस्त्र के कारण हुए घाव से कराहते समय जिस स्वर की स्थिति होती है।

मद्र स्वर किसी का स्वागत भाषण करते रोगग्रस्तता या श्रान्तमय स्थिति मे प्रतीत होता है। ऐसी स्थिति मे थकी सी आवाज नींव या निम्न स्वर के अन्तर्गत आती है। स्वर की उच्च, दीप्त, मद्र और नीच इत्यादि अवस्थाओं को ही पाठ मे अलंकार के नाम से जाना जाता है। वाणी के भावानुरूप उतार-चढाव के फलस्वरूप ही सगीत के सप्त-सुरों और तीन सप्तकों का विकास संभव हुआ है। विभिन्न भावों को जब हम प्रकट करते हैं तो हमारी ध्वनि में उतार-चढ़ाव होता है उसके साथ ही साथ हमारी जो चेष्टाये या भावभंगिमायें होती है तथा हमारे द्वारा प्रयोग की जाने वाली शब्दो की गति मे भी अनेकरूपता उत्पन्न हो जाती है।

जल्दीबाजी या शीघ्रता मे या भय की अभिव्यक्ति मे हमारे शब्दों की गति में तीव्रता आ जाती है, जिसे 'द्रुत' कहा जाता है। इसी तरह हमारे विचार, वितर्क इत्यादि अवस्थाओ मे शब्दों की गति 'विलंबित' हो जाती है। जबकि सामान्य उच्चारण मे गति का स्वरूप 'मध्य' रहा करता है। यही कारण है कि प्राचीन सगीताचार्यों ने पात्रों के वार्तालाप के समय यथास्थान विलंबित, मध्य और द्रुत लय के प्रयोग का विधान किया है।

आचार्यों ने पाठालकारो के अन्तर्गत द्रुत एव विलम्बित की भी गणना की है। वस्तुत नृत्य कला का प्रादुर्भाव हमारी वाह्य आंगिक चेष्टाओं और गतियो से ही हुआ जान पडता है।

आरोह अवरोह की विभिन्नता -

वस्तुत' वाक्यों को बोलते समय उतार-चढ़ाव की स्थिति से यद्यपि अभीष्ट अर्थ की प्रतीत होती है तथापि वाक्य उच्चारण के समय होने वाला उतार-चढाव सगीत मे घटित होने वाले उतार-चढ़ाव अथवा आरोहावरोह का कारण होने पर भी उससे कहीं पृथक है, भिन्न है। कदाचित् इसीलिए बोलना और गाना दो भिन्न-भिन्न क्रियाये मानी जाती है। संगीत मे आरोह-अवरोह पर विशेष ध्यान दिया जाता है, उसका विशेष महत्व होता है, उस प्रक्रिया को ही 'अवधान' सज्ञा सगीत मे दी गयी है।

कोई भी काव्य अथवा कवि द्वारा प्रणीत नाटक इत्यादि स्वय नहीं बोल सकता नाटक या काव्य के पात्र स्वत आकर भाव-प्रदर्शन नहीं किया करते अपितु सन्निहित शब्दों से सहृदय पाठक जनों के अन्तस पटल पर एक चित्र सा अकित होता जाता है जो उस काव्य मे वर्णित होता है, हालांकि वह क्षणिक ही प्राय होता है। कदाचित इसी कारण ही दृश्यकाव्यों अथवा रूपकों/नाटकों का प्रादुर्वाव हुआ जिनसे कवि के द्वारा अभिप्रेत अर्थ की पूर्णरूपेण पुष्टि हो जाती है, उसका मूर्तमान स्वरूप प्रकट हो जाता है।

काव्यों मे नाटक अथवा रूपक को श्रेष्ठतम, कहा गया है - काव्येषु नाटक रम्य इसमे अभिनय प्रस्तुतीकरण के समय पात्र कवि-सर्जना के अनुरूप स्वाभाविक उतार-चढ़ाव अथवा जैसी दृश्यात्मक स्थिति होती है उसी के अनुकूल विविध प्रकार आंगिक चेष्टाओं एव हाव-भावों का प्रदर्शन करते है। ऐसी स्थिति मे अभिनता अथवा अन्य सहायक पात्रों द्वारा जिस प्रकार का मचन प्रस्तुत किया जाता है, वहीं दर्शक दीर्घा को मुग्ध कर लेता है और तत्क्षण के लिए वह प्राय सबकुछ भुला सा बैठता है। यही अभिनेयता की सफलता का रहस्य भी होता है।

वास्तविक स्थिति देश-स्थान एव काल को विस्मृत करके जब अभिनीत दृश्य व सम्बन्धित स्थिति में मुग्ध हो जाते है तो एक विशिष्ट प्रकार की आनदानुभूति होती है, वस्तुत आननद की यही स्थिति 'रस' कहलाती है। उस समय दर्शक सजीव प्राणी होते हुए भी लौकिक चेतना से पृथक सा प्रतीत होने लगता है। उस समय वह रसमयी दशा को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए काव्य को रस की आत्मा के रूप में जाना जाता है।

दृश्य चाहे सयोग का हो या वियोग का, अत्याचार पूर्व स्थिति का हो या फिर धर्म से अनुप्राणित, शोकावस्था या विवाहोत्सव का मगलमयी वातावरण प्राय सभी प्रकार की स्थितियों मे दर्शक रस का आस्वादन कर लेते है।

आनंदानुभूति -

आचार्य मम्मट के शब्दों मे कहा जा सकता है कि कवि की सृष्टि में सर्वत्र सुख ही सुख है, दु ख नहीं। कवि एव अभिनेता का वास्तविक ध्येय ही होता है स्थायी भावों को जाग्रत कर देना और रस मे आप्लावित कर देना, जिससे हमारे अग प्रत्यग मे एक विशेष प्रकार की थिरकन उठती है और हम रस सागर मे डूब से जाते है। गाते है, गुनगुनाते है।

वस्तुत अर्थबोध के द्वारा रस-परिपाक मे भाषा एक प्रधान कारक तत्व होती है। काकु और गति आदि उसके आवश्यक एव सहायक तत्व होते है। जब राग की सहायता लिये बिना ही रस की अनुभूति हो जाती है तो यह निष्कर्षित होता है कि सगीत की जन्मदात्री 'काकु' को तो नहीं छोडा जा सकता अपितु 'सारेग मयधनि' के बिना भी कार्य हो जाता है।

भाव सबोधन प्रक्रिया मे भाषा का सयोग अथवा विधान राग की शक्ति को अपना अग बना लेता है ताि अपनी शक्ति को बढ़ाता है। यही नहीं राग गीत का अनिवार्य अग बन जाता है और रस-परिपाक मे एक सुदर श्रेष्ठ सहायक उपादान की भूमिका का निर्वाह करने लगता है। भारतीय विद्वानों की मान्यता रही है कि 'गीत' (काव्य का अंग) के द्वारा श्रोताओ के हृदय मे स्थित आनद मात्र की अनुभूति करायी जा सकती है, उस समय उनके अदर स्थित रजोगुण व तमोगुण तिरोहित हो जाते है और उनके अन्त करण मे 'सत्वगुण' का आविर्भाव हो जाता है। वस्तुत यही काव्यानद है जो व्यक्तिगत रागद्वेष, चिन्ता, सोच, हर्ष, औत्सुक्य से परे हटकर एक विशिष्ट चेतनामयी स्थिति की सर्जना करने मे सर्वथा सक्षम होता है। वास्तव मे यही रसात्मक अनुभूति सगीत और काव्य का प्रमुख ध्येय होता है जो सगीत काव्य के स्थान को महत्वपूर्ण सिद्ध करता है।

श्रोताओं को आनद के रस-सागर मे डुबो देने की एक प्रकृया बडी ही नैसर्गिक व स्वाभाविक हुआ करती है, जो एक सच्चे सगीतकार एवं काव्यकार में पायी जाती है। जब कोई रससिद्ध गायक अपना गान प्रस्तुत करता है तो जनमन के अदर के तार झकृत होने लग जाते है, वस्तुत तब गायक के स्वरो मे व्यक्त करूणा से और व्यक्ति की स्वाभाविक करूणा का सवाद सा होने लगता है।

सांसारिक जीवन मे होने वाला अश्रुपात वस्तुत ऐसे अवसरों पर होने वाले रोदन से कहीं पृथक होता है। सचमुच वह रूदन आनंदमयी होता है, लौकिक नहीं। एक असीम शांति-सौरूप की स्थिति होती है। तात्पर्य यह है कि सगीत का ध्येय श्रोताओं के मन को मुग्ध कर देना उसे व्यक्तिगत रागद्वेष भावनाओं से दूर कर देना

ही होता है, जिसके फलस्वरूप श्रोतागण तन्मय हो जाते हैं और यही प्रयोजन काव्य का भी होता है। 'गीत' का प्रयोजन किसी सोये हुए भाव को पूर्णतया जाग्रत कर देना और उसी मे निमग्न कर देना होता है। यही 'आनद' गीत की आत्मा कही जाती है।

एक विचारणीय प्रश्न यह उठता है कि साहित्यकार सगीत की ओर से प्राय तटस्थ सा है और सगीतज्ञ भी जब रसतत्व का पूर्ण ज्ञाता नहीं है, तो ऐसी स्थिति मे सगीत और साहित्य अथवा काव्य की सामीप्यता कैसे सभव है ?

उदाहरणार्थ सस्कृत अथवा हिन्दी का अध्येता भरतमुनि के नाम से अवगत होता है, साथ ही उसे इस बात की भी जानकारी है कि नाट्य विधा के चार उपादान है, जिनमे 'गीत' भी सम्मिलित है। किन्तु उसे इस बात की पूर्ण जानकारी नहीं है कि गीत के चार अंग स्वर, पद, लय और मार्ग भी हैं। रस-प्रकरण का जब वह अध्ययन करता है तो वह शकुक, भट्टनायक, भट्टलोल्लक तथा अभिनवगुप्त आदि आचार्यों के नाम से परिचित हो जाता है, परन्तु उसके पास इस तथ्य को जानने का कोई माध्यम नहीं कि ये आचार्य प्रवर सगीत के महान ज्ञाता भी थे और सुधी-साधक थे। इन्हीं आचार्यों ने सम्पूर्ण 'नाट्यशास्त्र' को व्याख्यापित किया है जिसके अध्याय सगीत विषय से ही सम्बन्ध रखते है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सगीत मे काव्यकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वे प्राय· सगीत मर्मज्ञ भी हुआ करते थे। वास्तव मे 'नाद' के रूप 'स्वरवान्' और 'अभिधानवान्' है। स्वरवान् रूप वीणा, वेणु या गायक के कठ में गुंजित होता है और भाषा-सापेक्ष न होते हुए भी 'व्यजक' होता है जबकि अभिधानवान् रूप काव्य में साहित्य मे प्रस्फुटित होता है और व्यजना ही इसका भी प्राणस्वरूप ही भगवती सरस्वती की वीणा को नाद के स्वरवान् रूप का प्रतीक माना जाता है और 'पुस्तक' को अभिधानवान् रूप का संकेत। जब तक साहित्यकार की

ओर से वीणा और सगीतकार की तरफ से 'पुस्तक' की अपेक्षा नही होगी तब तक दोनों मे निकटता आने में दिक्कत होगी। उदाहरणार्थ भरतमुनि ने जहाँ अपने नाट्य शास्त्र मे स्थायी भाव, अनुभाव, सचारी भाव जैसे पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है वहीं दूसरी ओर स्थायी, स्वर, अनुवादी स्वर और सचारी स्वरों का भी प्रयोग किया है।

आज का गीतकार छद की गेयता के बारे मे कहाँ तक और कितना विचार करता है। इसके साथ ही स्वर योजना कहाँ तक आवश्यक है। यह सब कुछ उसी पर निर्भर करता है। हिदी जगत आज जिस 'गीतकार' के रूप से अवगत है उसके लिए प्राय· संगीतिक ज्ञान की विशेष आवश्यकता नहीं है आधुनिक समय का गीतकार अपनी एक विशिष्ट 'धुन' या टरे का सर्जक होता है, जिसे वह विभिन्न अवसरों, कवि-सम्मेलनों मे गुनगुनाता है। स्थिति विचारणीय है।

महाकाव्यों मे वस्तुत जिन छंदों का उपयोग हुआ है वे प्राय पाठ्य ही कहे जाते हैं, जो केयल पाठ्य के रूप में उपयोगिता रखते है। आचार्य भरत द्वारा कुछ विशेष प्रकार के छंदों का चयन किया गया जो 'गेय पद' कहे गये। इसी प्रकार गीतकार जयदेव कवि विद्यावति, सूर और तुलसी का पद शीर्षक से जानी जाने वाली रचनाए गेय छदो मे ही रचित की गयी है, जिसके कारण उन्हें 'पद' कहा जाता है।

पुरूषार्थ चतुष्टय और संगीत -

भारतीय मनीषियों ने सदेव पुरूषार्थ चतुष्टय को महत्व प्रदान किया है और उनकी द्रृष्टि मे प्रत्येक विद्या का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति है। यहाँ तक कि वात्स्यायन ने कामशास्त्र को भी इस पवित्र लक्ष्य की पूर्ति का साधन माना है।

इसी प्रकार संगीत हमारे देश मे यज्ञों का एक अनिवार्य अग था, जिनके द्वारा आधिदैविक विभूतियों को प्रसन्न करने का अनुष्ठान किया जाता था। उनकी सगीत प्रियता एक सर्वसम्मत सत्य थी। यही कारण है कि ब्रह्मा यदि गायक है तो विष्णु मृदंग वादक तथा शकर डमरू बजाते है तथा अलौकिक नर्तन करते है। सरस्वती वीणावादिनी है तो पार्वती नृत्यपररगता हैं।

नाद के दो रूपों- साहित्य और सगीत को मनुष्यता का लक्षण माना जाता रहा है, इससे अपरिचित व्यक्ति को हमारी काव्य परपराओं मे पशु की सज्ञा प्रदान की गयी है -

"साहित्य सगीत कला विहीन । साक्षात् पशु पुच्छविषाण हीन [1]।

सगीत का आदि स्थल अर्थात् उदगम स्थान 'वेद' को माना गया है, जो सगीत वेदों मे मार्गव अथवा अन्वेषण का परिणाम है, उसे 'मार्ग' सज्ञा दी जाती है, इसका स्वरूप शाश्वत है और लक्ष्य है मोक्ष।

शास्त्रज्ञों ने कला और उससे उत्पन्न होने वाले आनद मे कार्य-कारण सम्बन्ध ढूढने की चेष्टा की है।

उन्होंने आनद जनक नियमों का निर्माण नहीं अन्वेषण किया है। नाद सौन्दर्य जन्य आनंद अनत है, उसकी अभिव्यक्ति के साधन भी अनत है। इसकी परपरा को ही अद्यावधि आचार्यों शास्त्रकारों ने बरकरार रखा है जिनमें आचार्य भरत अभिनवगुप्तादि के नाम उल्लेखनीय है। आचार्य अभिनव गुप्त ने अध्यात्म शास्त्र, साहित्यशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, सगीतशास्त्र इत्यादि का गहन अध्ययन किया थ। नाट्यशास्त्र (भरत) मे सपूर्ण जीवन

1- आचार्य भर्तृहरि।

के अभिनय की शिक्षा दी गयी है। आचार्य अभिनवगुप्त ने इसी नाट्यशास्त्र पर अपनी प्रसिद्ध, अनुपम टीका 'अभिनव भारती' लिखी है। सगीत जगत मे उत्पन्न अनेक भ्रांत पूर्ण स्थितियों का समाधान 'अभिनव भारती' में हुआ है। इसी प्रकार आदिकाव्य 'रामायण' को पाठ्य और गेय दोनों मे ही मधुर कहा गया है। तत्री पर अवसर के अनुसार इसकी योजना दुत, विलंबित और मध्य लय में की जा सकती है। गांधर्व के तत्व को समझने वाले वे व्यक्ति जो वीणा के मद्र, मध्य और तार स्थानों मे अभीष्ट मूर्च्छना की स्थापना मे समर्थ है, आदिकाव्य मे इन्ही रूपों मे प्रस्तुत करते थे।[1] इसी प्रकार महाकवि कालिदास के काव्य मे सगीत के साध्य स्पष्टतया प्राप्त होते है। इस शास्त्र के सिद्धान्त और प्रयोग दोनों ही पक्षों पर महाकवि कालिदास का पूर्णाधिकार था। उनकी रचनाओ मे वीणा वल्लभी जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है। मेघदूत मे यक्ष द्वारा अपनी प्रेयसी का बखान करते हुए मेघ का कथन है कि 'ओ सौम्य ! मेरी प्रियतमा अपनी गोद में या मलिन वसन पर वीणा को रखे हुए अपनी ही मिलाई हुई मूर्च्छना को बार-बार भूलती हुई, आसुओं से सिक्त तत्री को यथास्थान मिलाकर मेरे नाम से अकित गेयपद को गाने की इच्छा करती होगी।[2]

इसी प्रकार अनेक आदि काव्यकारों व उनकी कृतियों मे अनेकानेक सांगीतिक तत्व मिलते है, जिनसे काव्य एव सगीत मे सामजस्य के स्वर सुनाई पडते है। इस सन्दर्भ मे हम एक सास्कृत भाषा की सुप्रसिद्ध उक्ति का उल्लेख कर सकते हैं -

---

1- रामा0 बालकाड, अध्याय 6 श्लोक 7-10

2- उत्सगे वा मलिन वसने सौम्य निक्षिप्प वीणा ।" (मेघदूत)।

तदनुसार,

न सा विद्या न सा रीतिर्न

तच्छास्त्र न सा कला।

जायते यन्न काव्यागमहो,

भारो महान क्रवे ।।"

अर्थात् जो काव्य का अग न हो, ऐसी न कोई विद्या है, न कोई रीति, न कोई शास्त्र है, न कला। अहो कवि का उत्तरदायित्व महान है।"

ध्रुवपद में काव्य-साहित्य - (संक्षिप्त विवेचन) -

ध्रुवपद सगीत मे काव्य (साहित्य) को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस सन्दर्भ मे हम मध्ययुगीन इतिहास के ग्वालियर नरेश महाराज मानसिह तोमर की राज्यावधि का उल्लेख कर सकते है। उन्होंने अपने प्रदेश की लोकभाषा को राज्यभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया था। इसके साथ ही साथ उस क्षण मे स्वयमेव गीत-काव्य-रचना करके तथा अन्य प्रतिभावान गायको को भी इस ओर प्रवृत्त किया। इन लोगो ने अनेक ऐसे गीतों की रचनाएँ कीं जो अबुल फजल के विचार से श्रोताओं के प्रत्येक वर्ग को रुचिकर लगे। इस प्रकार के काव्य-गीतों मे देवी-देवताओं की स्तुति के अतिरिक्त म्पत्य जीवन की मनोरम झलक मिलती थी, जो प्रत्येक सहृदय को आकृष्ट कर लेने मे पर्याप्त रूपेण सक्षम थे। इनमे अनेक प्रतापवान आश्रयदाताओ का विरूद गान भी किया गया मिलता है। इतना ही नहीं इन गीतो की अनेक ऐसे उत्सवासरों पर चर्चा भी की गयी है, जो कुछ क्षण के लिए जन-सवर्ग को वास्तविक जीवन की कठोर विषमताओं से दूर कर देती है।

मानसिह के दरबार मे सहस्रों गीत रचे गये थे और 'मानकुतूहल' का भी निर्माण हो चुका था, जिसमे नयिका-भेद जैसे काव्य के अगों का भी विवेचन किया गया था।

कालातर मे जब राज्याश्रय की परपरा और नाट्यशालाओं की स्थिति नष्टप्राय हो गयी तो साहित्य मनीषियों का सम्बन्ध भी साहित्य के गेय रूप के साथ हटता चला गया। इसी प्रकार ध्रुवपद साहित्य भी आलोचकों की दृष्टि उपेक्षा का ही विषय बना रहा। यह बात और है कि बीसवीं सदी के हिन्दी आलोचक द्वारा स्वामी हरिदास की रचनाओ को ऊबड-खाबड कहकर ध्रुव पदों की चर्चा मात्र कर दी गयी थी।

बीसवीं सदी ईस्वी मे 'सगीत रत्नाकर' की भी उपेक्षा की गयी जो मानसिह तोमर और राजा रामचद्र बघेला की राजसभाओं से लेकर मुगल शासक शाहजहाँ तक के दरबारों मे विचारणीय रहा, चर्चा का विषय रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक लोगों की नजर मे मात्र स्वर और राग ही शेष रह गये।

इस प्रकार वाग्गेयकारों की सर्वोत्कृष्ट परपरा के तिरोहित हो जाने से ध्रुवपदो का अद्यावधि वास्तविक मूल्याकन नहीं हो पाया है। जबकि अनेक दृष्टियों से ध्रुवपद सग्रहों मे बहुमूल्य जानकारी प्राप्त हो जाती है।

उदाहरण के तौर पर सुप्रसिद्ध सगीतज्ञ तानसेन के जन्यकाल पर प्रकाश डालने वाले एक ध्रुवपद मे क्षत्रपति राजा मान की प्रशस्ति वर्णित है, जिसका सम्बन्ध राजा मानसिह तोमर से माना जा सकता है।[1]

1- छत्रपति मान राज, तुम चिरजीव रहो, जौ लौ ध्रुव मेरू तारौ।
चहूँ देश से गुनीजन आवत, तुम पे धावत तबहि को जग उज्यारौं।
तुमसे जो नहीं और कासे जाय कहूँ दोर, मोये रक्षा करन हारो।
देत करोरन मुनीजन को अजाचक किये तानसेन प्रातेपारो।"

इस ध्रुवपद से यह स्पष्ट होतो है कि मानसिह तोमर के मृत्युकाल 1516 ई0 से पूर्व तानसेन राजा के समक्ष प्रस्तुत करने योग्य ध्रुवपदों की रचना करने मे सक्षम हो चुके थे। इसी प्रकार एक ध्रुवपद मे राजाराम वघेला की दानशीलता का तथा उसकी आश्रयदाता प्रवृत्ति का प्रशस्ति गान किया गया है। इससे तानसेन की धार्मिक अभिवृत्ति का भी संकेत प्राप्त होता है। यथा -

मगन रोर दालिद्र भौ कौन हरै ।
जो निरद के जिअ मे जौन धरै
कहा भयौ जौ भये छत्रपति नरेस,
राम राजा को परसाद पाये
बिना विपतिसागर कौन तौर तरै ।
× × × × × × × ×
वीर भान जू कौ नद, काटन दुखदद-फद,
बिनती करत तानसेन उरै ।
उतरि दिसा तौ पछिम जो उगै,
भान देव कौ रामुस्थान करै ।

ध्रुवपदों की सगीत शास्त्र सम्बन्धी महत्ता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस सन्दर्भ मे तान सेन की यह रचना उल्लेखनीय है -

धैवत पचम, मधिम गधार,
रखेपरजसुर साधि साधि गुनी।
निषाद रे। तेरह अलकार, बाईस श्रुति साधिवाद उचारि सा रे।
ग म प ध नि सा सुघर स नि ध प म ग रे ।

त्रिविध-त्रिवेध, सुरन मध्य तृतीय तृतीय विर्तत जानत विदवान सप्तसुर, तीनि ग्राम इकईस मूर्च्छना, छत्तीस भेदनादवाद तानसेन विधान रे।'

षडजग्राम के ध प म ग रे सा नि भरत की षड्जग्रामीप निषाद आदि मूर्च्छना का अवरोहात्मक रूप है। तानसेन ने इसकी साधना करने की बात कही है और अलकारों एव श्रुतियों का ज्ञान भी प्राप्त करने हेतु कहा है। तानसेन का कहना है कि 'सा रे ग म प ध नि' का उच्चारण करो, उनके इस निर्देशन से यह सकेतित होता है कि आचार्य भारत के षड्जग्राम के नि सा रे ग म प ध, अकबर के काल मे सा रे ग म प ध नि कहे जाने लगे थे।

अदारग का एक ध्रुव पद[1] इस प्रकार हो जा यह सिद्ध करता है कि तानसेन और उसके वशजों को ग्राम एव मूर्च्छना के सिद्धान्तों को सम्यक जानकारी हासिल थी। अनेक ध्रुव पदो में 'सपतगुप्त' और 'सपतप्रकट' स्वरों की मूर्च्छनानुसारिणी और मेलानुसारिणी दोनो ही सज्ञाओं की तरफ इशारा किया गया है।

सम्राट औरगजेब प्रारंभिक काल के भी कतिपय विभिन्न विधि त्योहारो से सम्बन्धित ध्रुव पद प्राप्त होते है। इनमे 'मगलामुखियों' द्वारा प्रार्थना की गयी है -
"वरस लौं मगलामुखीनि सग खेलौ धमारो ।"

अनेक प्रकार के ध्रुवपदों में नखशिख, अंग, ऋतु वर्णन, माणिका भेद इत्यादि विषय भी वर्णित किये गये है। इसके साथ अर्थालकारों की भी सुन्दर सयोजना मिलती

1- होत मधिम खरज पंचम, रिखब धैवत गधार
निषाद मधिम पचम सुर।
अदारग जाकौ व्यौरो काहू सो न बूझिये,
जे जानत है, तिनि पायौ बडौ गुर।।
--- अदारग का ध्रुवपद।

है। उदाहरणार्थ तानसेन का एक वर्णन -

झूमि-झूमि आवत, नैना भारे तिहारे।

विधुरी अलकैं स्याम घन सी लागत

झपकि - झपकि उधरि जात मेरे जान तारे

xxxxx तान सेन की प्रभु सदाई छके

रहत कोकिस की धुनि मोहिं बन अजन कारे ।'

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा और संदेह अलकार का एक सुदर प्रयोग निम्न ध्रुववद मे दृष्टव्य है -

त्रिवेणी उलटि वही मानो तिरछी चितवन

त्रीआ पिया तन देखो। त्रिवेणी गगा -

सलिला (सरिता) को सग लिए सागर सौ कछु

अनवन देखौ। केधों कहूँ पतितन घेरौ केधों

कहूँ पास मोछ केधों बहुराइबे के उनगन पैरवे।

तानसेन के प्रभु मोहिनी सी पढ़ि डरति

कैधौं कहूं आगै सकर मुनि देशो ।"

इसी प्रकार अनेक उदाहरण प्राप्त होते है जिनसे तत्कालीन झाँकी का दर्शन प्राप्त होता है।

6- वाग्गेयकारों की रचना -

विभिन्न रवाइतों से पता चलता है कि प्रागैतिहासिक युग मे गायन, वादन एव नृत्य का स्वतत्र विकास हो चुका था और रसास्वादनार्थ उनका प्रयोग नाट्य कला मे भी किया जाता था। नाट्य के सन्दर्भ में प्राप्य विवरणानुसार भरत द्वारा सर्वप्रथम भू-लोक मे इसका प्रादुर्भाव किया गया तदुपरान्त उनके उत्तराधिकारियों 'कोहलाचार्य आदि' द्वारा उसका विकास हुआ। उस समय तक अनेक प्रकार की वीणाओं का आविष्कार किया जा चुका था यथा - डमरू, ढक्का, मृदग आदि।

प्राचीनकालीन रचनाएँ -

प्राचीनकालीन सगीत-सर्जकों अथवा वाङयकारों से लेकर आधुनिक युगीन वाग्गेयकारों की यथा सभव प्राप्य रचनाओं एव कृतियों का क्रमिक वर्णन कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है -

(1) प्रजापिता ब्रह्म या स्वयभू नाट्यवेद के आविष्कर्ता थे, जिन्होने महामुनि भरत को शिक्षित किया था। उनकी वीणा का नाम था - ब्रह्मवीणा अथवा घोषा, घोषक, घोषवती एव एकतत्री। इनमे एकतत्री को समस्त वीणाओं की जननी माना गया है।[1]

(2) **शंकर अथवा शिव** - 'नंदिकेश्वर तारिका' के अनुसार भगवान शिव के डमरू से चौदह वैयाकरणिक सूत्रों की उत्पत्ति हुयी जिन्हें माहेश्वर सूत्र कहा जाता है। यही समस्त वाङमय तथा इनमे प्रदर्शित स्वरवर्ण सगीतस्वरों का आधार है। स्वरवर्णों का सागीतिक रूप है यथा अ इ उ को क्रमश षड्ज, ऋषभ, गाधार के रूप मे भी जाना जाता है।[2] नृत्यकला के आविष्कर्ता भगवान शंकर को प0 उमापति के विचार से

1- प्रकृतिस्सर्कवीणानायेषा श्रीशाङिणोदिता - शांङदेव.

2- अइउण, सरिगा· स्मृता - रूद्रडमरूमवसूत्रविवरण ।

पाच रागों का जनक भी माना गया है' -

"मयेव पञ्चभिर्वक्त्रै सृष्टा पूर्वकुतूहलात् ।"

'सुधाकलश' मे शकर को ही मुरज या मृदग का आविष्कर्ता कहा गया है। 'औमापतम' नामक रचना मे स्वर, मूर्च्छना, जाति, प्रबध, राग एव वाद्यादि के विषय में प्राप्य वर्णन भरत संप्रदाय से मेल नहीं खाता। सभवत उस ग्रथ की रचना शिवमतानुयायी किसी पश्चात्वर्ती लेखक द्वारा की गयी है।[1]

सगीतरत्नाकर की व्याख्या मे कल्लिनाथ द्वारा शाङ्र्गदेव के अनिर्दिष्ट कतिपय रागों के लक्षणों के विषय मे उमापति द्वारा चर्चा विस्तार से की गयी है। अनालम्बी वीणा को भगवान शंकर का माना गया है।

नंदिकेश्वर के सिद्धातों का प्रतिपादन करने वाले ग्रथ 'भरतार्णव' मे लास्योद्भाविका पार्वती के सिद्धान्तों के विषय मे प्रतिपादन करने वाले ग्रथ 'भरतार्थचन्द्रिका' का उल्लेख करता है।

रससिद्धांत के आचार्य नंदिकेश्वर अथवा तड्गु जो कि ताण्डव नृत्य के प्रवर्तक माने जाते है। उनके सिद्धांतो का 'नंदिकेश्वरतारिका' मे मिलता है, जिसके टीकाकार 'उप्मन्यु' है। नंदिकेश्वर के तीन 'ग्राम' नद्यावर्त, जीमूत और सुभद्र की ग्रामों से पृथक प्रतीत होते है।

'भरतार्णव' में बारहवीं शताब्दी ई0 के ग्रथकार हरिपाल तथा उनको मिली उपाधियों का उल्लेख मिलता है। हरिपाल रचित 'सगीत सुधाकर' भी एक उल्लेखनीय ग्रथ है।

1- सगीतचिन्तामणि, आचार्यवृहस्पति, पृ0 26

'निगीत' या 'वहिर्गीत' के आविष्कार नारद क सिद्धान्तो का विवेचन 'पचमसारसंहिता' एव 'नारदीय शिक्षा' मे हुआ है। नान्यदेव के मतानुसार 'नारदीय शिक्षा' की व्याख्या शुभाकर नामक आचार्य ने की है। 'पचमसारसंहिता' मे रागों का ध्यान का भी वर्णन मिलता है।[1]

इसी प्रकार 'सगीतमकरद' नामक रचना मे महामाहेश्वर (अभिनवगुप्त, 10वीं शती0) के उल्लेख के साथ ही 'सगीत रत्नाकर' के अनेक श्लोक भी है, इसका रचना काल 13वीं शती के अतिम भाग या उसकी परवर्ती रचना है।

स्वरद्रष्टताओं मे धैवत एव निषाद के दृष्टा तुम्बुरू के सिद्धान्तो का प्रतिपादन 'तुबुरूनाटक' मे हुआ है। 'सगीतसार' एव 'सगीतदामोदर' मे उक्त ग्रन्थ के श्लोक उद्धृत है, कलावती नामक वीणा तुम्बुरू की मानी गयी है।[2]

महर्षि भरत द्वारा नाट्य के सभी अगो पर विधिवत विचार किया गया है। इसके साथ ही उन्होंने सगीत के मूलभूत सिद्धान्तों का भी सम्यक प्रतिपादन किया है।

इन्होंने आत्रेय वशिष्ठ पुलस्पादि प्रमुख ऋषि-मुनि परपरा को नाट्य विद्या का प्रवचन किया। यही नहीं श्रुतिसिद्धान्त, ग्राम, जाति एव सवाद सिद्धान्त की दृष्टि से उनका योगदान अप्रतिम है।

भरतनाट्यशास्त्र का जो रूप इस समय प्राप्य है वह कोहल, वत्स, शांडिल्य, धूर्तित इत्यादि की कृतियों मे मिलता है। भरतनाट्यशास्त्र मे कई वीणाओं का नामोल्लेख हुआ है जनमे विपची, चित्रा, कच्छपी व घोषक आदि। इस सन्दर्भ मे भातखडे का

1- 'विचिन्वती सौरभमोदमाना कामोदरागा कथिता विदग्धै।' 'पचमसार संहिता'

2- कलावती तुम्बुरोस्तु - सुधाकलश।

मत उल्लेखनीय है कि 'नाट्यशास्त्र' के केवल तीन अध्यायों मे सगीत सम्बन्धी भरताचार्य के ववतव्य विस्तार से मिलते है, पर उसमे राग-रागिनियों का कोई उल्लेख नहीं है।[1]

सगीत सम्बन्धी रचनाओं मे कोहल मतानुयायियों के कोहलमतम् तथा कोहलरहस्यम् नाम उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार रत्नाकर के व्याख्याता सिह भूपाल ने आचार्य दत्तिल का उल्लेख किया है। श्रंगारशेखर कृत 'अभिनयभूषण' के अनुसार शुक्रमत की चर्चा करने वाली रचना 'शुक्रमतम' है।

पाण्डव अर्जुन के सम्बन्ध मे ऐसा वर्णन मिलता है विश्वावसु के शिष्य अर्जुन ने अज्ञातवास के दौरान विराटपुत्री 'उत्तरा' को 'ध्रुव' आदि सप्ततालों की शिक्षा देने के लिए 'सप्ततालदीपिका' नामक ग्रथ की रचना की।

देशी संगीताचार्यों की रचनाएं -

कतिपय देशी संगीत के आचार्यों की रचनाएं उल्लेखनीय है जैसे- याष्टिक की 'याष्टिक संहिता' जिसमें भाषा, विभाषा एव अन्तर भाषा नामक राग भेदों का विवेचन किया है। 'आंजनेय' का 'आजनेयसंहिता' अथवा 'हनुमत्संहिता' जिसे 'भरतरत्नाकर' भी कहा जाता है। इनके विचार से जिन रागों मे श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति आदि का नियम नहीं होता और जिन पर विभिन्न लोकरूचियों का प्रभाव प्रधानत होता है उन्हे 'देशी राग' कहा जाता है।[2]

'काश्यपसंहिता' मे 'वृद्धकाश्यप' के विचारों का समावेश मिलता है, जो स्वरों की सज्ञा पद्रह मानते थे। 'विशाखिल' महोदय को सप्तगीतों - मद्रक, अपरान्तक,

---

1- भातखंडे उत्तर भारतीय सगीत का स0 इतिहास, पृ0 4.

2- येषा श्रुतिस्वरग्रामजात्यादिनियमो नहि। नाना देश गतिच्छाया देशिरागास्तु ते स्मृत ।' आंजनेय

उल्लोष्य, प्रकरी, ओविषक, रोविन्दक और उत्तर - का आचार्य माना गया है।

चतुर्थ या पाँचवी शताब्दी के शार्दूल कृत 'हस्ताभिनय' मे सोलह भेदों का वर्णन प्राप्त होता है। एक बौद्धाचार्य राहल ने 'भरत वार्तिकम' मे नाट्यशास्त्र की व्याख्या प्रस्तुत की है।

आचार्य मतग की 'बृहद्देशी' (आठ अध्यायों से युक्त) एक महान सागीतिक ग्रथ है जिसमे ताल और वाद्य पर भी विचार किया है।

मतग को 'चित्रा वादक' भी कहा गया है - मतंगो वाकस्तस्याश्चैत्रिको नाम नापर ।[1] सर्वप्रथम वीणा पर सारिकाओं की योजना का श्रेय इन्हे ही है। वस्तुत भारतीय सगीत शास्त्र मे उनकी देन महत्वपूर्ण रही है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने 'नाट्यशास्त्र' मे 'कीर्तिधर' का उल्लेख किया है, जिनकी रचना 'कीर्तिधरीयम्' है। सुधाकलश (नवीं शता0) की रचना 'सगीतोपतिषत्सार' है, ये राजशेखर के गुरू जैनाचार्य के शिष्य थे। इसी प्रकार आचार्य लोल्लट, घटक, रूद्रत, सागर, नदी, अभिनवगुप्त इत्यादि आचार्य भी सगीतिक योगदान हेतु न्यूनाधिक रूपेण उल्लेखनीय हैं।

कतिपय मत्स्यं एवं आधुनिक रचनाओं का परिचय -

प0 अहोबल (17वीं शताब्दी) ने 1650 मे 'सगीतपारिजात' नामक सगीत ग्रन्थ की रचना की, जिसे उत्तरी और दक्षिणी दोनों सगीत पद्धत्तियों का आधार ग्रन्थ माना जाता है।

---

1 - नान्यदेव.

पडित जयदेव (12वीं शता0) जहा एक ओर सस्कृत के प्रकाण्ड पडित थे तो दूसरी ओर सगीत के। इनकी अमरकृति 'गीतगोविन्द' गेयपद से सुसज्जित है।

फिरोज फ्राम जी की प्रमुख रचनाए ही सितारगत तौड सग्रह, ख्याल गायिकी, दिलखुश उत्सादी गायकी, एनसाइक्लोपीडिया, तानप्रवेश, भारतीय श्रुति-स्वर शिक्षा, राग शास्त्र, सगीत श्रुति, स्वर शिक्षा, राग-शिक्षक, सगीत लहरी इत्यादि।

ग्वालियर घराने के जन्मदाता (16वीं शताब्दी) सम्राट मानसिह तोमर कृत 'मानकौतूहली प्रसिद्ध सगीतात्मक रचना है जिसमे सगीतशास्त्र पर प्रकाश डाला गया है। इसका अनुवाद फकीरूल्ला मे फारसी भाषा मे 'सगीत दर्पण' नाम से किया है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्वरमेलकलनिधि' के रचनाकार प0 रामामात्य विजयनगर साक्राष्य से सम्बन्ध रखते थे। गढ़ा (म0प्र0) के शासक हृदयनारायण देव की रचनाएँ है, हृयप्रकाश एव हृदय कौतुक'। दक्षिण भारतीय आचार्य पं0 व्यकटमुखी की अमरकृति 'चतुर्दंडिप्रकाशिका' एक अनूठी सांगीतिक रचना है।

प0 श्रीनिवास जी की रचना 'रागतत्व निबोध (18वीं शताब्दी) भी उल्लेखनीय है।

साधुसंगीतज्ञ प0 ओंकारनाथठाकुर की 'सगीतांजलि मे क्रियात्मक व कलात्मक दोनों ही पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इसके 6 भाग प्रकाशित हो चुके है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'प्रणवभारती' नामक पुस्तक की भी रचना की। इन रचनाओं मे सगीत शास्त्र की अनेक गुत्थियों को सुलझाने का सार्थक प्रयास किया गया है। सगीताजलि मे आपने स्वरचित स्वरलिपि पद्धति को अपनाया है।

घरानेदार बंदिशों की गायकी

उस्तादो के दुर्लभ ग्रामोफोन-रिकार्डों से कुछ संगीतलिपियाँ

☐ जयदेव पत्की

१. पं० ओंकारनाथ ठाकुर : ग्वालियर-घराना

● राग : नीलांबरी

मितवा, बालमवा जाय बसे बिदेसवा।

पण्डित जी का यह सर्वोत्कृष्ट रिकॉर्ड है। श्रुतियुक्त स्वर, भावनाप्रधान आलापचारी तथा बढत, पद्धति का स्वर-विस्तार, इन सभी का इस रिकॉर्ड मे इतना सुंदर समन्वय हुआ है कि कई बार सुनकर भी कान अतृप्त से ही रहते है। शुरू मे ही पंडित जी का लिया हुआ उठाव मन पर विचित्र प्रभाव उत्पन्न करता है।

प
सा - - निगा - - निसा* * * * धसारेग मम गग- रेसानि-
* * * आऽ ऽ ऽ ऽऽ* * * * आऽऽऽ ऽऽ मऽऽ ऽऽऽऽ

पध- - * *धनि सारेगरेग-
ऽऽऽ ऽ * *मीऽ मऽऽऽऽऽ

एकताल / विलंबित

×　　　　　　　　　　　　　　०　　　　　　　　　　　　　　२
रे　　　　　　　　　　　　-| *　　　　　　　　**रेगमग | रेगमगरेगमग　　रेगरेग-रे
वा　　　　　　　　　　　　ऽ| *　　　　　　　　**आऽऽऽ | ऽऽऽऽऽऽऽऽ　　ऽऽऽऽऽऽ

०　　　　　　　　　　　　　३　　　　　　　　　　　　　४ सानि
सानि--　　निगानिगानिसा-नि | *निनिसा-　　　　-सा-- | -,-रेनिध　　-ध-धनिग-
बाऽऽऽ　　　　　ऽऽऽऽऽऽऽऽ | *लमऽऽ　　　　ऽवाऽऽ | ,ऽऽऽवाऽ　　ऽमीऽतऽऽऽ

×　　　　　　　　　　　　　　०　　　　　　　　　　　　　　२
रे　　　　　　　　　　　　* | *सारेगम　　　　गमगमगरे | -गरेग-रे　　　　रेसानि-
वा　　　　　　　　　　　　* | *आऽऽऽ　　　　ऽऽऽऽऽऽ | ऽऽऽऽऽऽ　　　　बाऽऽऽ

०　　　　　　　　　　　　　३　　　　　　　　　　　　　४
नि--ध　　　　　धनिनिसा | -सा--　　　　--निसा- | --निगा-　　　　--रेम

×		०		२		
मप	-	-	पधपमप---	रे---मरेगुरे	*	
सेऽ	ऽ	ऽ	येऽऽऽऽऽऽऽ	ऽऽऽऽऽऽऽऽ	*	

०		३		४	
सारेमपध--प	म	--ग--	--ग-रे	*सारेगु--रे	गानिनिधधनिगु-
येऽऽऽऽऽऽव्रि	दे	ऽऽऽऽऽ	ऽऽऽऽऽ	*एऽऽऽऽस	पाऽऽऽमिऽतऽ

×		०		२ नि	
रे	*रेगम-	गुरेसा-रे	निध*	*निधसा--	-
वा	एऽऽऽऽ	बाऽऽऽऽ	ऽऽ*	*मितवाऽऽ	ऽ

०		३	सा	४	
*	सारेमपनिध	सा-सांरें	निधप-*	*	*ममपपधनिध
मं	एऽऽऽऽ	ऽऽमित	वाऽऽऽ*	*	*येमिऽतऽवाऽ

×		०		२	
सां	निधसा-	*	*	*	प,पधसारेगुं-
ऽ	ऽऽवाऽ	*	*	*	आ,आऽऽऽऽऽ

०		३		४	
रेंसानिध--	*	पधधसासारें	-*	**सारें-	-गुंरेंसा-*
वाऽऽऽऽऽ	*	मिऽतऽवाऽ	ऽ*	**वाऽऽ	ऽऽवाऽ*

×	म	प०		२	
*	सारेंग-रेंसांनिध	मगु---*	*	**सासारेरेमम	पधसांरेंगुंरेंसांनि
*	वाऽऽऽऽऽऽऽऽ	वाऽऽऽ*	*	**आऽऽऽऽऽ	ऽऽऽऽऽऽऽऽ

०		३	म	४	
धपमगु--	*	****सा-रेगु	गा-रेमरेमप-	मपध-पधसा-	*
ऽऽवाऽऽऽ	*	****आऽऽऽ	ऽऽऽऽऽऽऽऽ	ऽऽऽऽऽऽऽऽ	*

×		०		२	
**निधसा	-	सारेंनिधप**	*	*धपध	सां-ध,सारें
**मितवा	ऽ	मितवाऽऽ**	*	*मितवा	ऽऽऽ,आऽ

०		३		४	
-सां,रेंगुं--	-*	*सारेगुं	सारेंगुं---	रें--गुंसानिनि	ध***

× ० नि२
निसां-- -* | **निसां- **मपपध | ना *निसां-
वाऽऽऽ ऽ* | **वाऽऽ **मिऽतऽ ना *वाऽऽ

सा० ३ ४
-नि--ध सां*** | *पधसा रेंनिधप *प- धसां-ध*
ऽआऽऽऽ वा*** | *अरेवा ऽवाऽऽ ऽऽ रेऽऽऽ*

× ० ०
सारे--मां* गुंरेंनि-ध* | *पधसारेंगुंरें सां-रेंनि- | ानिपधमां- *सांनिधप
अरेऽऽऽ* रेऽवाऽऽ* | *आऽऽऽऽऽ वाऽवाऽऽ | ऽऽऽऽऽऽ *मितवाऽ

० ३ ४
मग--- मपमप-मग | निनिध* रेगरेग | रेसानिरेसानिध *धनिनिग
ऽऽऽऽऽ ऽऽऽऽऽऽऽ | वाऽऽ* येऽऽऽ | वाऽऽवाऽवाऽ *मिऽतऽ

× ० २
रे * | *सारेगसारे मम,रेमपप,मप | धध,पधसांसां,धसां रेंरें,सांरेंगुंगुं-
वा * | *आऽऽऽऽ ऽ | ऽ ऽ

० ३ ४
* सारेंमंपं | - * | * *
* अरेमिऽ | ऽ * | * *

× ० २
मप--म गुंमगुंमगुंमगुंमं | गुं*** रेंगुंमंरेगुंमं | रेंसांनिनिध* *
मिऽऽऽत ऽ | ऽ*** वाऽऽऽऽऽ | वाऽऽऽऽ* *

० ३ ४
निधनिसां --निनिसां | रेंनिधपमग - | -*सा निध,धनिनिग
मितवाऽ ऽऽऽआऽ | ऽवाऽऽऽऽ ऽ | ऽ*वा ऽऽमिऽतऽ

× ० २
रे *धनिनिगुं | रें--- ***पध | पधनि- ध
वा *मिऽतऽ | वाऽऽऽ ***मिऽ | तऽऽऽ वा

० ३ ४
मग-- * | रेगमगरेगरे- गसानि नेध- | -* धनि-धधनिनिग
वाऽऽऽ * | वाऽऽऽऽऽऽऽ ऽवाऽऽऽऽ | ऽ* आऽऽऽऽऽऽ

× ० २
रे-रे- - | - सा | - -
ऽऽवाऽ ऽ | ऽ वा | ऽ ऽ

अत्याधुनिक सगीत को एक नयी दिशा देने मे अमीर खुसरो का योगदान भी काफी महत्वपूर्ण रहा है जिन्होंने फारसी और सगीत पर लगभग 100 पुस्तकें लिखी जिनमे से 22 उपलब्ध है। छोटा ख्याल कव्वाली, तराना एव अनेक नवीन राग-ताल तथा वाद्यों के आविष्कर्ता भी माने जाते है।

संगीताकाश तेजस्वी नक्षत्र कुमारगंधर्व ने लोकगीतों पर काफी ध्यान दिया और बहुत से शास्त्रीय रागों की रचना की जिसमे मालवती, जगनगधार, सजारी, निदियारी, रात का मधवासहेली, तोडी, राही, बीहड, भैरव आदि।

ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध सगीतज्ञ कृष्ण राव पडित की प्रमुख सागीतिक रचनाओं मे - संगीत सरगम तार, संगीत प्रवेश, सगीत आलाप, सचारी तिरोणोल्लेखनीय है। गोपाल नायक द्वारा अनेक छद प्रबन्धों की रचना की गयी। सगीत सम्राट तानसेन ने अनेक रागों की रचना की थी, जैसे- दरबारी काहडा, मियाँ की सारग, मियाँ मल्हार आदि। उस्ताद फैयाज खाँ एक अच्छे रचनाकार भी थे। उन्होंने अपनी रचनाओं मे अपना नाम 'प्रेमप्रिया' रखा था। इसी प्रकार राग-कल्पद्रुम में बैजूबावरा के अनेक ध्रुपद गीत मिलते है जिनसे उनकी प्रतिभा का परिचय मिलता है। बैजू द्वारा रचित रागें है - मगल, गूजरी, तोड़ी, मृगरंजनी आदि।

प्रो0 डी0आर0 देवधर महोदय ने 'राग बोध की उभागों' की रचना की जिनमे बहुत सी सुदर बंदिशें संकलित हैं। बड़े रामदास जी एक अच्छे वाग्गेयकार थे जिन्हे स्वर और शब्द दोनों की रचना का श्रेय प्राप्त है। बुंदेलखंड से सम्बद्ध कलाकार राजाभैया पूछवाले ने जिन सात रचनाओं का सृजन किया वे है - तान, मालिका भाग- 1, 2, 3 (पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध) सगीतोवासना, ठुमरी, तरंगिणी और ध्रुपद धमार गाया।

पं0 विष्णु दिंगबर पलुस्कर को आधुनिक सगीत के प्रचार-प्रसार का पूर्ण श्रेय दिया जाता है।

९. डी० वी० पलुस्कर : ग्वालियर-घराना

● राग : रामकली

हूँ तो बार-बार तोरी याद करत ।
तुम नही आए मोरे मंदरवा ॥
तुमरे मिलन की आस जिया मे ।
तरफत हूँ दिन-रैन पियरवा ॥

सा ग	-	रे	रे	रे सा	-	-	निसा	-
आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ

तीनताल

×				२				०				३			
														ग	म
														हूँ	तो
धृ प	–	प	प	–	प	प	मं	मंप	धृनि	धृ	प	मं	प	ग	रे
बा	ऽ	र	बा	ऽ	र	तो	री	याऽ	ऽऽ	द	क	र	त	तु	म
ग	रे	ग	रे	रेग	मप	मं	प	धृ	नि	धृ	प	मंप	*	ग	म
न	ही	आ	ऽ	एऽ	ऽऽ	मो	रे	ऽ	म	द	र	वाऽ	*	हूँ	तो
नि धृ	–	प	प												
बा	ऽ	र	बा	र तोरी………।											

								*	मम	म	म	प	प	धृप	धृप
								*	तुम	रे	मि	ल	न	कीऽ	ऽऽ
*	निसा	सां	सा	निसां	निरें	सां	–	सा	म	म	म	प	प	धृप	धृप
*	आऽ	स	जि	याऽ	ऽऽ	मे	ऽ	तु	म	रे	मि	ल	न	कीऽ	ऽऽ
सा नि	सा	सा	सा	निसा	निरें	सां	–	*	सांरें	ग	रें	सा	–	नि	सां
आ	ऽ	स	जि	याऽ	ऽऽ	मे	ऽ	*	तर	फ	त	हूँ	ऽ	दि	न
सा नि	सा	नि	धृ	प	प	मं	मं	प	–	धृ	निधृ	प	–	ग	म
रै	ऽ	न	पि	य	र	वा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	हूँ	तो

बार-बार………।

स्थायी के तीन आलाप १. छठा मात्रा से

				*	मं	प	प	ग	–	–	–	म	–	–	–
–	गम	प	–	गम	पम	रे	–	रे	रे	–	–	सा	–	–	–
*	निसा	सासा	सा	ग	–	–	–	सम	–	रेप	–	मधृ	–प	हूँ	तो

२. सम से

		नि	नि												
साग	म	धु	धु	प	–	–	–	–	–	–	–	धुप	–	धुप	–
धुप	–	धुप	–	मं	–	प	–	धुप	–	धु	–	सां नि	–	सा नि	धुप
–	गम	–	–	ग	–	–	–	साग मप		ग	म	रे	सा	हूँ	तो

३ दूसरी मात्रा से

			धु	धु											
*	गम	पधु	नि	नि	धुसां	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–
निसां	–	धु	रें	रें	रें	सां	–	*	*	धु	नि	सां	ग	म	ग
रें	रें	रें	सां	–	निसां	रेंरें	सा	धुनि	–	धु	धु	प	–	–	–
मं	–	प	–	धु	नि	नि	धु	धु	प	–	गम	प	–ग	हूँ	तो

तीन बोल तानें

१. पाँचवी मात्रा से

*	गम	निधु	निधु	सां	सा	–	नि	रें	सा	सां	ग
*	एऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	बा	ऽ	र	बा	ऽ	र	तो

रें	सां	रें	नि	नि	सां	रें	सां	नि	धु	नि	धु	प	प	ग	म
ऽ	री	या	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	द	ऽ	ऽ	क	ऽ	र	त	हूँ	तो

२. नवी मात्रा से

मग	पम	धुप	निधु	सां	नि	सा	–
हूँऽ	ऽऽ	तोऽ	बाऽ	र	बा	र	ऽ

निधु	नि	धु	निसां	रें	सां	नि	सा	पम	–ग	मप	धुप	मग	रेसा	निसा	गम
तोऽ	री	ऽ	याऽ	द	क	र	त	तुऽ	ऽम	ऽऽ	ऽऽ	रेऽ	ऽऽ	ऽऽ	हूँतो

३. दूसरी मात्रा से

*	ग	म	प	धु	नि	सां	सां	नि	रे	सां	निधु	सां	नि	सां	रें
*	हूँ	तो	बा	र	बा	र	तो	ऽ	री	ऽ	याऽ	द	क	र	त
पसां	–	नि	धु	प	मंप	–मं	प	मंप	धुनि	धुनि	सांनि	धुप	मंप	ग	म
तूऽ	ऽ	मा	न	जी	आऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	हूँ	तो

तानो की झड़ी

१ खाली से । । माग मप धुप मग । रेसा सासा हूँ तो

२ छटवीं मात्रा से । * गम पधु निसा । निधु मग धुप मधु । पम गप मग रेसा

गधु पम गप मग । धुसा निधु धुनि धुसा । निधु पम गम गप । मग रेसा निसा हूँतो

३ सम से
मग पम धुप निधु । सांनि धुप मन धुसा । निरें सानि सागं मप । मप मग रेंसा निरें

सांनि धुसा -नि धुप । मं- धुप गम पग । मप मंप धुमं पधु । मनि धुप गम हूँतो

४. छटवी मात्रा से । * मप मग रेसा । धुसा निधु निग रेंसां । धप निसा निधु धनि

धुसा निधु मधु मनि । धुप धनि धनि पधु । पधु मंप धुनि धुप । मग रेसा हूँ तो

५. सम से
पप मग रेसा गम । गरें धुसा निधु पसा । -नि धुप मं प । धु नि धु प

धुप मग मग रेसा । ग - धु - । सा ग - रेंसा । निधु पम हूँ तो

६. खाली से । । निसां गंमं पंम गंम । सांसां गम सांरें सांग

रेंसां निरें सांनि धुसा । सांसा धुनि सानि धुप । मप मधु पम मंप । धुनि धुप मप गम

पधु पसां -नि धुप । मप धनि - पधु । - मप - ग । म प हूँ तो

धु	-	प	-	ग	म	रे	-	सा	-	-	-
बा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

■ ■ ■

यह ऐतिहासिक घटनाओ का परिणाम है कि हिंदुस्तानी संगीत के प्रधान उन्नायक और विधायक अधिकतर मुसलमान ही रहे हैं । पर उन्हे बैजूबावरे, गोपाल नायक और स्वामी हरिदास को परपरा का गौरव रहा है । वे सदा 'सगीत-रत्नाकर' की ही दुहाई देते रहे है । जहां तक सगीत का सम्बन्ध है, उनकी आत्मा पूरी तरह भारतीय रही है । केवल मुसलमानो का ससर्ग देखकर ही हिंदुस्तानी सगीत पर विदेशी प्रभाव की कल्पना कर लेना बहुत बड़ा भ्रम है ।

□ प्रो० ललितकिशोरसिंह

घरानेदार बंदिशें

घरानेदार गायकों से प्राप्त कुछ दुर्लभ बंदिशों की संगीतलिपियाँ

□ *संकलन : आर० सी० मेहता*

आगरा-घराना

● खयाल, राग : नंद (आनंदी)

ए बारे मैया तोहे सकल बन ढूँढू ।
बिधना तोसे ये माँगत हूँ, देहो दरस मैंका प्यारे ।

● स्थायी — एकताल / विलंबित लय

३		४		×		०		२		०	ध
गम	धप	-रे	-गा	ग	गम	म	-ग	प	-प	धनि	प
एऽ	ऽऽ	ऽबा	ऽरे	सै	ऽऽ	या	ऽतो	हे	ऽस	कल	ब

	प			ग							
ध	म॑	प॑	-ग	सा	ग	म	ध	प	म॑प	ग	सा
न	ऽ	ढूँ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ढूँ	ऽऽ	ऽ	ऽ

गम	धप	-रें	-सा
ऽऽ	ऽऽ	ऽबा	ऽरे

● अंतरा

३				×		०		२		०	
गम	प॑	सां	सां	नि	निसां	प	-	गप	रे	सा	-
[illegible]	[illegible]	तो	री	ये	ऽऽ	माँ	ऽ	गत	हूँ	ऽ	ऽ

						म					
सा	गम	पप	-	धनि	नि	[illegible]	ग	-	सा	गम	धप
दे	होद	रस	ऽ	मैंका	प्या	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	रेऽ	ऽऽ

-रे	-सा
ऽबा	ऽरे

आगरा-घराना। ● राग : नटबिहाग

झन् झन् झन् झन् पायल बाजे जागे मोरी सास ननदीया,
और दोरनीयाँ हाँ रे जेठनीया मा ।। झन् झन् ।।
अगर सुने मेरो बगर सुनेगो जो सुन पावे सदा रंगीले,
जागे मोरी सास ननदीया और दोरनीयाँ हाँ रे जेठनीयाँ मा ।।

● स्थायी

तीनताल / मध्य लय

३				×				२				०			
												-	-	-	म
												ऽ	ऽ	ऽ	झन्
नि	ध	प	-	प	-	ग	म	ग	-	ग	म	ग	-	सा,	म
झन्	झन्	झन्	ऽ	पा	ऽ	य	ल	बा	ऽ	ऽ	ऽ	जे	ऽ	ऽ,	जा
ग	नि	-	सा	नि	-	नि	सा	नि	ध	प	-	-	प़	नि	सा
गे	मो	ऽ	री	सा	ऽ	स	न	न	दी	या	ऽ	ऽ	औ	र	दो
रे	रे	सा	-	गम	प	ग	म	ग	रे	सा	-	म	ग	(रे)ग	म
र	नी	याँ	ऽ	हाँऽ	ऽ	रे	जे	ठ	नी	या	ऽ	ऽ	मा,	ऽ	झन्

● अंतरा

३				×				२				०			
प	प	नि	नि	सां	-	सां	सां	सां	सा	रेसां	सां	नि	-	ध	-
अ	ग	र	सु	ने	ऽ	मे	रो	ब	ग	ऽर	सु	ने	ऽ	ऽ	ऽ
प	-	म	-	ग	-	रे	-	मा,	प	-	पप	सांरेंगं		सां	रेंनि
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	गो,	जो	ऽ	सुन	पाऽवे	ऽ,	ऽ	ऽऽ
धप	म	पग	रेसा,म	ग	नि	-	सा	नि	-	नि	सा	नि़	ध	प	-
ऽऽ	र	गीऽ	लेऽ,जा	गे	मो	ऽ		गा	ऽ	स	न	न	दी	या	ऽ
-	प़	नि़	सा	रे	रे	सा	-	गम	पप	ग	म	ग	रे	सा	-
ऽ	औ	र	दो	र	नी	याँ	ऽ	हाऽ	ऽऽ	रे	जे	ठ	नी	याँ	ऽ
म	ग,	रेग	म												
ऽ	मा,	ऽऽ	ऽ												

ए री ए मैं कैसे करूँ बतियाँ ।
तरपन बीतन रतियाँ ॥
मोद विनोद सब बिसर गई हूँ ।
निसदिन धरकत छतियाँ ॥

● स्थायी — एकताल / विलंबित लय

३		४		×		०		२		०	
सागारेग	-रे	सारेसा,नि	धम	ध	सा	-रे	मा	ग	रे	॥	-
एऽऽऽ	ऽऽ	एऽऽ,ऽ	मैंऽ	कै	से	ऽक	रूँ	ब	ति	याँ	ऽ
ग	म	ध	ध	नि	ध	म	म	(प)गममम	ग	रे	सा
त	र	प	त	बी	ऽ	त	त	रऽऽऽ	ति	याँ	ऽ

● अंतरा

३		४		×		०				०	
म	धप	धमा	मासां	मा	-	मासा,ग	रेंसा	सारेंसा,नि	धग	ध	सा
मो	दवि	नोऽ	ऽस	ब	ऽ	बिस,र	ऽऽ	ऽऽऽ	ईऽ	हूँ	ऽ
सासा	ग	रें	सां	निसारेंसा	नि	म	म	गमगम,ग	रे	सा	-
निस	दि	न	ऽ	धऽऽऽ	र	क	त	छऽऽऽ,ऽ	ति	याँ	ऽ

आगरा-घराना ● राग : मारवा

चतरंग-सब मिल गाइए. गाइए बजाइए और रिझाइए ।
मोहम्मदशा बरकाज सोहाग नाचत सब मिल दे दे तारी
सा ग म ग रे सा छोग्छननन छोग्छननन,
तक धी तक धी तक तिरकिट तक धी कडा धा धा
ती धा धा ॥

● स्थायी — तीनताल / मध्य लय

०				३				×				२			
ध	म॑	ध	म॑	ग	म॑	ध	म॑	ग	रे॒	-	म॑	ग	रे॒	सा	-
च	त	र	ग	स	ब	मि	ल	गा	ऽ	ऽ	इ	ए	ऽ	ऽ	ऽ

२. उस्ताद फैयाज़ खाँ : आगरा-घराना ● राग : जयजयवंती

मोरे मंदिर अबलों नहीं आए।
का ऐसी भूल भई मोसे आली ?
प्रेम पिया बिन अंखियाँ तरस रही,
किन सौतन बिरमाए ॥

पहले खाँ साहब जयजयवंती का नोमतोम कहते है। इस समय ठेका बन्द रहेगा। (नोमतोम में कुल ५ आलाप है। आलापो के नंबर कोष्ठ मे दे दिए है)

(१) रे रे
रे सा – – सा – सा सा – – – ऩि ध म ग रे – रे रे
* * * * * * * आ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ तो ऽ ऽ ऽ द्रे द्रे

(२)ग
* * रे ग म प म – – पग – मग मग मग मग मग रे
* * द्रि द ना ऽ ना ऽ ऽ ऽऽ ऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽ

– रेग॒ रे सा – ऩिगा ध॒ – – ऩि सा म ग रे – – * *
ऽ ऽऽ न ना ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ तू ऽ ऽ ऽ ऽ * *

(३)ध नि
म ध नि सा – – – * * * नि सा – – निसां – – निसां – –
र न नी ऽ ऽ ऽ ऽ * * * नी ऽ ऽ ऽ नऽ ऽ ऽ नऽ ऽ ऽ

गा
रेंसां रेंसां – ऩि – – – ध ऩिध ऩिध ऩिध प * * * * प
रऽ नऽ ऽ ऽ ना ऽ ऽ ऽ ऽ आऽ ऽ ऽ ऽ * * * * द्रि

ध
ध ऩि – ऩिसा ऩि – धऩि धऩि धऩि धप – मप म – ग – रेग
द्र ना ऽ नाऽ ऽ ऽ आऽ ऽ ऽ ऽऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

ग प म – म गम गम गम गम ग – रे ग॒ रे सा – –
र ना ना ऽ ऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

(४)
* * ध॒ ऩि म ग र – रे * * ग म ध नि सा – सां –
* * आ ऽ तु ऽ ऽ ऽ म * * द्रि द न न दी ऽ ना ऽ

सां * * रें सां सा सां नि नि नि ध ध नि ध ध ध ध ध
ना * ˀ द्रे द्रे द्रे द्रे द्रे द्रे द्रे दे दा ऽ दे द्रे द्रे द्रे द्रे

प प, प प म म, ग रे ग म प प म प म रे ग॒ रे सा
द्रे द्रे द्रे द द्रे द्रे द्रे द्रे द्रे द्रि द्रे द्रि ग दि र दा ऽ द र

(५)

सा सा नि॒ ध॒ – नि॒ म ग रे * * रे ग म प प म ग म
र दि र दा ऽ र नू ऽ म * * द्रि द दा रे दा रा ऽ द

ध प ध म प ग म ग म रे रे ग म प म ग ग ध प
द्रे ऽ द्रे ऽ द्रे ऽ द्रे ऽ द्रे, ऽ द्रे द्रे दा रे दा रे दीं द्रे द

म ग रे ग म प ग म प म ग म ग रे रे ग॒ रे ग॒ रे ग॒ रे
दा रे द्रे द दा रे दा ऽ द्रे द्रा ऽ दा ऽ ऽ नू ऽ नूं ऽ नूं ऽ न

सा सा सा सा सा सा सा नि॒ सा * * * म ग रे – सा * * *
न न न न न न न न ऽ * * * नूं ऽ ऽ ऽ ऽ * * *

तीनताल

०				३				×				२			
*	ग॒	रे	ग॒	रे	सा	रे	नि	सा	–	सा	सा	नि॒सा	रेसा	नि॒	ध
*	मो	रे	म	द	र	अ	ब	लो	ऽ	न	ही	आऽ	ऽऽ	ए	ऽ
नि॒	रे	रे	*	ग॒रे	सा*	रे	नि॒	सा	–	*	नि॒सा	* निसा	– नि॒सारेरेसा		
*	मो	रे	*	मद	र*	अ	ब	लों	ऽ	*	नहीं	* आऽ	ऽ आऽऽऽऽ		
नि॒ध	रे	रे	*	ग॒रे	सा*	रे	नि	सा	–	सा	सा	निसा	रेसा	नि॒	ध
एऽ	मो	रे	*	मद	र*	अ	ब	लो	ऽ	न	ही	आऽ	ऽऽ	ए	ऽ
	रे														
*	ग	–	ग	*	ग	म	प	म	ग	ग	मग	रे	ग॒	रे	सा
*	कै	ऽ	सी	*	चू	क	भ	ई	ऽ	मो	सऽ	आ	ऽ	ली	ऽ
*	ग	–	ग	ग	मग	म	प	म	ग	ग	म	रे	–	रेगमग	रे
*	कै	ऽ	सी	चू	ऽऽ	क	भ	ई	ऽ	मो	से	आ	ऽ	ऽऽऽऽ	ली

सा रे रे ग़		* * * *	* गम ध नि
ऽ मो रे म	दृऽ...	* * * *	* अब लो न
सां – – –	* म –ध नि	निसां – – –	– – – –
ऽ ऽ ऽ ऽ	*, प्रे ऽम पि	ऽऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
– – – –	॑ध नि सा सा	* * * *	धनि सां गं –
ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽऽ ऽ ऽ या	* * * *	प्रेम पि या ऽ
– – ग म	ग रें ग़रें ग़रें	सा – – साऩि (रें)	– – ध –
ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽऽ ऽ ऽऽ ऽऽ	ऽ ऽ ऽ ऽऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
प – म –	ग – रेग –	ग ग ग म	ग रे ग़रे सा
ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	प्रे म पि या	ऽ ऽ ऽ ऽ
* ग ग ग	रे ग म प	म ग म ग	रे ग़ रे सा
* कि न सौ	त न बि र	मा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ए ऽ
ऩिसा ग ग ग	रे ग ग प	म – ग म	गप मग रेग़ रेसा
ऽऽ कि न सो	त न बि र	* * * *	बिर माऽ ऽऽ ऽऽ
निसा ग ग ग	रे ग, ध सा	ऩि ऩि ध ध	प – प ध
ऽऽ कि न *	* * बि र	मा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ अ रे
ऩि ऩि ऩिसां ऩि	– – ध ध	प प म म	ग म रे ग़
बि र माऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
रेसा ग ग ग	रे ग म प	म * * *	गप मग रेग़ रेसा
ऽ कि न सौ	त न बि र	मा * * *	आ ऽ ऽ ऽ
ऩिसा ग ग *	* * रे ग	म प ग म	ग म रे ग़
ऽऽ कि न *	* * कि न	सौ त न बि	ऽ र मा ऽ
रेसा ग ग *	* ऩि सा ऩि	साऩि ध – प	– प ध प
एऽ कि न *	* कि न सौ	ऽऽ त ऽ न	ऽ बि र ऽ

प । पम नि निसा नि धनि ध | पप प मप प गम ग रेग रेसा
मा ऽ ऽऽ ऽ आ ऽ ऽ ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

निसा ग ग गम | रे ग म प | म – ग म | ध नि सां –
ऽ कि न सौऽ | त न * * | * * कि न | सौ त न ऽ

* * * * | ध नि सां ग | – – – – | मं ग रें –
* * * * | त्रि र मा ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ

– ग रें सा | * रेंसा निसां नि | सांनि ध निध प | धप म प म
ऽ ऽ ए ऽ | * किऽ नऽ सौ | ऽऽ त ऽऽ न | ऽऽ बि र मा

ग – – गम | रे ग म प | म – ग * | * मप ध *
ए ऽ ऽ ऽ | त न बि र | मा ऽ ऽ * | * सौऽ त न

मप मग रेग रेसा | गग ग रेग मप | मग – * * | * म ध *
बिऽ रऽ माऽ एऽ | किन सौ तन बिर | माऽ ऽ * * | * कि न *

पप सांसां सांनि निध | धनि धप मग पम | धप मग रेसा रेग | मप, रेग मग रेसा
किऽ नऽ सौऽ तऽ | नऽ बिऽ रऽ माऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

निसा ग ग ग | रे ग म प | मं ग * * गम | धध पध पम गरे
ऽऽ कि न सौ | त न बि र | * * * आऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

सासा ग ग गम | रे ग म प | धनि सांसां निध पम | गम पध निध पम
ऽऽ कि न माऽ | त न त्रि * | आऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

गम पध पम गग | गग ग रेग मप | ग * * धनि | सासा निध पम, गम
ऽ ऽ ऽ ऽ | किन सौ तन बिर | मा * * आऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

पध निध पम गम | गग ग रेग मग | गम धध पम गम | धध पम गम पम
ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | किन सौ तन त्रिर | माऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

गग ग रेग मप | ग मप ग मग | ग म ग ग | रे ग रे सा
किन सौ तन बिर | मा बिर मा त्रिर | मा ऽ ऽ ऽ | ऽ ऽ ए ऽ

निसा - गम धनि सासा निनि धप पम | धनि सानि धप मप धध पम गम पम
* ऽ आऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

रेग मग रेग रेसा | * * ग म | रेग रेसा निसा रे | सासां निनि रेंरें सासा
ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ * ऽ त्रि र | माऽ ऽऽ ऽऽ ऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

निनि धनि सानि गम | मग ध पम गम | रेग मप मग रेग | मग रेग रेसा निसा
ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

गग ग रेग मप ग मप ग मप | ग म ग म | रे ग रे सा
किन सौ नन बिर | मा बिर मा बिर | मा ऽ ऽ ऽ | आ ऽ ऽ ऽ

निसा ग म धनि | रे नि नि सा | - - धनि सासा | निध पम गम गरे
ऽऽ कि न सौऽ | त न बि र | ऽ ऽ माऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

सानि सा * * | पप पप सासा सासा | सानि धप धनि सां | धप मग गम पध
ऽऽ ऽ * * | आऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

निध पध पम गम | पध पम गम पध | निध निध निध पम | गम पध निध पम
ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

गम ग ग ग | रे ग म प | म - ग * | म ध नि सा
ऽऽ कि न सौ | त न बि र | * * * * | कि न सौ त

निसा ग रे ग | ग रें रें सां | सा, निसा नि धनि | धनि पध प, म
नऽ बि ऽ र | ऽ मा ऽ ऽ | ऽ ऽऽ ऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽ ऽ

ग ग ग ग | रे ग म प | गम पध सां निध | पध पध पम गरे
ऽ कि न सौ | त न बि र | माऽ ऽऽ ऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

सा ग ग ग | रे ग म प | निध सां निध पम | गम पध सा निध
ऽ * * * | * * * * | आऽ ऽ ऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽ ऽऽ

पम गम गम पध | निध पध पम गम | पध निध धनि सानि | धप धनि धप मग
ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ

गग ग रेग मप | ग मप ग मप | ग म ग म | रे ग रे सा
किन सौ नन बिर | मा बिर मा बिर | मा ऽ ऽ ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ

उन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की है -

संगीत बाल प्रकाश, बाल बोध, बीस भागों मे राग प्रवेश, संगीत शिक्षक, राष्ट्रीय संगीत, महिला संगीत आदि। इनके साथ ही प0 विष्णु नारायण भातखडे जी की रचित पुस्तक सूची निम्नवत् है -

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति[1], भातखंडे संगीत शास्त्र[2], अभिनव राग मजरी, लक्ष्य संगीत, स्वर मालिका आदि।

इसी प्रकार अनेकानेक ज्ञात-अज्ञात वाग्गेयकारों ने संगीत शास्त्र मे अपना योग विभिन्न रचनाओं, नवीन रागों, आलापों के माध्यम से दिया। इनमे से जिन-जिन संगीतज्ञों की रचनाएँ मिल सकी है, उनका यथासभव उल्लेख किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् कुछ प्रमुख आधुनिक एव उल्लेखनीय वाग्गेयकारो का संक्षिप्त परिचय तथा रचनाओं का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

1- हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति 6 भागों मे क्रमिक पुस्तक मालिका है।

2- संगीत शास्त्र (भातखंडे) चार भाग।

श्री नारायण विनायक पटवर्धन का राग विचार

भारतीय सगीत मे 'राग' यह एक महत्वपूर्ण मौलिक कल्पना है। 'राग' इस शब्दकी उत्पत्ति 'रज्' इस सस्कृत धातु से हुइ है तथा इसका अर्थ रजन करना यह है। अर्थात 'रजक स्वर समूह' इन शब्दो मे राग की कल्पना व्यक्त की जा सकती है। परन्तु 'रजकत्व' ही केवल 'राग' इस संज्ञा के लिए पर्याप्त नहीं है। अतएव कुछ अन्य नियमो का भी पालन करना आवश्यक है, यह सिद्ध हो जाता है और जब इन नियमो का यथायोग्य रीती से पालन होता है, तभी ऐसे स्वर समुच्चय को 'राग' इस नाम से पहिचानते हैं। इस प्रकार राग की कल्पना को नियमबद्ध तथा रजक स्वर सघ' कह सकते हैं।

प्राचीन ग्रथो में 'राग' इस शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है -

योयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषित ।

रजको जनचित्तानां स राग कथ्यते बुधै ।।

अर्थात जो नादलहरी 'स्वर' और 'वर्ण' इनसे सुशोभित होने के कारण श्रोतृगणों के मन को आल्हादित करती है, ऐसे ध्वनि विशेष को पंडितजन 'राग' कहकर पुकराते हैं। राग की उपरिलिखित व्याख्या में 'स्वर' तथा 'वर्ण' यह दो प्रधान शब्द है। इसमे से 'वर्ण' यह दूसरा शब्द महत्वपूर्ण है। 'वर्ण' का अर्थ स्वर लगाने की प्रक्रिया यह है। वर्ण के चार प्रकार हैं - (1) स्थायी, (2) आरोही, (3) अवरोही तथा (4) सचारी एक स्वर को बारंबार उच्चार करने पर, उसे स्थायी वर्ण का कहते हैं। स्वरो को चढ़ते क्रम से लगाने पर 'आरोही' तथा उतरते क्रम से लगाने पर 'अवरोही' इस प्रकार सबोधित करते हैं। इन तीनो की संमिश्र प्रक्रिया सचारीवर्ण कहलाती हैं।

राग की व्याख्या मे उपरोक्त 'वर्ण' इस शब्द को विशिष्ट स्थान है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि राग मे रजकत्व का उत्तरदायित्व केवल उसके प्रयुक्त स्वरो पर ही निर्भर रही है। बल्कि स्वरो की हाल चाल, स्वरो पर ली जाने वाली विश्रान्ति इ अन्य बात भी स्वर की तरह, अत्यत महत्व की हैं। आधुनिक परिभाषा मे राग के लिये आवश्यक बातो मे से, स्वरो के प्रयुक्त रूप के सिवाय उनका आरोह-अवरोह, वादी सवादी अन्य विश्रान्ति स्थलादि, यह सब बाते उचित रीति से निश्चित होनी चाहिये। ठाट तथा राग के स्वर अधिकाशत समान रहते हैं। परन्तु राग यह अधिक गतिमान रहता है, अत वह 'रजकता' की पात्र होता है।

'राग' इस सामान्य स्वरूप की कल्पना से निगडित रहने वाले, जो अधिकाशत नियम है, उनमे से कई नियम तो केवल 'राग' को 'रंजक' रखने के लिये ही बतलाये गये है, ऐसा विचार करने पर स्पष्ट होता है। किसी भी राग मे (1) कम से कम पाच स्वर होने चाहिए अथवा (2) एक स्वर के दो रूप क्रमश. एक के बाद दूसरा, इस प्रकार सहसा नहीं आने चाहिये अथवा (3) क्रमश· दो स्वर वर्ज्य नहीं करने चाहिये, इस प्रकार के बधन केवल 'राग' रजकत्व की दृष्टि से ही कहे गये हैं। फलत यहा पर राग रंजकत्व यह प्रधान वस्तु है। यह याद रखना होगा कि कइ बार इन नियमो का उल्लघन करने पर भी 'राग रजकत्व' पूर्ववत् विद्यमान रह सकता है। अत सर्व साधारण तथा इन नियमो का पालन करते समय ललिता प्रधान दृष्टि ही महत्वपूर्ण है।

इसके सिवाय अन्य भी दो नियम बतलाये जाते हैं, उनका वगीकरण 'स्वर' तथा वर्ण इसमें ही समाविष्ट है।

(4) राग यह एक किसी ठाट से उत्पन्न होना चाहिए, इस नियम का यही अर्थ है कि . . के स्वरो के प्रयुक्त रूप शुद्ध व विकृत निश्चत होने चाहिए। अतएव थाट को बतलान पर, हमे राग के प्रयुक्त स्वर सहज रीति से विदित हो जात है। (5) राग के आराह, अवरोह वादी सवादी निश्चिता होने चाहिये, इस नियम का अर्तभाव वर्ण मे किस प्रकार से होता है, यह हम ऊपर बता चुके हैं।

. . र बतलाये हुए दोनो नियम, प्रत्यक राग मे विभिन्न स्वरूप मे पाये जाते हैं। लेकिन इन नियमों के सिवाय पूर्वोक्त अन्य नियमो का परिपालन सभी रागों में (कुछ अपवादात्मक रागों को छोड़ने पर) सामान्यतः उनके मूल स्वरूप में ही पाया जाता है। हरेक राग का विशिष्ट नियम, उसके प्रयुकत 'स्वर' तथा 'वर्ण' इन दोनों पर निर्भर रहता है। केवल रजकता की दृष्टि से जा आवश्यक बधन है, वह सर्वत्र ही . हीं विद्यमान रहते हैं।

दो रागो मे जो राग भेद पाया जाता है, इसका एक कारण (1) उन दो रागों मे प्रयुक्त स्वर की 'रूप विभिन्नता' यह है। अथवा इसी को अन्य शब्दो 'थाट भेद' इस नाम से पहियानते हैं। 'काफी' और 'भैरव' यह दो अलग अलग भिन्न राग हैं। इस भिन्नता का एक कारण यह है कि इन दो रागो के प्रयुक्त स्वर के रूप अलग अलग हैं। इसके लिये काफी और भैरव राग की स्वर तुलना नीचे देखिये -

काफी	भैरव
रे शुद्ध	रे कोमल
ध शुद्ध	ध कोमल
ग कोमल	ग शुद्ध
नि कोमल	नि शुद्ध

इसके सिवाय अन्य भी कई बाते दो रागो मे परस्पर विभिन्नता पैदा कर सकती है। उदाहरण ()2() कई बार स्वर साधर्म्य रहते हुए भी, केवल वर्ज्यावर्ज के नियमों के कारण भी राग भेद पाया जाता है। इसके उदाहरण भूप तथा दुर्गा राग यह हैं। इनके विभिन्नता का कारण प्रयुक्त स्वरो के रूपों मे शुद्ध तथा विकृत भेद यह नहीं हैं, बल्कि दो रागों में वर्ज्यावज स्वरभिन्न होने की वजह से, यह दो राग अलग अलग पहिचाने जाते हैं।

इन दो कारणो के सिवाय, ()3() स्वरो पर ठहरने की प्रक्रया यह भी राग-भेद का एक कार' है' इसका उदाहरण राग भूप तथा देसकार यह जोडी है। इनका भेद स्वर भिन्नत्व, अथवा वर्ज्यावर्ज्य भेद नहीं है, बल्कि स्वरो पर ठहरने की प्रक्रिया के कारण, यह राग भेद उत्पन्न होता है। 'वादी भेदो रागभेद' इस सूत्र का अशत उत्तर ऊपर की जोडी मे पाया जाता है।

इसके व्यतिरिक्त राग मे ()4() स्वरो के विशिष्ट सचार नियम ()चलन() के कारण भी राग भेद पाया जाता है। उदाहरणार्थ खमाज तथा अल्हैया बिलावल यह दो राग विभिन्न होने के अनेक कारणो में से एक प्रमुख कारण यह है कि यद्यपि दोनों रागों के अवरोही वर्ण मे कोमल निषाद प्रयुक्त है, फिर भी उनकी सचार स्थिति भिन्न है। खमाज के अवरोही वर्ण मे कोमल निषाद का सचार सीधा रहता है। लेकिन यही कोमल निषाद अल्हैया बिलावल के अवरोह मे वक्ररूप से संचार करता है। अर्थात राग का मन अवरोही क्रम छोडकर, अशत· आरोही क्रम स्वीकार कर लेता है, लेकिन फिर भी उसके इस व्यवहार को अवरोही क्रम के अंतगतही समाविष्ट किया जाता है। फलत सचार स्थिति अलग अलग पैदा होने के कारण इन दो रागो मे भिन्नता उत्पन्न होती है।

इस तरह स्वरो का सचार (चलन) भी राग को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करने मे महत्वपूर्ण सहयोग देता है। अत राग विभिन्नत्व का यह भी एक कारण माना जा सकत ।

ऐसे अन्य भी कइ कारण राग भेद की दृष्टि से कथन किये जा सकते हैं। लेकिन यहा पर उनमे से कुछ महत्व के कारणो का ही निर्देश किया गया है।

रागो की जाति

किसी भी राग मे प्रयुक्त स्वरो की सख्या के (स्वर के शुद्ध अथवा विकृत रूप स यहा पर कोइ सम्बन्ध नही है।) आधार पर, राग का वर्गीकरण अलग अलग विभागो मे किया जाता है तथा यह राग विभाग जाति इस नाम से पहिचाने जाते हैं। किसी भी राग में कम से कम स्वरो की सख्या (रजकता की दृष्टि से) पाच रहनी चाहिये। इस प्रकार पाच स्वर सख्या वाले राग, छ स्वरसख्या वाल राग तथा सात स्वर सख्या वले राग क्रमश 'औडव', षाडव, तथा 'सपूर्ण' जाति के कहलाते हैं। स्वर सख्या निश्चित करते समय इस बात का सदैव ध्यान रखना होगा कि वह प्रत्येक स्वर , जिसका अकन किया जा रहा है, एक ही सप्तक (नाद) प्रदेश से चुना जाना चाहिये। अन्यथा यह सभव है कि अकन मे गली हो। औडव, षाडव व सपूर्ण 'जाति' का वर्णन अन्य प्रकार से भी कर सकते हैं। कोई भी स्वर वर्ज्य न करने वाले राग 'सम्पूर्ण' जाति मे, एक स्वर वर्ज्य करने वाले राग 'षाडव' जाति में तथा दो स्वर वर्ज्य करने वाले राग 'औडव' जाति मे, इस प्रकार वर्ज्यावर्ज्य के आधार पर भी किसी भी राग की जाति सपूण, षाडव अथवा औडव एक ढग से ठहराई जा सकती है तथा जो इस प्रकार वर्ज्यावर्ज्य के आधार पर ध्यान मे रखना बहुत आसान है।

कइ बार राग के प्रयुक्त स्वरों की सख्या निश्चित करते समय कठिनाइ पडती है, क्योंकि उनके आरोह अवरोह तथा अवरोही क्रम मे एक जैसी ही सख्या नही रहती। उदाहरण कई राग के आरोही क्रम मे पाच स्वर लगते हैं, तो उन्हीं के अवरोही क्रम में सातो स्वर लगते हैं। ऐसे रागो की जाति उनके आरोह-अवरोह पर निभर रहती है। इस उदाहरण में उन्हें 'औडव-सपूर्ण' कहते हैं। इसमें से पहली सख्या आरोही क्रम को तथा दूसरी बाद मे संख्याये मिलकर राग के पूरे आरोही-अवरोही वर्ण को बतलाती है।

राग में लगने वाले स्वर सख्या के आधार पर, निम्नांकित भेद सभव है। इसमे आरोही अवरोही क्रम भेद का भी अतर्भाव किया गया है।

	आरोह - अवरोह		**उदाहरण**
1.	औडव - औडव	(अथवा औडव)	भूप
2.	षाडव - षाडव	(अथवा षाडव)	मारवा
3.	सपूर्ण - सपूर्ण	(अथवा सपूर्ण)	भैरव
4.	औडव - सपूर्ण		विहाग
5	षाडव - सपूण		अल्हैया बिलावल
6.	ओडव - षाडव		धानी
7.	षाडव - औडव		
8.	सपूण - षाडव		
9	सपूर्ण - औडव		

गणित दृष्टि राग की जाति सख्या नौही सम्भव है तथा इनमे से अतिम तीन प्रकार व्यवहार में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं है। लेकिन पहले छ· प्रकार भली भांति रीति से आज भी प्रयोग में मिलते हैं।

सा रे म प ध सां नी सां रें सां नी ध प म ग रे मा ध पध |
धी . रे . ब ह त . . . . न भ | में
१ ३ + ८

क्र. ५१ राग-सिंदरा, तीनताल (मध्यलय)

मानतीं न प्यारी सखियां सब हारी हारी ॥ ध्रु० ॥ जब हरि वेष कियो युवती को पहिन कुसुमरी सारी ॥ १ ॥

'सा रे म प ध | सां रें नी ध प म प ध प मग रे म ग रे सा सा सा |
मा न तीं न | प्या . रीं . स . खि . यां . . . . . स ब |
७ १ ३ + ७

रे म रे म प म म प ध सां नि ध प म ग रे सा रे म प ध |
हा . . रीं . . हा . . . रि . . . . . मा न तीं . न | प्यारी
१ ३ + ७

॥ अंतरा ॥

म म प ध नी सां रें सां रें गं रें सां नी ध सां | रें सां सां रें
ज ब ह रीं वे ष कि यो . यु व तीं को | प हि न कु
१ ३ + ७ १

नी ध प ध सां नीं ध प म ग रे सा रे म प ध |
सु म . रीं सा . . रा . मा न ती . न | प्यारी
३ + ७

५ ग, म॒ ध॒ नी सां, नि रें॒सां, नि रें॒गं रें॒, मं॒गं रें॒सां, नि रें॒गमं,
मं॒मं॒गं, मं॒गं रें॒सां, सांनि रें॒निध॒, म॒ ध॒ नि सां नी नीध॒म॒
ध॒म॒ ᵍमग, रे॒ ग म॒ ध॒ नि सांनिध॒म॒गरे॒, म॒गरे॒सा

तान

६ निरे॒निसा, नीरे॒गगरे॒सा, नीरे॒गम॒गरे॒निसा, निरे॒गम॒ध॒म॒मगरे॒सा,
निरे॒गम॒ध॒नीनीध॒म मगरे॒सा, नीरे॒गम॒ध॒नीसांनीध॒म॒मगरे॒सा,
नीरे॒गम॒ध॒नी॰ रें॒सांनीध॒म॒मगरे॒सा, निरे॒गम॒ध॒नीरें॒गंगं रें॒सांनी
ध॒म॒मगरे॒सा, नीरे॒गम ध॒नीरें॒गंमं॒गंरें॒सांनीधम मगरे॒सा

७ निरे॒ग—रे॒गम गम॒ध॒—म ध॒नी—ध॒नीरें॒—नीरें॒गं—रें॒निरें॒—नीध॒नी—
ध॒म॒ध—म॒गम —गरे॒ग—रे॒नीरे॒—सा

८ निरे॒गम॒—रे॒गम॒ध॒—गम॒ध॒नी—म ध॒नीसां—ध॒निरें॒गं—गंरें॒सांनी—
रें॒सां॰नध॒—नीध॒म॒म—ध॒म॒गरे॒—म॒गरे॒सा

९ म॒मगम—म गम—म॒गम—रे॒गमगरे॒सा, ध॒निध॒ध॒—नीध॒ध॒—नीध॒ध॒—
नीध॒म॒मगरे॒सा, सांरें॒निसां—रें॒निसा—रें॒निसां—रें॒सांनीध॒म॒मगरे॒
सा, रें॒गंरें॒रें॒—गंरें॒रें॒—गंरें॒रें॒—गंरें॒सांनीध॒म॒मगरे॒सा

१० गम॒ग—गम॒ग—रे॒सा—ध॒नीध॒—ध॒नीध॒—म॒म—मंरें॒सां—सांरें॒सां—
निध॒—रें॒गंरें॒—रें॒गंरें॒—निसां—गंमं॒गं— गंमं गं— रें॒सां— सांरें॒सां—
सांरें॒सां—निध॒—ध॒नीध॒—ध॒नीध॒—म म—गम॒ग—गम॒म—रे॒सा

(सूचना—उपरोक्त तानों में प्रत्येक स्वर पर पाव मात्रा ठहरना चाहिये।)

क. ५४ राग—ललित, लक्षणगीत, तीनताल (मध्यलय)

साहत रचना ललित राग की। रिध मृदु म द्वय पंचम वरजित षाडव
सुध ग-नि की ॥ ध्रु० मध्यम वादी प्रथम संवादी। गगत सोहे म ध रे
निधम की। ममम मम म-द्वय शोभा शुभ अरुणोदय की ॥ १ ॥

—कै. प ना मो. खरेकृत

ग रे॒ ग म॑ग रे॒ नि॑ रे॒ | ग म म म ऽ म म॑म ग म॑ ध॒ म॑ ध॒ सां सां सां |
० ० ० ० ० ० ० ० | ० ० ० ० ० ० ‿ ‿ ० ० ० ० ० — ० ० |
सो . ह त र च ना . | ल लि त रा ग की . . रि ध मृ दु म द्ध य |
\+ ● १ ३ + ●

नि रें नी ध॒ म॑ ध॒ म॑ म ग म॑ ध॒ नि रें नी ध॒ | म॑ ध॒ म॑ म ग रे॒ सा
० ० ० ० ० ० ० ० — ० ० ० ० ० ० | ० ० ० ० ० ० —
पं . च म व र जि त पा ह व मृ ध ग नी | की . . . . . .
१ ३ + ● १ ३

॥ अंतरा ॥

म॑ ध॒ ध॒ सां सां सां | सां सां सां नीं रें सां नीं रें गं मं॑ गं रें सां |
— ० ० — ० ० | ० ० — ० ० — ० ० ० ० ० ० — |
म ध्य म वा दि प्र | थ म स वा . री सं . ग त सो . है |
\+ ० १ ३ + ०

म॑ ध॒ रें नीं ध॒ म॑ म म म म म॑ म म ऽ म | ग रे॒ ग म॑ ग रे॒ सा
० ० ० ० ० ० — ० ० ० ० ० ० ० ० | ० ० ० ० ० ० —
म ध रे नीं ध म की म म म म म म म | म . द्ध य शो . भा
१ ३ + ० १ ३

म॑ ध॒ म॑ ध॒ नी रें नी ध॒ | म॑ ध॒ म॑ म ग रे॒ सा
० ० ० ० ० ० ० ० | ० ० ० ० ० ० —
शु भ अ न नो . द य | की . . . . . .
\+ ० १ ३

क्र ५५ राग—ललित, ताल—धमार

कैसे जाऊ आली निकर्सा ननंद की चोरी लालहो ॥ ध्रु० ॥ वा दीन को डर मेरे हृदियामें ता दीन बाह मरोरी लाल हो ॥ १ ॥

— स्वर रचनाकार स्व. पं. विष्णु दिगंबरजीकृत

म ऽ ऽ म ऽ म म म म म म ग ' म ध॒ सां ऽ | नि रें नि ध॒ म
— — — — — — — — ० ० ० ० ० ० — — — | — — — —
कै स जा ऊ आ ली . . . नि क सी | न न द की
१ ३ + ० १

सांधु प | पग ग प पग प प प धु धु ऽ | सां रें सां धु प ग रे
. त | त ब हु भ ज त अ ग ? | र ग के . . . .
१ ५ + ७ १ ५ + ७

सा ऽ सा |
चे त |

क्र. ८७ राग–बिभास, झपताल

प्रात समये नंदलाल दरसको सब मिल ब्रिजवासी आनन्द द्वारे ॥ध्रु०॥
ब[illegible]जन सब हरिगुन गावे जागो यदुपते तुमदेव मुरारे ॥ १ ॥

साधु ऽ धु प धु प पग प ग रे सा | सा सा धु सा ऽ रे ग ग प
प्रा त स म ये . . . . . | नं द ला ल द र स
१ ३ + ८ १ २ + ८

ग रे सा | प पग प ऽ प प धु धु ऽ धु | पग प सांधु सां रें सां धु
कें . . | स ब मि ल ब्रि ज वा सी | आ न द . . द्वा .
१ ३ + ८ १ ३ +

प प ऽ धुग प ? धु ऽ |
. रे . . . |

॥ अंतरा ॥

प ऽ सांधु सां ऽ सां सां रें सां ऽ | सां सां रें ग ऽ रें सां सांधु
बं दी . ज न स ब | ह रि गु न गा . वे
१ ३ + ८ १ ३ + ८

प धृ ᵖप सां धृ ᵖप प धृ ᵖप सां धृ ᵖप | प प धृ धृ प प ऽ ग ᵍरे
ता . . व ळ दा . . ता . . | आ . . वे . . तो स
+ ९ ११ १

ᵖग प प प ᵗˢᵃ धृ सां ' सां रें सां रें रें सां सां धृ प प ग रे सा सा ऽ
दा . र ग को पू . छे . . . .
५ + ९

क्र. ८९ राग–बिभास, ख्याल, एकताल

संत सदा उपदेश बतावत केश सभी शिर श्वेत भये है ॥ धृ० ॥ तू ममता अजहू नहिं छाडत मौत ने आय संदेश दये है ॥ १ ॥

ᵖग प धृ | धृ ᵖप ᵖग ᵖग ग ग प धृ प ग रे सा ऽ रे सा ऽ सा रे
स त म | दा . उ प दे . . . श ब ता व त के .
११ १ ५ + ९ ११

ग प | ᵖग प ऽ प धृ धृ सां ऽ सां रें सां धृ ᵖप ᵖग प ग रे सा
श स | भी . शि र श्वे . त भ ये . . . . है . .
१ ५ + ९

॥ अंतरा ॥

प ध सां सां सां रें | सां ऽ सां रें ᵍरें ग ऽ रें सां ᵍधृ ᵖप ᵖग ग ग
तू म म ता अ — | हू न हि छा . ड त . . मौ त
११ १ ५ + ९

ᵖग प ऽ | प धृ ऽ धृ प धृ सां सां रें सां धृ ᵖप ᵖग प ग रे सा
ने . | आ य सं दे . श द ये . . . . है . .
११ १ ५ + ९

क्र. ९० राग-बिभास, तीनताल (मध्यलय)

शरण गये प्रभु को न उबारे। जित जित भीर परि भक्तन को चक्र सुदर्शन तहाँ सम्हारे ॥ धृ० ॥ महाप्रसाद बैठ अम्बरीषहि दुर्वासा की कोप निवारे ॥ १ ॥ —सूरदासकृत

प प ग धप ग रे सा सा | रे सा सा सा रे ग प ग प पग ग प प
शरण गये प्रभु | को न उबा . रे . जित जित
+ ७ १ ३ +

ध ध प | सांध सां सां ध प ध प पग प प सांध सां सां सां | रें सां ध
भीर प | री . भ . क्त न को च क्र सु द . र्श न | त हां .
७ १ ३ + ७ १

प ग प ध प ग रे सा
सम्हा . . . रे . .
३

|| अंतरा ||

पग ग ऽ ग प ध सां | ऽ सां सां सां सां रें सां सां सां रें गं गं रें सां |
महा प्रसाद बै | ठ अम्बरिष हीं दुर्वा . सा की |
+ ७ १ ३ + ७

ध सां रें सां ध प ग प ध प ग रे सा
को . . . प नि वा . . रे . .
१ ३

क्र. ९१ राग-बिभास, तीनताल (मध्यलय)

कैसे कुमरवा जाइल हमरा तोरे घगवा नैन फरकन लागेरे ॥ धृ० ॥ मौन-दशाके सदारंगीले प्रेम पियाला जबते अपने हूं नन उतार वारेरे ॥ १ ॥

॥ अंतरा ॥

म म प ध ..। सां सां सां | रें ^मगं रें सां नी सां नी ध ’ ध ध ध
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
ब्रिज ब नि ता . स ब | सु न ध्या . कु ल भ ई बा ज त
\+ ७ १ ३ +

ध नी ^धप ध | नि सां ’ नी ^धप म प ध प ^मग रे सा सा सा
ऽ ऽ ऽ ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
बि र ह भ | री . स खी ग्या . री . सू झ त
७ १ ३ +

सां सां सां | सा सां नी मां रें ^रेंसां नी ध मां नी ध प प प प प |
– ऽ ऽ | – ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
ना क छु | का म का . . ज घ र ह रां के . बि न स ब |
७ १ ३ + ७

म म प ध प प ध नी ध नि सां नि ध प म ग रे नि प ^मग रे म |
ऽ ऽ
र ही . . दु खा . . . . . री . . . . म धु बा . स री
१ ३ + ७

स्व. पं विष्णु दिगंबरजी स्तुति

क्र. १८७ राग–काफी, तीनताल (मध्यलय)

नमो नमो गुणि गंधर्व चरण। सुस्वर कंठ मधुरता ते बस। भयो सकल संसार निहारे ॥ धृ० ॥ पलुस ग्राम सुखधाम निवासी विप्र दिगंबर ब्रह्म शिरोमणि। सूनु विष्णु शुभ नाम धरायो। ध्यान ध्यान गुण मान बढायो ॥ १ ॥ नाद वेद सेवा व्रत धरिकें। जन गण मन संगीत जगायें। परम पावन संदेश जगायो। भक्ति भाव रस प्रेम सिखायो ॥ २ ॥

कवि–प्रि. श्रीकृष्ण ना. रातंजनकर, भातखंडे म्यूझिक कॉलेज, लखनऊ

ध प म प ^मग ^सारे म म | ^मरे म प ध नी ^धप ध प प ’ ध ध ध
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
न मो . न मो . गु णि | ग . ध . र्व च र ण सु स्व र
\+ ७ १ ३ +

नी सांनि् ध प | म म रे म प ध प म प मग् रे सा रे म प ध नी
ऽ ऽऽऽ ऽऽ
कं . ठ म | धु र ता . . . ते . ब र . भ यो . स क ल
० १ ३ + ७

प ध | सां सां रें सांनि् सांनि् ध प
ऽ ऽ | – ऽ ऽ ऽ ऽऽऽ
सं . | सा र ति हा . रे .
१ ३

|| अंतरा ||

म म म प ऽ प ध पध | सां सां रें सांनि् ध सां ' ध सां सां सां रें
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ | – ऽ ऽ ऽ ऽ – ऽ ऽ ऽ ऽ
प लु श आ म सु ख | धा म नि वा . सी वि प्र दि गं .
+ ० १ ३ + ७

मं गं रें सां | ' नि् सां रें सांनि् सांनि् ध प नि् रें सां नि् सां नि्
ऽ ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
. . ब र | ब्र ह्म शि रो . म णी सू . नु वि . ष्णु
१ ३ + ७

ध प | म प ध प प ध नी ध नि् मं सां प प ध प म प मरे म |
ऽ ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
शु भ | ना . म ध रा . . यो . . ग्य न ध्या . . न गु ण |
१ ३ + ७

प ध सां नि् ध प म प ध प मग् रे
ऽ ऽ
ना . . . म ब हा . . . यो .
१ ३

क्र १८८ राग—काफी, तराना, तीनताल (मध्यलय)

तना तनन देरेना तदारे दानी । तना तदारे दानी दानी दानी तदानी ।। धृ० ।। नादिर् दिर् दानि दानि तदारे तारे दानी नादिर् दिर् दिर् तुंदिर् दिर् दिर् दिर् दिर् दिर् दिर् दिर् दिर् दिर् दिर् धिडनग् तक्डान् धा धा धा क्डां धा धा क्डा धा धा ।। १ ।।

प्रोफेसर रामाश्रय झा "राम रग"
का जीवन परिचय

प्रोफेसर रामाश्रय झा "राम रग" का जन्म ।। अगस्त 1988 ई0 तदनुसार भाद्र कृष्ण पक्ष एकादशरी तिथि को बिहार प्रदेश मे दरभगा जिले के खजुरा नाम (जो अब मधुबर्नी जिले के अर्न्तगत आता है) गाव मे हुआ । आप मिथिला निवासी एव मैथिल ब्राह्मण हैं। आपके पिता प0 सुखदेव झा सगीत के स्नेही थे जिसके कारण प्रोफेसर झा पाच व. की अवस्था से ही सगीत की ओर उन्मुख हुए। सर्व प्रथम अपने पिता तत्पश्चात् अपने चाचा प0 मधुसूदन झा से हारमोनियम एव गायन सीखना प्रारम्भ किया। इसके उपरात श्री अवध पाठक जी से आपको गायन की शिक्षा मिली।

प्रो झा ने लगभग 15 वर्षों तक बनारस की एक प्रसिद्ध नाटक कम्पनी में कम्पोजर का काय किया जिसके फलस्वरूप ही आज शास्त्रीय सगीत क्षेत्र में शास्त्रीय संगीत (गायन) के रचनाकारों में आपका प्रमुख स्थान है ऐसे तो आपने संगीत की शिक्षा अनेक विद्वानो से ली है परन्तु उच्च संगीत की शिक्षा की दृष्टि से आपके गुरू प0 भोला नाथ भट्‌ट जी थे जिनके पास 25 वर्षों तक रहकर आपने ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, दादरा, टप्पा इन चार पट गायन शैलियो की विधिवत शिक्षा ली। पं0 भट्‌ट जी के अतिरिक्त आपने स्वर्गीय प0 बी0एन0 ठकार (प्रयाग) उस्ताद हबीब खा (किराना) प0 बी0एस0 पाठक (प्रयाग) से भी संगीत की शिक्षा प्राप्त की है।

प्रो0 झा प्रयाग मे 1954 से स्थाइ रूप से रह रहें हैं सर्वप्रथम 1955 में लूकरगंज संगीत विद्यालय में सगीत अध्यापक के रूप में आपकी नियुक्ति हुई। तदुपरात 1960 में प्रयाग सगीत समिति मे आपकी नियुक्ति हुइ। जहा आपने कुछ वर्षों तक

प्रभाकर और फिर 1970 तक सगीत प्रवीण की कक्षाओं की सगीत शिक्षा देने काक कार्य किया। इसी मध्य सन् 1968 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सगीत विभाग के अध्यक्ष प्रो0 उदय शकर कोचक ने प्रो0 झा के सगीत के क्षेत्र की सेवाओं से प्रभावित हाकर विश्वविद्यालय में आपकी नियुक्ति की।

प्रो0 झा उच्च कोटि के सगीत शिक्षक के साथ एक सफल गायक भी हैं। आपके अनेक शिष्य आकाशवाणी के प्रथम एव द्वितीय श्रेणी के कलाकार एव उत्तम शिक्षक भी हैं, जिसमें से कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार हैं।

डा0 गीता बनजी आकाशवाणी कलाकार रीडर एव अध्यक्षा सगीत एव प्रदर्शन कला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प0 शाताराम विष्णु कशालकर, सगीत प्रवीण वरिष्ठ प्राध्यापक प्रयाग सगीत समिति इलाहाबाद, डा0 हरीश कुमार सलूजा अध्यक्ष सगीत विभाग गर्वनमेंट कालेज गुड़गाव (हरियाणा) श्रीमती मजरी हुक्कू आकाशवाणी कलाकार बम्बई, श्रीमति सत्यादास सगीत प्रवीण अवकाश प्राप्त मनोवैज्ञानिक अधिकारी रक्षा सेवा, श्री रोबिन वटजी आकाशवाणी कलाकार एवं अध्यक्ष सगीत विभाग इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद श्रीमती लता मालवीय प्राचार्या गर्वनमेंट गर्ल्स कालेज, बांदा, श्रीमती कमला बोस आकाशवाणी कलाकार एव रीडर सगीत विभाग इलाहाबाद डिग्री कालेज, श्री कामता खन्ना आकाशवाणी कलाकार, श्रीमती माधुरी सक्सेना अध्यक्षा संगीत विभाग सी0एम0पी0 डिग्री कालेज, इलाहाबाद, श्री श्रीकान्त वैश्य आकाशवाणी कलाकार एव आकाशवाणी इलाहाबाद स्टाफ आर्टिस्ट, श्री हरीश चन्द्र श्रीवास्तव संगीत प्रध्यापक, गोरखपुर, श्री सुरेन्द्र अगिवाल, आकाशवाणी कलाकार एव कार्यक्रम अधिकारी (सगीत) आगरा, श्रीमती डाली बनजी आकाशवाणी कलाकार (दिल्ली) श्रीमती सुभा मुद्गल आकाशवाणी कलाकार (दिल्ली) कुमारी इला मालवीय अध्यक्षा सगीत विभाग आर्य कन्या डिग्री

कालेज, इलाहाबाद, श्रीमती शोभिता चौधरी (संगीत प्रवीण) मेरठ, श्रीमती रमा शुक्ला प्रध्यापिका (संगीत) ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद, श्रीमती पुष्पा लाहिरी प्रध्यापिका विद्यावती दरबारी इण्टर कालेज, इलाहाबाद, श्रीमती शिप्रा सन्याल अध्यक्षा संगीत विभाग एस0एस0 खन्ना डिग्री कालेज इलाहाबाद, डा0 बानी गुप्ता अध्यक्षा संगीत विभाग एस0एम0 कालेज भागलपुर, श्री नरसिंह भट्ट आदि का नाम उल्लेखनीय है।

उपरोक्त शिष्यो मे से कुछ शिष्यों ने तो उत्तर भारत के प्रमुख सम्मेलनो मे सफल कार्यक्रम देने के अतिरिक्त आकाशवाणी के मंगल वासरीय अखिल भारतीय कार्यक्रम में भी अपना सफल कार्यक्रम प्रस्तुत किया है।

प्रो0 झा0 उदार प्रवृत्ति के उच्च शिक्षक एवं गायक होने के साथ साथ संगीत शास्त्र के श्रेष्ठ लेखक भी हैं। आपकी लिखी हुई, पुस्तक 'अभिनव गीतांजलि', चार भागों में प्रकाशित हो चुकी है। इसमें डेढ़ सौ प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध रागों का विशद विवेचन एव नई तथा पुरानी बन्दिशों का अभूतपूर्व संकलन है। यह पुस्तक एम0ए0 तथा संगीत के शोध कार्य के हेतु अत्यंत उपयोगी है। आपने चार पट की गायन शैली में अपने उप नाम 'राम रंग' के नाम से ध्रुपद धमार, ख्याल ठुमरी, दादरा टप्पा एवं लक्षण गीत एवं तराना तिरवट, चतुरंग, राग माला एवं राग ताल सागर के प्रचलित तथा अप्रचलित रागो में लगभग दो हजार, बंदिशों की रचना की है, जो संगीत एवं साहित्य की दृष्टि से उच्च कोटि की है तथा सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रचलित हो रही है और संगीत प्रतिष्ठित कलाकारों द्वारा सम्मान पूर्वक गायी जा रही है। इसके अतिरिक्त भजन और लोक गीतों की शैली में मौसमी गीत जैसे - चैती, होरी, कजरी, इत्यादि गीतों की भी अनेक रचना की है जो साहित्य एवं भाव की दृष्टि से अत्यंत हृदय स्पर्शी है। मिथिला वासी होने के कारण आपने मिथिल

प्रदेश से सम्बन्धित राग तिरमुक्ति और राग वैदेही भैरव की रचना की है तथा मैथिली भाषा में ख्याल की अनेक रचना की है जो 'रजयते इति राग.' के अनुरूप ही है।

रचना की दृष्टि से प्रो0 झा का कार्य केवल बंदिश की रचना तक ही सीमित नहीं है, वरन आप नवीन रागों की रचना करने में भी सिद्धहस्त है।

आपने अनेक ऐसे रागों की रचना की है जो शास्त्र एव गायन वादन की दृष्टि से ग्राहृय ए रजयति इति राग ' के अनुसार रजक पूर्ण है। इसमे कुछ नाम इस प्रकार है - यथा मंगल गूजरी, वैदेही भैरवी, बैरागी, तोड़ी, भरवारी, सरस्वती सारंग, नट नागरी, चन्द्र मल्हार, महेन्द्र मल्हार अंजनी मल्हार, अजनी कल्याण केसरी कल्याण, देव कल्याण, कृष्ण कल्याण, विष्णु कल्याण, मारूती कल्याण, तिरमुक्ति और राम प्रिया इत्यादि।

लगभग विगत तीस वर्षो तक आपने आकाशवाणी से शास्त्रीय सगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत किया है सन् 1982 में उत्तर प्रदेश सगीत नाटक अकादमी ने अपने अकादमी पुरस्कार के अन्तर्गत प्रो0 झा को पुरस्कृत कर ' रत्न सदस्यता' प्रदान की। इसके अतिरिक्त बम्बई पूना कलकत्ता कानपुर रायपुर और सागर इलाहाबाद इत्यादि ऐसे नगरो के संगीत स्नेहियो ने आपका सम्मान करके सगीत के विभिन्न उपाधियां प्रदान की है। प्रयाग निवासियों एव इनके शिष्यों ने सन् 1988 में आपका सम्मान कर साठ हजार रूपयो एव उपाधि से अभूतपूर्व अभिनन्दन किया।

आपने 'बारिन दास सगीत परिषद' की स्थापना करके इस सस्था के माध्यम से प्रयाग नगर में अनगिनत सगीत समारोहों का आयोजन कर नगर एव वाहृय युवा कलाकारों को प्रोत्साहिक करने का अभूतपूर्व कार्य किया।

इसके अतिरिक्त आपने 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय सगीत सम्मेलन' जैसे ऐतिहासिक सगीत सम्मेलन को तीस वर्ष बाद पुन सन् 1980 से प्रारम्भ कर प्रतिवर्ष अखिल भारतीय स्तर पर सगीत सम्मेलन का सफल आयोजन कराया, जिसमे देश के अनेक सम्मानित एवं सुप्रसिद्ध कलाकारों ने भाग लिया सन् 1986 के फरवरी माह में सर्वप्रथम सगीत विभाग में आपने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से राष्ट्रीय सगीत का परिसवाद का आयोजन कराया। जिसमे देश के अनेक सम्मानित एव सुप्रसिद्ध कलाकारो ने भाग लिया जे सगीत विभाग के इतिहास में पहला अवसर था जब इतने ऊँचे स्तर पर संगीत परिसवाद का सफल आयाजन हुआ और परिसवाद में विश्वविद्यालय सगीत शिक्षा समस्या विषय पर देश के उत्कृष्ट विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोण से सगीत शिक्षा समस्या के निराकरण हेतु अपने विचार व्यक्त कर आयोजन को सफल बनाने मे अपना सहयोग प्रदान किया। यह आयोजन भगवान की कृपा एव प्रो0 झा के सूझ बूझ के कारण सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। जहा तक प्रशासनिक कार्य करने का बात है उसमें, आप बडे ही सिद्धहस्त हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संगीत एवं ललित कला विभाग में प्रो0 एव अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहकर सन् 1980 से अपने सरक्षण में बड़ी सूझ बूझ एव प्रतिष्ठा के साथ दस वर्षों तक विभाग को बताते रहे जिससे यह प्रमाणित है कि प्रो0 झा सगीत के उत्तम शिक्षक कलाकार, साधक, लेखक, रचनाकार और वाग्गेयकार के साथ साथ एक सफल आयोजक एवं प्रशासक भी हैं।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सगीत विभाग से ही सन् 1989 के तीस जून को प्रो0 एवं अध्यक्ष पद से अवकाश ग्रहण करने के उपरात श्री हनुमान जी की

कृपा से जो आपने ध्रुवपद और ख्याल गायन शैली में 'सगीत रामायण' की रचना की है। यह विलक्षण तथा सगीत जगत के लिये अत्यन्त उपयोगी एक अमूल्य उपलब्धि है।

यह अभूतपूर्व 'सगीत रामायण' ग्रथ महात्मा तुलसी दास जी के राम चरित मानस को आधार मानकर सातों काण्ड के प्रत्येक प्रसंग को ध्रुवपद और ख्याल गायन शैली की कविता में काव्य बद्ध किया गया है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि सभी रचनाए शास्त्रीय सगात के विभिन्न रागो और तालिका में लिपिबद्ध की गयी है।

"सगीत रामायण" में लगभग पाच सौ रचनाए हैं जो राग ताल मे लिपिबद्ध है। सभी छोटे बडे सगीतज्ञो के लिये उपयोगी तथा लिपिबद्ध होने के कारण सभी के गायन के लिय सुलभ व लौकिक परलौकिक दोनों ही दृष्टि से उत्तम फल देने वाली और प्रा0 झा के अन्य कृतियों में सबसे श्रेष्ठ कृति है।

विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करने के उपरात प्रोफेसर झा प्रयाग में ही रह कर सगीत की सेवा रत रहे हैं। वर्तमान में आप अपनी पुस्तक अभिनव गीतांजलि के पचम भाग के प्रकाशन में सलग्न हैं अभिनव गीतांजलि का पचम भाग चौथे भाग की ही तरह महत्वपूर्ण है। क्योंकि रागो के विभिन्न तथ्यों को ध्यान मे रखकर यह पचम भाग भी लिखा गया है।

इस भाग में प्रसिद्ध एग्र अप्रसिद्ध एवं कुछ नवीन रागो को मिलाकर लगभग पचास रागों का विस्तृत व्याख्या की गई है। यह नई व पुरानी रचनाओं का अभूतपूर्व सग्रह सभी वर्गों के सगीत साधनो के लिये अत्यन्त उपयोगी हे और प्रकाशित होकर सगीत स्नेहियों के समक्ष शीघ्र ही आने वाली है।

इन पुस्तको के अतिरिक्त आपके अनेक महत्वपूर्ण लेख सगीत के विभिन्न पत्रिकाओं में छप चुके हैं जिसकी पाठकों एव विद्वानो न मुक्त कठ से प्रशसा की तथा ये लेख सगीत जिज्ञासुओं के लिये बहुत ही लाभ प्रद है।

इसके अतिरिक्त अनेक सगीत सम्मलनों तथा सगीत गोष्ठियों में आपके अनेक सफल कार्यक्रम हो चुके हैं। जिसकी श्रोताओ ने भूरि-भूरि प्रशसा की है। आप मुख्य रूप से ख्याल ठुमरी, दादरा, और टप्पा गायन शैली के गायन में तो सिद्धहस्त हैं ही साथ ध्रुवपद धमार, तराना, तिरवट, चतुरग, रागमाला, राग सागर, राग ताल सागर, भजन और लोक गात को भी अत्यत रोचक ढग से प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न प्रा0 झा के कार्यों में सलग्न रहकर प्रत्येक दृष्टि से सगीत के प्रचार प्रसार मे सेवारत है।

राग मधुवन्ती— त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी—पवन पुरवाई बहे सनन सनन जियरा अलसाने भावे न पिया बिन

अंतरा—उन बिन कैसे कटे दिन रैन, पल छिन मेरो 'रामरंग'

जुग से जात बिलमाये बैरन किन ।।

स्थायी

															पध
															पऽ

पमं	गमं	<u>ग</u>रे	सा	रे	–	सा	सा	नि	मा	<u>ग</u>	म	<u>ग</u>मं	पध	पमं	<u>ग</u>
वऽ	नऽ	पुऽ	र	वा	ऽ	ई	ब	हे	म	न	न	मऽ	नऽ	नऽ	जि
३				×				२				०			
मं	प	नि	सां	पनि	रेंरें	सांनि	प	ध	प	<u>ग</u>मं	पध	पमं	<u>ग</u>रे	सा–,	पध
य	रा	अ	ल	साऽ	ऽऽ	नेऽ	भा	ऽ	वे	नाऽ	पिऽ	याऽ	बिऽ	नऽ,	पऽ
३				×				२				०			

अंतरा

															<u>ग</u>
															उ

मं	प	नि	सां	मां	–	मां	प	नि	सां	रें	सां	नि	ध	प	<u>ग</u>
न	बि	ऽ	न	कै	ऽ	से	क	टे	ऽ	दि	न	रै	ऽ	न	प
३				×				२				०			
रें	सां	नि	रें	सां	नि	ध	प	मं	प	नि	ध	पध	पमं	<u>ग</u>रे	सा
ल	छि	ऽ	न	मे	ऽ	रो	रा	ऽ	म	र	ग	जुऽ	गऽ	सेऽ	जा
३				×				२				०			
नि़	सा	<u>ग</u>(मं)	मं	<u>ग</u>मं	पध	मंप	नि–	पनि	सारें	सांनि	धप	मंध	पमं	<u>ग</u>	पध
ऽ	त	बि	ल	माऽ	ऽऽ	येऽ	ऽऽ	बैऽ	ऽऽ	रऽ	नऽ	ऽऽ	किऽ	न,	पऽ
३				×				२				०			

स्वरों का प्रयोग तथा महत्व

षडज तथा ऋषभ का इसमें सर्वाङ्ग न्यास है। हर एक आलाप का न्यास प्रथमतः ऋषभ और फिर षडज पर होता है जैसे—सा रे, ग रे, प ग रे, रे सा, प नि सा रे, ग रे नि प सा। प्रस्तुत राग में ऋषभ बहुत अधिक महत्वपूर्ण स्वर है। इसमें गन्धार तथा निषाद का अलंघन बहुत्व है तथा पंचम का न्यास (अभ्यास) बहुत्व है। इस राग का समप्रकृति राग शङ्करा है। परन्तु शंकरा में धैवत का प्रयोग होता है और राग हंसध्वनि में धैवत वर्ज्य है। साथ ही शंकरा में गन्धार व निषाद न्यास के स्वर है जो हंसध्वनि के बिल्कुल विपरीत है। हंसध्वनि में ऋषभ पर न्यास करने से शंकरा की छाया मिट जाती है।

आरोह—सा रे, ग प नि सा।

अवरोह—सा नि प ग रे, ग रे नि प सा।

मुख्य स्वरूप—ग प ग रे, रे ग प रे सा।

स्वर-विस्तार

१—सा, ग रे, नि प सा, रे ग ^प^र, सा नि प सा रे - ग रे सा।

२—प नि सा रे, सा, ग रे ग, सा रे, सा, प नि सा रे, ग रे नि प रे, सा।

३—सा ग रे ग प, रे ग प नि प, प ग रे, ग प ^ग^रे सा, रे ग रे, नि प सा, ग प नि सा नि प ग रे, सा।

४—ग प, प ग रे सा रे ग प, ग रे सा, प नि सा रे, ग रे ग प, नि प, प नि सा रे, सा रे ग, ग प, ग प नि सा नि प ग रे, प ग रे, ग ^प^रे सा।

५—ग प नि सा, प नि सा रे सा, सा नि प ग रे, ग प नि सा, प नि ^प^नि सा रे ग रे, ग रे नि प सा, ग प नि सा नि प, नि प ग रे, प ग रे सा रे सा नि प सा।

६—प नि सा, सा नि प सा, सा रे सा, ग रे, रे सा, रे सा नि प ग रे, प नी सा रे सा, ग रे ग ^प^र, नि प सा, सा नी प, नी प ग रे, ग ^प^रे, सा।

राग हंसध्वनि—लक्षणगीत (झपताल)

स्थायी—करनाट को राग औडव गावें, हंसध्वनि रैन में, सगत रेनि पसा

अतरा—(१) थाट बिलावल कल्याण कोउ कहे, शुद्ध सुर मध त्यागि
सगत गत रे सा ।

अतरा—(२) गरे निप सुर सोहे, शङ्करा झलकत, 'रामरग' रे चमक।
वादि सुर करत सा ॥

स्थायी

		ग							
ग	प	रे	-	सा	रे	-	सा	-	सा
क	र	ना	ऽ	ट	को	ऽ	रा	ऽ	ग
×		२			०		३		

ग	रे	सा	-	सा	रे	-	रे	-	-
औ	ऽ	ड	ऽ	व	गा	ऽ	यो	ऽ	ऽ
×		२			०		३		

ग	प	प	नि	सा	नि	प	ग	रे	-
ह	ऽ	स	ध्व	नि	रै	ऽ	न	में	ऽ
×		२			०		३		

		ग	ग						
ग	प	रे	-	सा	रे	नि़	प़	सा	-
स	ऽ	ग	ऽ	त	रे	नि	प	सा	ऽ
×		२			०		३		

अन्तरा (१)

ग	प	नि	सां	सा	सां	-	सा	रे	सा
था	ऽ	ट	ऽ	बि	ला	ऽ	व	ऽ	ल
×		२			०		३		

प	नि	सा	रे	ग	रे	सा	रे	सां	-
क	ऽ	ल्या	ऽ	न	को	उ	क	हे	ऽ
×		२			०		३		

सा	गा | प	ग	रे | ग	प | नि	सा	सा	
शु	द्ध | गु	ऽ	र | म	ध | त्या	ऽ	ग	
×	२		०	३			
सा	नि | प	ग	रे | ग	प | रे	—	सा	
सं	ऽ | ग	ऽ	त | ग	प | रे	ऽ	सा	
×	२		०	३			

अन्तरा—२

ग	र | नि	—	प | सा	सा | सा	रे	सा	
ग	र | नि	-	प | सु	र | सो	ऽ	हे	
×	२		०	३			
ग	प | नि	सा	नि | प	ग | प	नि	सा	
श	ऽ | क	रा	ऽ | झ	ल | क	त	ऽ	
×	२		०	३			
प	प | नि	सा	ग | रे	— | नि	प	प	
रा	- | म	र	ग | रे	ऽ | च	म	क	
×	२		०	३			
सा	नि | प	ग	रे | प	ग | '	सा	—	
वा	ऽ | दि	सु	र | क	र | त	सा	ऽ	
×	२		०	३			

सूर मल्हार---एकताल (विलम्बित)

स्थायी--आस तिहारी मात लीजै सुधि हमरी एरी ।

अन्तरा--अपनो समझ देवि 'रामरग' पै कृपा करो एक बेरि एरी ।

स्थायी

ग | गप	(ग) रे | —	सा	
आ | ऽऽ	स | ऽ	ते	
३	४		

प	— | सा	(ग) रे | ग	सा | रे	ग | —प	— — | नि	सा	
हा	ऽ | री	मा | ऽ	ऽ | त	ली | ऽजै	ऽ ऽ | सु	धि	
×	०	२	०	३	४		

रे रे रे				ग		
गगरेसारे ग | रे	मा | पगा	-प | गप	रे | -,ग	परे | -सा	- -	
हऽऽऽ ऽ ऽ | म	री | ऽए	ऽऽ | ऽऽ	री | ऽ,आ	ऽस | ऽते	ऽ ऽ	
×	०	२	०	३	४	

अतरा

ग	प | -	गा | -	सा | रे	नि | प	सा | -	सां
अ	प | ऽ	नो | ऽ	स | म	इ | ऽ	दे | ऽ	वि
×	०	२	०	३	४	
सा	रेरे	रे			ग	
सा	सा | गगरेसारे	रे | रे	मा | प	-नि | प	गप | रे	सा
रा	म | रऽऽऽ ऽ	ऽ | ग	नै | ऽ	कृ | पा	ऽऽ | क	रो
×	०	२	०	३	४	
				ग		
ग	प | मा	- | प	ग | प	रे | -,ग	परे | -	सा
ए	क | ऽ	ऽ | री	ए | ऽ	री | ऽ,आ	ऽम | ऽ	ते
×	०	२	०	३	४	

राग हंसध्वनि—रूपक (विलम्बित)

स्थायी -सकल दुख हरण, हरि के चरण, शरण ले मन ।
अतरा—काटत फन्द द्वन्द जगत के, 'रामरंग' हरत छिन में तापन ।

स्थायी

पपनिसा	रेगसारे	ग - रे - | - सा	-प | -ग	- सा	
एऽऽऽऽ	ऽऽ ऽऽ	ऽ ऽ गऽ | ऽ क	ऽ ल | ऽ दु	ऽ ख	
०		२	३		
			प रे		
रे	रे	रे | ग	ग | सा	-	
ह	र	न | ह	रि | के	ऽ	
०		२	३		

प़	प	नि | मा	रे | ग	प
च	र	न | ग	र | न	ले
०		२	३	
प,निसा	रेगमाग	ग-,रे- | -मा	-प | -ग	-सा
म,न ऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽ,सऽ | ऽ क	ऽ ल | ऽ दु	ऽ ख
०		२	३	

अन्तरा

प	गप | -	सा | सा	-	सा
का	ऽट | ऽ	त | फ	ऽ	न्द
२		०		
सांसांरेंगं	मंरेंगं - | - रे	-सा | सा	प	गप
द्व ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ | ऽन्द	ऽ ज | ग	ऽ	ऽत
२	३	०		
ग रे	सा | ग	रे सा | रे	-	रे
के	ऽ | रा	म | र	ऽ	ग
२	३	०		
ग	रे | नि	प | नि़	सा	-
ह	र | त	ऽ | छि	न	ऽ
२	३	०		
रे	-ग | -प	- | सासांरे ग	सारेग -	-,रे
मे	ऽत | ऽप	ऽ | न ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ,स
२	३	०		

राग हंसध्वनि—त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी—लागी लगन सखी पती सन परम सुख अति आनदन।

अंतरा—अग सुगन्धन चन्दन माथे तिलक धरे, मृग नयन
अजन पवन ते अमर हो नित पति काज सुखन ॥

स्थायी

ग
ग – प र | – सा सा सा | प रे – सा | सा रे सा सा
ला ऽ ऽ गी | ऽ ग ग न | स खी ऽ प | ती ऽ स न
० ३ × २

प ग प – | – – प गरे | सानि प प गरे | सानि पप गरे सासा
प र म ऽ | ऽ ऽ मु खऽ | ऽऽ अ ति आऽ | ऽऽ नऽ दऽ नऽ
० ३ × २

अन्तरा

र
ग– गग प– पप | सासासासा सा सारे | प– –नि – – र | – गं सा –
अऽ गसु गंऽ धन | च ऽ द न मा थेऽ | तिऽ ऽल ऽ ऽ क | ऽ ध रे ऽ
० ३ × २

नि ग रे
सा सा ग र | – प सा – | मा सा सा र | ग सा – मा
मृ ग न य | ऽ न अ ऽ | ज न प व | न ते ऽ अ
० ३ × २

सा ग रे – | नि प ग रे | गप गप निसा गरे | सानि पप गरे सासा
म र हो ऽ | नि त प ति | काऽ ऽऽ ऽऽ जऽ | ऽऽ सुऽ खऽ नऽ
० ३ × २

गप गप निसा गरे | सानि पप गरे सा–
लाऽ ऽऽ ऽऽ गीऽ | ऽऽ लऽ गऽ नऽ
० ३

राग हंसध्वनि – त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी—कल ना परे री तडपत बीते घडी पल छिन।
अतरा—ऐसो बलमा पीर नहिं जाने, जाने तरसावन
'रामरग' चैन न मैको रैन दिन।

स्थायी

सांरे
कऽ

ग

सांनि पप गरे सामा रे – – गरे | सारे गप रेग पप | रे – सा प़
ल ऽ नाऽ ऽऽ प ऽ | रे ऽ ऽ ऽऽ | ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ | ऽ ऽ री त
३ × २ ०

रे
नि सा ग रे | ग – ग ग | प प सारे सानि | पपगरे सासा, सांरे
ऽ प न बी | ऽ ऽ ते घ | डी प लऽ ऽ ऽ | छिऽऽऽ नऽ, क ऽ
३ × २ ०

अंतरा

प
ऐ

– प सां सा | सा – – सां | – सा ग रे | सा – सां ग
ऽ सो ब ल | मा ऽ ऽ पी | ऽ र न हिं | जा ऽ ने जा
३ × २ ०

ग सा
रे नि प प | सा - सानि प | प ग – प | रे – सा प़
ऽ ने त र | सा ऽ ऽऽ व | न रा ऽ म | र ऽ ग चै
३ × २ ०

– नि सा ग | रे – रे पग | रेग पप गरे सानि | पप गरे सासा, सांरे
ऽ न ना ऽ | मे ऽ को रेऽ | ऽऽ ऽऽ नऽ दिऽ | नऽ ऽऽ ऽ ऽ, कऽ
३ × २ ०

म. बलवंत राय भट्ट

आपका जन्म भावनगर (सोराष्ट्र) में 23 सितम्बर सन् 1921 मे हुआ बाल्यकाल मे ही आपके अन्दर माता से लोक सगीत तथा पिता से काव्य रचना के सस्कार सुदृढ होनें लगे थे। आपका शिक्षण भावनगर की राष्ट्रीय शिक्षणशाला में प्रारम्भ हुआ, किन्तु प्रज्ञा चक्षु हो जाने से आपको आगे की शिक्षा की शिक्षा के लिये बम्बई 'विक्टोरिया मेमोरियल स्कूल फार द ब्लाइन्ड' में भर्ती होना पड़ा। आपकी प्रारम्भिक सगीत शिक्षा 'विक्टोरिया मेमोरियल स्कूल' में हुइ। उसके बाद सगीत मार्तण्ड प0 ओंकारनाथ जी ठाकुर के 'सगीत निकेतन' में आपने नियमित रूप से संगीत शिक्षा ली। सन 1938 से 1950 तक आप पण्डित जी से ही शिक्षा प्राप्त करते रहे, उनके 'सगीत निकेतन' से ही आपने 'आचार्य' की पदवी प्राप्त की तथा अध्ययन के साथ साथ अध्यापन (टीचर्स ट्रेनिग) का भी अनुभव प्राप्त किया। पण्डित जी के साथ आपने देश विदेश का भ्रमण भी किया। आपने सगीत क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त की। गायन आपका मुख्य विषय रहा, किन्तु हारमोनियम, तबला, इसराज, जलतरंग, मृदग, मैंडोलिन आदि वाद्यों में भी निपुणता प्राप्त की। आपने समय समय पर वृन्द वादन का निर्माण तथा निर्देशन भी किया है। आप भारत की अनेक सगीत परिषदो में भाग लेते रहे हैं तथा आकाशवाणी के बम्बई, बड़ौदा, इलाहाबाद केन्द्रों से आपके कार्यक्रम प्रसारित होते रहे हैं।

सन् 1949 में आल इण्डिया म्यूजिक कान्फ्रेंन्स ट्रस्ट कलकत्ता द्वारा आयोजित तानसेन विष्णु दिगम्बर प्रतियोगिता में आप विजेता रहे तथा संगीत मीतण्ड पं0 ओकारनाथ ठाकुर के नेतृत्व मे भारत सरकार द्वारा भेजे गये सास्कृति प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य के रूप में आप अफगानिस्तार (1952) तथ नेपाल (1955) गये जहा आपके प्रदर्शन

साहित्य क्षेत्र में आपकी अच्छी गति है। गुजराती, मराठी, हिन्दी, प्रजाबी, इग्लिश, बगाली आदि भाषा आप जानते थे। आपने काव्य रचना भी की है। काव्य रचना प्राय गुजराती अथवा हिन्दी में करते हैं। सगीतोपयोग रचनाए आप हिन्दी में 'भावरंग' उपनाम से करते हैं। अमेरिका के ज्यूइश ब्रेल इन्स्टिट्यूट द्वारा आयोजित प्रज्ञ चक्षुओ की अर्न्तराष्ट्रीय साहित्य प्रतियोगिता म गुजराती काव्य पर आपको पुरस्कार मिल चुका है। आपने ब्रेल लिपि नेत्रहीनों के लिये हिन्दी, गुजराती, मराठी भाषा के 125 भजनो व पदों का सग्रह किया है। आप कुछ समय तक गुजरात 'ब्लाइन्डमेस इन्स्टीट्यूट' के उप प्रधान तथा अहमदाबाद के एक सगीत विद्यालय में प्रधानाचार्य के पद पर रह चुके हैं।

विद्यार्थी जीवन मे आप 'ब्लाइड स्कूल' के छात्रो द्वारा संचालित 'सत्य प्रकाश' नामक साप्ताहिक के सहसम्पादक थें। 'विजयरग' मराठी साप्ताहिक मे आप लेख भी लिखते रहे हैं और प्राथमिक कक्षाओ के मराठी के शिक्षक रह चुके हैं।

सन 1950 से आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कला सगीत भारती मे गायन के लेक्चरर के पद पर कार्य कर रहे हैं तथा गायन शिक्षा को सुदृढ रखने मे आपका सफल योगदान रहा है। आपके विद्यार्थी अनेक प्रदेशो मे अध्यापन कर रहे हैं।

×				५				०				१३			
(नि)ध	(नि)–	(नि)–	म	प	निध	निध	पम	(ध)प	गग	रि	ग	म	ध	प	(प)गम
को	ऽ	ऽ	द	र	श•	न•	क•	र्	••	स	--	•	व्र	न	च•
(प)गम	रि	सा	–	सा	(सा)सां	(सांनि)ध	(सां)नि	रिं	सां	नि	ध	प	(प)ग	(म)–	म
••	द	को	ऽ	ज	पॅ	ना	•	म	न	•	र	न	न	ऽ	द
(नि)ध	(नि)–	(नि)–													
को	ऽ	ऽ													

अन्तरा

×				५				०				१३			
		प		(प)सां	–	सां	सां	-	सां	सां	–	(नि)ध	सां	नि	रिं
		प्रि	य	ला	ऽ	ल	गो	ऽ	प	गा	ऽ	पि	यू	•	द
सां	–	सां	सांनि	(रिं)सां	नि	ध	ध	प	नि	सां	रिं	निसां	निसां	ध	प
को	ऽ	म	हा•	रा	•	•	त	रा	•	लि	प	शि•	••	द	को
–	(प)सांमं	गंमं	रिं	सां	ध	नि	रिं	सां	नि	ध	पध	मप	(प)ग	(म)–	म
ऽ	भा•	••	व	र	•	ग	म	न	मु	व	ना•	••	न	ऽ	द
(नि)ध	–	–													
को	ऽ	ऽ													

अन्तरा

×		३		०		७		०		११		०	
सां प	प	सां	सां	सां	सा	–	सा	गां	सा	–	सां	सांरिं	निसां
ध	इ	रि		स	रा	ऽ	ह	त	वा	ऽ	र	जि •	स •
प	प	सां	सां	गां	रीं	–	गं	सा	मं	–	सां	सांनि	रिं
प	ह	रि	पु	स	ग	ऽ	ह	त	वा	ऽ	र	जि •	स
सां	–	सांमं	गंमं	रिं	सां	–नि	रि	सा	–नि	ध	प	गम	रि
कें	ऽ	भा •	• •	र	•	ऽ •	ग	भा	ऽ •	नि	त	ए •	•
ग	म	ध	प	ग	म	रि	गा	–	सा	नि ध	नि ध	नि ध	–
से	•	व	र	वी	•	र	की	ऽ	वि	ज	य	गा	ऽ
नि ध	–	नि	सां	प सां	रिं	सां	नि	ध	प	ग	म	नि ध	–
था	ऽ	शु	भ	सु	र	न	र	मु	नि	गा	•	वे	ऽ
–	नि ध	–नि	सांरिं	गांनि	धप	मप							
ऽ	•	ऽ •	• •	• •	त •	ग •							

पं0 जितेन्द्र अभिषेकी

एक तपस्वी कलाकार

महाराष्ट्र उत्तर कर्नाटक, तथा गोवा की भूमि सगीतकलाकारो की दृष्टि से बडी उर्वरा रही है। इन तीनों प्रदेशों ने संगीत की दुनिया को एक से एक बढ़कर उच्च कोटि के कलाकार प्रदान किये हैं। ख्यालगायकी के आरभिक युग से लेकर यहा विद्यानुरागी, ..ती, और पहुचे हुए कलाकारो की मानो एक मालिका ही बन गई है। बालकृष्णबुवा इचलकर रजीकर, रामकृष्णबुआ वझे, भास्करबुवा बखले (जो वस्तुत गोवा और महाराष्ट्र के हैं) विष्णु दिगम्बर, केसरबाई केरकर, मोगूबाई कुर्डीकर, हीराबाई बडोदेकर, गगूबाई हनगल . एक से एक बुलद सितारो की कतार लगी हुई है। और फिर इन महनीयो की शिष्य प्रशिष्यो की बदौलत यह पुरानी गानमडित परपरा अद्यावधि अटूट चल रही है। इनमें विशेष लक्षणीय बिन्दु यह भी है कि शुरू के जमान में बालकृष्णबुवा (महाराष्ट्र), बझेबुवा (गोवा) तो गानविद्या की साधना के लक्ष्य को मन में सजोकर कभी पैदल तो कभी वाहन को पकड़कर हद्दू हस्सू खॉ के जमाने में मध्य भारत पहुचे थे और अधपेट रहकर, कष्टकर गुरूसेवा को निभाते हुए वे विद्या सपादन के लक्ष्य में सफल हुए थे। इधर पं0 भीमसेन जोशी भी इसी व्रत के पीछे गुरू की तलाश में किशोर वय मे ही घर से भाग कर उत्तर भारत पहुचे थे। इसी गानविद्यावती तपस्वियों की कड़ी के एक देदीप्यमान ज्योतिपुज हैं, पं0 जितेन्द्र अभिषेकी, जिनके हाल ही के स्वर्गवास के कारण (नवम्बर 1998) सगीतक्षेत्र अपूरणीय क्षति हुई है।

पं0 अभिषेकी एक साथ विचारशील व्युत्पन्न गायक, प्रतिभा सम्पन्न सगीतकार

एव वाग्गेयकार और गुरूकुल परपरा का कालानुगामी नूतन आयाम देन वाले आदर्श विद्यागुरू थे। उनकी इन विशषताओ के जौहर साठोत्तर काल म नित्य नये उन्मेष के साथ अभिव्यक्त होते रहे। उन्होंने अपनी साधना के दौरान आगरा और जयपुर अत्रौली घराने के गुरूओं से तालीम प्राप्त की और साथ ही साथ जहा से जो अच्छे 'गुन' और घरानेदार आदशे मिल सकी उन्हें अपने गानकोश' में समाविष्ट कर लिया।

यह सब करने के दौरान पडितजी ने एक अन्य लक्ष्य पर भी अपना ध्यान रखा। उनकी प्रतिज्ञा थी कि मैं केवल गवैया नही बनूगा बल्कि अपनी गानसाधना को विश्वविद्यायीन शिक्षा के द्वारा अधिक ठोस भूमिका पर खड़ा करूंगा। स्पष्ट है कि श्री अभिषेकी के इस अनूठे निश्चय में स्वातत्र्येत्तर गुण की आधुनिकतावादी प्रेरणा ही काम र रही थी। इस ध्येयपूर्ति के लिये जितेन्द्र जी को क्या करना पड़ा इसकी कहानी भी उनके व्यक्तित्व की गरिमा को उजागर करने वाली है।

प0 अभिषेकी का बचपन (जन्म 1932) गोवा के मंगेशी नामक प्रसिद्ध देवस्थान में बीता। उनके पिता श्री मिकाजी उर्फ बालूबुवा वहां के जाने माने कीर्तनकार थे। यह नारदीय कीर्तन सगीतयुक्त हरिकथा निरूपण के माध्यम से श्रोताओं पर नैतिक संस्कार अकित करने वाली, महाराष्ट्र गोवा-उत्तर कर्नाटक की एक खास लौकिक कलाविधा है। इसमें पगडी, धोती उपरने से कीर्तनकार श्रोतृसमुदाय के बीच ा सामने खड़ा होकर होर्मोनियम तबले ओ करताल की सगत पर किसी रोचक और प्रेरणादायक कथा जीवंत नाट्यात्मक शैली में प्रस्तुत करता है और उस पर अपनी आजीविका चलाता है। कुमार जितेन्द्र इन कीर्तनो मे पिता के पीछे खड़ा होकर करताल बजाता हुआ गायन में उनकी सगत करता था। इससे ताल स्वर के साथ कीर्तनी शैली में गाने के सस्कार उसे बचपन

से ही मिलने लगे। इसी के साथ साथ गोवा मे सालभर मे सजने वाले मेलों में मराठी सगीत नाटकों के खेल बराबर होते रहते थे।

इन खेलों को देखने के दौरान मच पर स रागसगीत पर आधारित नाट्यपदो को सुनने का भी अवसर जितेन्द्र को मिलता रहा। ये पद तथा कीर्तन का गायन कहरवा, त्रिताल, झपताल, आदि तालों पर गाये जाते थे, जिससे इन तालों का ज्ञान उसे अपने आप होता रहा। इस अनुभव के बारे में वे स्वय बताया करते थे कि यह सब अपने आप हृद्‌युगम होता गया, समझाने की जरूरत नहीं पड़ी। क्योंकि मेरे व्यक्तित्व मे ही वह सगीताकर्षण था, उसमें बरबस मुझे उस ओर खींच लिया।

पं0 अभिषेकी के पिता चाहते थे कि जितेन्द्र भी कीतनकार बने और परम्परा को चलाए। इससे उसका योगक्षेम भी चलेगा और घर का व्यवसाय भी बना रहेगा। किन्तु जितेन्द्र को इस सीमित जीवन शैली में रस नही था। गोवा में ही विलायत हुसैन खां की शिष्या श्रीमती गिरिजा केलकर से बाल जितेन्द्र को कुछ रागसगीत की शिक्षा भी मिलती थी। जितेन्द्र ने तय किया कि बस इस दुनिया से अलग हटकर और व्यापक क्षेत्र में पख मारना चाहिए। और उम्र 15 की अवस्था में ही यह लड़का केवल आधी पैंट, कमीज और टोपी पहने हुए मंगेशी से चल पड़ा और पुणे शहर मे हाजिर हो गये। पुणे में 'अनाथे विद्यार्थी गृह' (आज के पुणे विद्यार्थी गृह) में निराधार छात्रों को शालेय शिक्षा दिलाने की व्यवस्था थी। छात्रों को 'मधुकरी' मांग कर (अच्छे परिवारों से अन्न प्राप्त करके) भोजन का इतजाम करना पड़ता था और स्कूल के कुछ कामों में हांथ जुटाना भी पड़ता था। जितेन्द्र ने वो सब किया और उसके साथ ही साथ पुणे में सगीत शिक्षा प्राप्त करने का भी उपक्रम बना लिया।

फिर 1949 में मैट्रिक (एस0एस0सी0) होने के 1952 में मुम्बई के कालेज में नाम दर्ज करके उन्होंने संस्कृत विषय में बी0ए0 कर लिया । इसी काल उन्हे आकाशवाणी के कोंकणी भाषा विभाग में नौकरी मिली। इस दौरान उन्होंने मुम्बई के मास्टर नवरंग और आगरा घराने के उस्ताद अजमतहुसैन खा से तालीम प्राप्त की। अजमतहुसेन जी ने उनकी प्रतिभा और जिद को देखते हुये उन्हे प्यार से सिखाया। उस्ताद जी के ढग से अभिषेकी भी प्रभावित थे। ई कालखड में उन्हें सगीत नाटक अकादमी की छात्रवृत्ति हासिल हुई।

इसका लाभ यह हुआ कि जमाने के मुबइ के प्रसिद्ध विद्यागुरू प0 जगन्नाथबुवा पुरोहित से अभिषकी जी को 1953 से लगातार पाच वर्ष तक कडे अनुशासन में सख्त तरीके से विधिवत तालीम मिली। अत. पडित जगन्नाथबुवा से उनका सपर्क उनके अत तक (1968) बना रहा। इस तालीम के बाद अभिषेकी जी ने जयपुर-अत्रौली घराने के गायक श्री गुलुबाइ जसदनवाला से और तत्पश्चात उस्ताद अल्लादिया खा साहब के नाती बाबा अजिजुछिन खां से भी बंदिशों के सिलसिले में तालीम प्राप्त की।

इस विधिमुखी ज्ञान साधना में महत्वपूर्ण बात जो थी वह यह कि अभिषेकी जी के खुद की विचार प्रवणता के आधार पर इन समस्त संस्कारों को अपने ढग से आत्मसात कर लिया और स्वय अपनी एक शैली बना ली। एक ऐसी शैली जिस पर अभिषेकी जी की सुस्पष्ट मुद्रा अंकित थी। एक विद्वान, विचारवान कलाकार तथा गायकी एवं नायकी (शास्त्र पारगतता) पर प्रभुत्व रखने वाले महफिली कलाकार की हैसियत से उन्होंने अखिल भारतीय संगीत क्षेत्र में अपनी कीर्ति को विकसित किया। वे अपनी ख्यालप्रस्तुति में स्वरलयबधों के माध्यम से कदम ब कदम एक तरह का सुखद उत्कठावर्धक रूप का 'कलात्मक तनाव पैदा' करते थे और उपज तथा बढ़त

की एक एक सीढी पर निर्मित इस उत्कठन का उपशमन करने क बाद फिर एक नया चाहत वाला तनाव पैदा करत थे। इस उत्कठन के समय उनकी गानमुद्रा 'सविकल्प समाधि' की एकतानता से मुक्त बनकर अत्यत उक्कट जन जाती थी और उसकी बदौलत उस तनाव का 'लत्फ' श्रोताओं तक पहुच जाता था। पडित अभिषेकी का ख्याल मानो एक पुख्ता किले के मान बधा हुआ रहता था। उसका एक भी पुर्जा ढीला तथा फालतू या फजूल नहीं रहता था। मुखड़े की समपर उनका लपक कर उतरना बड़ा ही बात पैदा करने वाला होता था क्योंकि यह सम बंदिश के अक्षरो तथा रागस्वरों के समयाधित बर्ताव से न्याय बरतते हुए आती थी उसके पीछे पडित जी का विचार रहता था।

प0 जितेन्द्र अभिषेकी की गायत्री पौरूषयुक्त और आक्रमक ढग की थी। उनकी खूबसूरत देहयष्टि भी उससे मेल खाने वाली थी। इस गानशैली में नकली भावातुरता या अतिरिक्त चिकनेपन के नाटक को स्थान नही था। बंदिश नामक घटक का उसमें सर्वाधिक प्राधान्य था। उसके माध्यम से राग की ठोस देहाकृति को उभारने पर बल रहता था। स्थायी और अतरा दोनों को समुचित न्याय देने पर ध्यान केंद्रित रहता था। खास कर अतरे के विस्तार के प्रति अभिषेकी जी अपनी कला को पूरी तरह लगा देते थे। अतरे के प्रदेश में प्रवेश करने से पूर्व आप जब तारषड्ज की देहली पर कदम रखते थे उस समय का सागीतिक क्षण अविस्मरणीय बन जाता था। उनकी लयकारी पर आगरा घराने की छाप तो थी ही, किन्तु उसमें स्वर सौंदर्य की हानि नहीं होती थी। सिद्ध रागों के साथ ही साथ आलाप किन्तु गरिमायुक्त रागों को पेश करके वे महफिल में नया चैतन्य पैदा कर देते थे । अथक सगीत साधना

की बदौलत उनके पास अनकाप्रध रागो और अनेक ढगदार बंदिशों का सग्रह था, इस सबका प्रयोग वे अन्यान्य महफिलो मे करते थे।

पं0 अभिषेकी का ख्याल धीरे धीरे चरमसीमा पर पहुचता और बोलतानो एव तानक्रिया के साथ वे द्रुत ख्याल की पेशकारी को सर्वथा नया ट्रीटमेंट देते हुए सपूर्ण राग के चक्र को अतिम बिदु तक ले आते थे। उनकी महफिल में रजन के साथ ही साथ उदबोधन का भी लाभ जानकार श्रोताओं को प्राप्त होता था। प0 अभिषेकी जी ने अपनी तपस्या और ज्ञान साधना के बल पर अखिल भारत के प्रथम दस गायको मे अपना स्थान केवल दसही वर्ष में ᳵ1970ᳵ मे प्राप्त कर लिया था।

प0 अभिषेकी के व्यक्तित्व का एक दिगर महत्वपूर्ण पहलू था उनकी विद्यादाननिष्ठा। गुरूकुल पद्धतिय से उन्होनें 15-20 से भी अधिक पुरूष महिला शिष्यो का विद्या प्रदान की। अनेक शिष्यों का अपने घर पर ठहराकर तालीम दी। किन्तु संगीत की 'ट्यूशन' कभी नहीं की और न ही शिष्यो से धन की अपेक्षा की। ऐसी 'औघडदानी' गुरू आज के जमाने में बहुत ही कम सभवत 2-3 ही होंगे।

आज पडित जी के अनेक शिष्य महफिली गायक बने हुए हैं। उनके सुपुत्र शौनक हकीकत मे तैयार शिष्य हैं। श्री राजा काले, प्रभाकर कारेकर, अजित कडकड़े आदि और भी कुछ नाम।

प0 अभिषेकी ने मराठी सगीत नाटको के पदो का सगीत निर्देश भी दिया और उसम कमाल कर दिया कि मराठी संगीत नाटकों में अभिषेकी युग' के नाम से उनकी कला को पहचाना गया। इस तरह पाडित्य, कलात्मकता, सास्कृतिक ध्येयदृष्टि, उच्चविद्याविभूषिता और उच्च कोटि की सर्जनशीलता इन पचविद्यगुणों से पुडित अभिषेकी

पं. जितेन्द्र अभिषेकी यांच्याशी

सांगीतिक बातचीत

पडित जी आपका बचपन गोवा के श्री मग्ेश के मदिर के परिस्र म गुजरा। आपका बचपन पुरोहित का, विद्वान का है। ललित - भजन कीर्तन क आप पर प्रत्यक्ष स्स्कार हो ग्ये है। लाकनाट्य लोक सगीत, सगीत नाटक तो गोवा की मिट्टी में जम गया है। इस वातावरण का आपके मन पर क्या प्रभाव पडा?

गोवा का परिसर प्रकति का आभूषण, है। इस मदिर संस्कृति के सहारे यहा सगीत गायन, वादन, नाट्य आदि चारों तरफ से सास्कृतिक वातावरण की विरासत से युक्त परिसर खिल उठा। मैं भी चूकि मंगेशी मे पैदा हुआ था, प्रात शहनाई, चौघडा आरती के समय मचवाद्य, तत्पश्चात् देवदासी का गायन, नर्तन, कीर्तन आदि के साथ ही सालभर मे न जाने कितने नाटको के प्रयोग सपन्न हुआ करते थे। इसके साथ ही गाव का मेला, रामनवमी का बडा वार्षिकोत्सव आदि के माहौल में बचपन मे ही मुझपर सगीत के नाटय के, कीतन के,निरतर सस्कार होते गए। मुझे इस बात का स्मरण नही है कि किसी ने मुझे खास तौर पर बताया हो कि त्रिताल, झपताल, एकताल, क्या होता है। पिताजी हमें साथ लेकर बैठते थे, हाथ से हम ताली दिया करते थे। मेरे मन पर इस समस्त वातावरण के अनजाने में ही सस्कार हो गये। मन ही मन लगातार उसका मनन चालता रहता था। बडे बडे गायक, वादक, मय समय पर मगेशी आया करते थे। उनके सपर्क मे रहने से भी बहुत सी बातें ज्ञात होती थी। इन्ही में कीर्तनकार, गायक, नट इन सब के आवागमन का भी मुझपर असर पडा। इसलिये ऐसा नहीं है कि मुझे जान ब्झकर कुछ करना पडा हा, बल्कि वह अपने आप होता

गया। फलत यद्यपि मै प्रत्यक्ष नाटक ग शामिल नही था, तो भी नाटक याने क्या वह कैसे सम्पन्न होता है उसका प्रभाव कैसा पडता है, इस विषय का मेरा ज्ञान निरतर बढ़ता ही गया। आरम्भ में मैं आकाशवाणी पर था। यद्यपि शुरू में नाटक का प्रस्तुतीकरण मैंने नहीं किया थ, फिर भी नाटक मेरे लिये अपरिचित नहीं था। लोगो का मेरे नाट्यसगीत विषयक ज्ञान की, क्षमता की पूरी कल्पना थी और इसीलिए उन्होंने नाटक के सगीत निर्देशन का उत्तरदायित्व मुझे सौंपा और उसे मैंने अच्छी तरह निभाया।

पडित जी, नाट्यसगीत के निर्देशन की जिम्मेदारी आपके कलाजीवन में बहुत देर से आई। शुरू में महाराष्ट्र और भारत को आप की पहचान एक अभिजात संगीत गायक की हैसियत से हुई। इसका आरभ, पूर्वतैयारी कैसे और किस कारण हुई ?

मेरे पिता जी एक उत्तम कीर्तनकार थे। उनकी आवाज सौ में एक जैसी थी, मास्टर दिनानाथ के ढग की थी। मास्टर दीनानाथ का परिवार हमारे चचेरे भाइयो में से था। ग्वालियर घराने के शकरबुवा गोखले मगेशी में ही रहते थे। उन्हीं के पा मेरे पिता जी सीखते थे। पौरोहित्य, वैदकी एव गायन तीनों को वे एक साथ निभाते थे। बैठक के गायन के प्रति गोवा में आज की ही तरह उस जमाने में भी विशेष औत्सुक्य नहीं था। गोवा में आज भी 'भजन याने गाना' यही धारणा रूढ़ है। ऐसे जमाने में भी मेरे पिता जी ने लगभग 700 बंदिशे मुखाग्र की थी। आरम्भ में मुझपर जो गान सस्कार हुए वे मेरे पिताजी के ही थे। अत. मेरे पहले गुरू मेरे पिता जी ही थे। वे प्रतिदिन रात को हमें साथ लेकर बैठते थे। पाठशाला, आरती, भजन कीर्तन के उपरांत रात को साढ़े नौ बजे गाने की तालीम शुरू होती थी। थकावट महसूस होती थी, किन्तु एक बार गाना शुरू होते ही दूर हो जाती थी, नई ताजगी, नया चैतन्य, पैदा होता था और पिताजी रोज नियमित रूप से गाने की तालीम दिया

करते थे। गाने की बंदिश की सथा पूरी होने से पहले व हमें सोने भी नहीं देते थे। सगीत के क्षेत्र मे जिसे तालीम कहा जाए, वैसी न हुई हो तो भी सस्कार अवश्य हुए, पाठातर हुआ, सबल प्राप्त हुआ, जिसका उपयोग भविष्य मैं पर्याप्त मात्रा मे हुआ।

उत्तर हिन्दुस्तानी सगीत की तीनो परम्पराओ के सस्कार आपकी गायकी पर हुए है। सगीत की परम्परा में जिसे 'गण्डा बधन' कहते हैं वह सर्वप्रथम किस परम्परा के घराने का हुआ ?

'गडा बधन' मुस्लिम सस्कार मे माना जाता है। हिन्दु सस्कार में उसे 'व्यास पूजन' कहा जाता है। वैसे मैंने औपचारिक तौर पर किसी का गडा नही बांधा। मेरी पहली तालीम अजमत हुसेन खा के पास हुई। उस समय मैं मुंबइ में रहता था। कुछ समयोपरात वह तालीम बद हो गई, हम दोनों की कठिनाई के कारण। उसके बाद मे जगन्नाथबुवा के पास सीखने लगा। वैसे बीच में मेरी शिक्षा जारी थी, किन्तु नियमबद्ध शिक्षा तो जगन्नाथबुवा के पास ही शुरू हुई। अर्थात गडा बधन आदि पर उनका भी खास विश्वास नही था और आग्रह तो बिलकुल था ही नहीं।

तीन अलग अलग परम्पराओं की तालीम लेकर भी आपने खुदे की गायन शैली विकसित की। इस प्रयोगशिलता एवं नवनिर्मित की प्रकिया के विषय में अपना दृष्टिकोण क्या है।

बचपन से ही मुझे स्वतत्र रूप में विचार करने की आदत थी। मैं जो कुछ सुनता था, सीखता था, उसमें अच्छा क्या है, बुरा क्या है, इस बात का सारासार विचार में किया करता था। कुछ गवैयों के पास सीखना मैने बद किया उसका भी यही कारण

था। गलतिया मालूम होने लगी, मर्यादाए ज्ञात होने लगी, इस बात का एहसास होन लगा कि जो कुछ चल रहा है सा ठीक नहीं चल रहा है। किन्तु तीनो गायकियो का मेरा जो अध्ययन हुआ वह समझदारी के साथ हुआ। वैसे मर्रा अधिकाश शिक्षा अग्रवालों के पास हुइ किन्तु मैं आग्रावालो के पास हुई किन्तु मैं आग्रावाला नहीं बना। मुझपर किसी का खास सिक्का अकित नहीं है तो आवाज के बारे में ही पेशकारी के बारे मैं। मुझे इस बात के प्रति मोह कर्दा" नहीं हुआ कि बडे लोग इस प्रकार गात हैं तो मुझे भी वैसा ही गाना चाहिए। उनका मुझे अनुकरण कर लेना चाहिए। अपने विद्यार्थियो को पढ़ाते समय भी मरी दृष्टि रहती है। मैं कभी दुराग्रही नहीं होता । परम्परा की समृद्धि की दृष्टि से मुझे यह महत्वपूर्ण लगता है। शिष्य की आवाज की जाति पट्टी रेंज बौद्धिक आकलन आदि बातो का मैं विचार करता हूँ। जिसमें जिस बात की कमी हो उसकी पूर्ति कैसी होगी इस बात पर मेरा बल रहता है। गुण दोष, मर्यादाएं, अपेक्षाए आदि के सकारण समीकरण को मैं शिष्यो के सामने रख लेता हूँ और तदनुरूप मैं उन्हें तालीम देता हूँ। उच्चारण शस्त्र, बंदिश के उच्चार, शब्दों के भावार्थ, अन्वयार्थ आदि में मैं अपना ध्यान केंद्रित करता हूँ। बंदिशें बिठाने समय छात्रो को मैं आवश्यक शब्द, वर्ज्य शब्द आदि की जानकारी करा देता हूँ।

क्या सगीत सिखाने की कोई खास पद्धति होती है आप किस पद्धति का उपयोग करते हैं।

वैसे मेरी तालीम देने की पद्धति लचीली है। शिष्य की क्षमता एव तैयारी के अनुसर मैं उसे बदल देता हूँ। किन्तु प्रात काल के रियाज पर मेरा बल रहता है। उसके कुछ प्रतिकृतिप्रदत्त कारण हैं तो कुछ मानसिक कारण भी। मेरा यह अनुभव है कि प्रात·काल का प्रहर सस्कार के लिये हमेशा उत्तेजक रहता है।

तत्पश्चात दिनभर वे सस्कार अपने मन मे ध्यान में मडराते रहते हैं। गाने के रियाज में ब्रहम मुहूर्त का महत्वपूर्ण स्थान है। शरीर की आवाज की थकान की प्रवृत्ति उससे कम हो जाती है, आवाज मे गहराई आ जाती है, गाने की रेज बढ़ती है। प्रात काल के प्रहर की नीरवता एकाग्रता के लिये ध्यान अध्ययन के लिये उपकारक सिद्ध होती है। सगीत की शिक्षा के साथ ही आचार विचार व्यवहार आदि चारित्रिक सस्कारो का भी गायन पर प्रभाव पडता है। पेशकारी के भी ऐसे ही संस्कार हैं। ऐन बैठक के समय का महत्व, पूर्वाभ्यास, एकाग्रता, बैठक की रचनाओं का अकन आदि पर भी मैं बल देता हूँ। साहित्य, काव्य का अध्ययन, अन्य कलाओं की जानकारी और गानेवाले एव्र गायन पर पड़ने वाले उसके प्रभाव को सौंदर्यशास्त्र का परिचय में करा देता हूँ। चाहे वह शब्द हो, स्वर हो पेशकारी हो, अथवा इन सबका एक सौंदर्यदर्शी परिणाम हो, इन सबका ज्ञान गायन सिखाते समय ही मैं करा देता हूँ। सूची बनाना, नोट्स तैयार करना, कापिया भरना आदि वाह्य बातो पर मेरा बल नहीं रहता। मेरी राय में सगीत की शिक्षा से यह बात मेल नहीं खाती। विद्यापीठो के सगीत विभाग एव सगीत सस्थाओ के बारे में भी मेरा यही नजरिया है। वहा समग्र बल पेपर वर्क पर रहता है, किन्तु प्रत्यक्ष प्रयोग शिक्षा की कमी रहती है। इसलिए इस ग्रंथिक परम्परा मे से अच्छे गायक पैदा नहीं हो सके। इसलिए मेरे बहुत से विद्यार्थी मेरे घर पर ही होते हैं। मेरे आचार विचार सीखने सिखाने के सस्कार उनपर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे होते रहते हैं।

सगीत सीखने के लिये आपके पास किस वृत्ति प्रवृत्ति के छात्र आते हैं?

कुछ खुदगज आते है तो कुछ गभीरतापूर्वक सीखने के लिये भी आते हैं। मेरी पढाई क्लास के ढग पर नहीं चलती, मैं उसे उसे नहीं चलाता। देखे, इनके पास

भी जाकर देखें शायद कुछ साध्य हो जाता, साल दो सालो में इनका नाम गुरू के तौर पर मेरे साथ सभवत जुड सकेगा। किन्तु ऐसे विद्यार्थी प्राय मेरे पास नहीं आते और आ जाये तो टिकते नही। हम अच्छी तरह परख कर ही छात्रो को चुन लेते हैं। यह बात उतनी आसान नहीं है कि और कुछ साध्य नहीं होता तो गाना सीखकर देखे। किसी भी विद्या शाखा की अपेक्षा वह मुश्किल बात है।

अपने अनेक वर्षों के अनुभव में से क्या आपको कभी इस बात का एहसास हुआ कि किसी विशिष्ट सस्कार के आर्थिक परिस्थिति के विद्यार्थी अधिक प्रमाणिक एव गुणग्राहक होते हैं ?

ऐसे भेद सभवनीय हैं। पैदायशी अमीर विद्यार्थी सीखने की अपेक्षा गुरू को ही खरीद लेने की अकड़ मे रहते हैं। कुछ की तो कुवत, वकूफ ही सीमित होता है। वे किसी भी विषय में अधिक गहराई मे नहीं जा पाते। कुछ तो सब ऊपरी मामूली काम चलाऊ ज्ञान हासिल करने के ही इच्छुक होते हैं। इसके विपरीत जो जरूरतमद होते हैं, आर्थिक दृष्टि से दुर्बल वर्ग के होते हैं, उनमें ईमानदारी सगीतविषयक भूख, परिश्रम करने की प्रवृत्ति, लगन अधिक मात्रा में दिखाई देती है। कुछ होशियार छात्र ऐसे भी होते हैं कि जो गुरू क नाम पर अपनी शान दिखाने की प्रवृत्ति रखते हैं। किन्तु एक बात जरूर है कि भले ही विद्यार्थियो की कुव्वत उन्हे देखते ही तुरत आपके ध्यान में न आती हो, किन्तु महीने दो महीनो में वह जरूर मालुम पडती है।

स्वर, लय और ताल को संगीत का प्राणतत्व माना जाता है। संगीत की सभी प्रणालियो ने यह मान्य किया है। फिर भी घराने का उल्लेख होता ही है।

फिर भी प्रत्येक घराना भिन्न है। गुरूजनो के सबल से अलग जाने की, अलग प्रस्तुतीकरण करने की यह प्रवृत्ति क्यो और कैसे ?

संगीत मूलत एक ही है। उसमें मूल गाने वाले पुरूषो की गान प्रेरणाए अलग अलग थी। फलत उनकी गान शैलिया भिन्न हो गई, स्थिरीभूत, हो गइ और काल के प्रवाह में आज वे लुप्त हो रही है। अब एक सक्रमण का काल आ रहा है। देखिये एक ही गुरू के चार शिष्य हो तो उनकी क्षमता के अनुसार वे चार अलग अलग पद्धतियो का गाना गाने लगते हैं। वहा हम कहने लगते हैं कि घराना वगैरह पैदा हुआ है। स्वर, लय और ताल के बारे में बोलना है तो प्रत्येक घराने की आवाज लगाने की पद्धति भिन्न भिन्न होती है लय की ट्रीटमेट अलग अलग होती है, अत वे एक दूसरे से महसूस होने तक अलग प्रतीत होती है। व्यक्तिश· मुझे स्वर के प्रति लगाव है। लय भी मुझे उतनी ही भाती है। किन्तु लय के हिसाब मुझे पस॒५ नही है। लय की अलग अलग प्रकार से जाने की पद्धति मुझे भाती है। किन्तु उसका जुआ, उसके बधन न मैने कभी पैदा किए न मान्य ही किए हैं। मूलत ताल और लय ये दो ही तत्व है। लय ने सभी बातों को एक आकार दिया है।

स्वर को भी लय ने ही आकार दिया है। लय प्रकृति में ही, सभी भूतो मे है। प्रलय तत्व से वह आई है। ये दोनों बाते बहुत निकट की है। जहा लय समाप्त होती है, वहा प्रलय का आरम्भ हो जाता है। प्रलय के समाप्त होते ही पुन लय का आरम्भ हो जाता अै। जीवन शुरू हो जाता ह। दिनरात मनुष्य का शरीर सचलन जीन का ढग इस संक्रमण प्रक्रिया को मैं लय मानता हूँ। वन, टू, थ्री, फोर और उसके अलग अलग परम्युटेशन्स कांबिनेशन्स है। उन्हें मैं लय नहीं मानता उसमें से जो चैतन्य बहता है, उसे मैं लय मानता हूँ, और इसलिए मैंने गाने की ओर

अलग विचार करने की मेरी इस पद्धति से शुरू में मुझे बहुत परेशानी हुई। क्योंकि हमारे जमाने तक गाना सीखने सिखाते की कुछ पद्धतियां रूढ हो गई थी, सांचे तैयार हो गऐ थे। हर एक को उसमें से होकर गुजरना पडता था। जो कुछ गाया जाता है, कि उसके अत स्त्रोत के प्रति ईमानदार रहने की मेरी प्रवृत्ति है। कोई कह रहा है इसलिए मैं सीख रहा हूँ इस दृष्टि से मैंने शिक्षा की आर कभी नहीं देखा। वाह्य परपराओं के साचे और अर्थ की खोज दोनों के कारण मुझे बहुत परेशानी उठानी पडी। अपने साथ ही गुरू के पास कई लोग गाना सीखते हैं, सीखे होते हैं। वे देखते ही हैं कि कुछ अलग ही पद्धति से गा रहा हूँ। अगर गुरू परिपक्व न हो तो गलतफहमी परेशानी शुरू हो जाती है। बडे गुलाम अली खां और अमीर खा ये दो गायक मुझे बेहद पसद थे। मैं उनकी तरह गाया करता था। कहीं भी सीखा हूँ, बंदिश अलग हो तो भी गायकी उनकी शैली की हुआ करती थी। ऐसा होते हुए भी 1960 के आस पास गुरूओं का रोष, उनका सिखाना बद करने तक का प्रसग आदि सब कुछ मुझे भुगतना पडा है।

लय और भाव तत्वो का अपनी पेशकारी मे आप किस प्रकार उपयोग करते हैं?

नवीनता की खोज की मेरी लगन वाह्य कारणो के लिए नहीं अतः प्रेरणा के लिए हुआ करती थी। शब्द का गाने मे बहुत बडा प्रभाव होता है। ऐसा नहीं की शब्द विरहित गाना नहीं गाया जा सकता किन्तु उसका प्रभाव मर्यादित रहेगा। जब आपके हाथ में साहत्य के रचना के शब्द आते हैं तब उन शब्दो को आप अलग अलग रंगछटाएं दे सकते हैं, शब्दो के मर्म को सुलझा सकते हैं शब्द और

सुरो के मेल से कीमिया पैदा कर सकते हैं। अर्थ, भाव और भावना की द्रष्टि से उस शब्द को अनेक पद्धतियो से प्रभावित बनाकर उसे दर्शको तक पहुचाया जा सकता है।

शब्द, भाव अथ भावना और स्वर विलास के साथ ही विविध रसनिष्पत्ति की दृष्टि स आप कैसे प्रयोग करते हैं? क्या आप उदाहरण के जरिये यह समझा सकेंगे।

प्रयत्न करता हूँ। कहकर पडित जी तत्क्षण 'डार डार पात पात तू ही समायो। तेरो ही रग तू ही बतनायो।। यह चीज गाकर प्रत्यक्षिक के जरिए समझा देते हैं। उपयुक्त तत्वों का विचार करके अलग अलग पद्धति से इसे प्रस्तुत किया जाय तो श्रोताओ पर उसका अधिक प्रभाव पडता है। कई बार शब्दो के गुच्छ आप को शब्दा स भी परे ले जाते हैं। शब्दों के तात्कालिक अर्थ भी भुलाने को प्रेरित करते हैं। फिर डार डार प्रकृतिवर्णन के स्तरों को लादकर जीवनदर्शन का अध्यात्म का दर्शन कराना पड़ता है, किसी को ईश्वर का होता। किन्तु हरबार आपकी पेशकारी समझदारी से होनी चाहिए। शब्द आगे बढकर रूक ज्ते हैं और जब स्वर ही आपके मन म आकर ग्रहण करने लगते हैं और फिर शब्दो के अर्थ के परे जाकर गाना जीवनदशी होने लगता है।

पुरानी रचनाओ का विचार किया तो वे प्रकृति के गुरू शिष्य के रिश्ते से सम्बन्धित जीवन मूल्यों एवं राधाकृष्ण की मधुराभक्ती से समन्वित रचनाएं है। प्रियकर प्रेयसी अथवा राधाकृष्ण के प्रेम को अभिव्यक्त करते समय सत कवियों ने जो मधुरा भक्ति का आधार लिया वह बहुत बडा है। उसे शरीर की सतह पर कभी

चिन्ति‍त नहीं किया गया था। गायक जवानी मे कभी कभी इस अर्थ से आकर्षित होते हैं किन्तु जैसे जैसे उनमें परिपक्वता आ जाती है वैसे ही वैसे आप इस वासनिकता से परे मूल तत्व की ओर जाने लगते हैं।

बंदिशें आपके प्रेम और अधिकार का विषय है। बंदिश की रचना और उसका अलग पद्धति से प्रस्तुतीकरण आपकी खासियत है। बंदिश को अधिक आकर्षक एवं प्रभावशाली बनाते समय गायक के किन किन बातों का विचार करना चाहिए।

यह प्रश्न बहुत ही व्यापक है। सार रूप में कहा जाए, तो उच्चारण वाणी और भाषा पर प्रभुत्व चाहे वह हिन्दी हो या हिन्दुस्तानी। उत्तम शब्दोच्चार के बाद की सीढी है अर्थ का ज्ञान शब्द को समझकर, आत्मसात करके उसे पेश करने की प्रामाणिक क्रिया के बाद फिर स्वर और लय का विचार सामने आ जाता और इसके बाद फिर उसे लोगो तक पहुचाना उसमें रग भरना आदि प्रक्रिया मे से होकर प्रत्येक विद्यार्थी को गुजरना पड़ता है और तदनतर उसका स्वतत्र विचार, उसकी शैली, पद्धति का निर्माण होने लगता है। सच्चे अर्थ में 20-25 वर्ष गाने की तैयारी में व्यतीत होते हैं। वैसे वह जीवनभर सीखता ही रहता है। किन्तु तैयारी के ये ही 20-25 वर्ष होते हैं। गाना एक जीवन की बात नहीं है अनेक जन्मों तक वह चालू ही रहता है। जिसे हम 'प्रॅडीजीज' कहते हैं क्या ये यही कहीं इसी प्रक्रिया में आए होगे ऐसा विश्वास होने लगता है। किसी को वह जन्मजात ही मालूम होता है। जो जटिल होता है, वह ऐसे लोगो को सहज ही में ज्ञान होता है। इस प्रकार को जीनियस का अथवा प्रकृतिदत्त ही कहा जा सकता है। लॉजिक की दृष्टि से ऐसे चमत्कार का उत्तर प्राप्त नही होता।

अ.प. बंदिश को केंद्रीयभूत मानकर राग की बढत करते है या कई बार अलग अलग अगो से राग विस्तार करते हैं। इस लचीलापन के कलात्मक कारण कौन से है।

बंदिश को केन्द्रीयभूत मानकर भी मैं उसका विस्तार अलग अलग पद्धति से करता आया हूँ। उसके कारण कलात्मक ही है। हर बार नए प्रयोग करने पर मेरा बल रहता है। वह सफल होता ही हो, सा बात नहीं। कुछ व्यक्ति ऐसेहोते है कि जो यशापयश का हिसाब न करके नवनवोन्मेष की खोज मे लगे रहते हैं। उन्हे आप छोटे कहिये या बड कहिये कुछ भी कहिये ऐस लोगो की कलाक्षेत्र की प्रगति की दृष्टि से जरूरत होती है। श्री गोविंदराव टेबे कहा करते थे कई बार बुरा कठ रखने वालो ने ही गायन को चार कदम आगे बढ़ाया है। इसके विपरीत अच्छा कठ रखन वाले व्यक्ति अपनी आवाज की करामते दिखाने वाले व्यक्ति वही के वहीं स्थिर रह गये। प्रयोग की दृष्टि से अनेक बाते महत्वपूर्ण साबित होती है। कभी आपको एक ऐसी लय प्राप्त हाती है कि जिसका आनद लेते हुए आप राग की प्रस्तुति करते हैं। कभी आवाज की फेंक कुछ अलग ही लगती है, कभी वातावरण अच्छा होता है, कभी श्रोतृवर्ग समझदार होता है। कई बातें कारणीभूत सिद्ध होता है। इच्छित शिखर ज्ञात रहता है, उसकी तरफ पहुचन की पद्धतिया मार्ग भिन्न होते हैं।

आपकी गायकी मे मुखडे का महत्व असाधारण होता है। रसिक श्रोताओ को यह आकर्षित करता है। मुखड़े और उनकी पुनरावृत्ति की उनके क्रम की गानचक्र की कोई निश्चित कल्पना क्या प्रस्तुतीकरण के पूर्व आप के मन मे होती है।

आजकल इन बातों की ओर मेरा ध्यान कुछ कम जाने लगा है। किन्तु पहले मैं हर बार मुखड़े की ओर जान बूझकर अलग अलग मार्गों अलग अलग पद्धतियों

का अवलब करता था। उन्हीं स्वरों को कायम रखते हुए उनकी फेक अलग हुआ करती थी। मुखडे मे से जाते हुए अथवा मुखडे की ओर आते हुए जान बूझकर मैं खिलवाड़ करता था।

इससे गायक रसिक रिश्ते के सबध पर क्या कुछ पूरक प्रभाव पडता है बिल्कुल क्या वह प्रभाव ही आपका लक्ष्य होता है। क्या रसिकों के साथ की अनुबद्धता को आप मानते हैं।

अवश्य मानता है, अन्यथा जगल मे जाकर, गाने की स्वतत्रता तो है ही न। मुखडे की पकड पक्की हो, सर्वसामान्य के लिए भी उसकी चाह हो ऐसा होता जरूर है।

पडित जी श्री वामनराव देशपाण्डेजी नेआपका उल्लेख रोमांटिसिसम के प्रणेता गायक के रूप में किया था। क्या सगीत में रोमांटिसिसम और क्लासिसिसम जैसे भेद विद्यमान हैं। इस प्रवृत्ति मे आपका गाना सही सही किस के अर्न्तगत आता है।

अमुक गाना अभिजात और अमुक रोमांटिसिसम की प्रवृत्ति का है ऐसा हम नहीं कह सकते। वामनराव ने एक विशिष्ट कालखंड के मेरे गायन के बारे में उक्त निवेदन किया था। किन्तु सगीत में रोमांटिसिसम का क्या मतलब है इसका स्पष्टीकरण कहीं भी उन्होंने नहीं किया था। गाने के रसो को मैंने तद्प्रकार से ट्रीट किया है। अब यह मुद्रा अलग है कि गायन में रस ही न हो। तद् तद् साहित्य को तद् तद् काव्य के विशिष्ट रस को मैने प्रस्तुत किया है। 'शुद्ध आकार मे गाना चाहिए। इस मान्यता को ही मैनें अलग अलग ढंग से पेश करके उसे अधिक प्रभावशाली बनाया

तो उसमे बुराइ क्या है। आकार मे गाना ही असली गाना मानना मेरी दृष्टि मे दुराग्राह है। मनुष्य को मूल अवस्था में याने नग्नावस्था में घूमना चाहिए कहने जैसा ही विपरीत है। मनुष्य जिस प्रकार कपडे वगैरह पहनकर अपनी देह को सजाता है, वैसे ही चीज को सजाना चाहिए। किबहूना काल प्रसगानुरूप उस देह को अलग अलग पद्धति से भी सजाया जाता है। अपने यहा हुआ यह कि किसी विशिष्ट गायक के आस पास रहने वाले व्यक्ति उसकी पद्धति और गायकी के विषय में आग्रही बनतें, दुनिया को नजर अंदाज करते हैं। मैंने ऐसे किसी भी भाष्यकार को नहीं अपनाया, अपना वलय निर्माण करने का प्रयत्न नहीं किया बल्कि उनके साथ रूखाई का ही व्यवहार किया। कला के व्यवहार में मुझे ऐसी वाहृय बातो की कभी जरूरत महसूस नहीं हुई, बिलकुल आरंभिक का में भी नहीं। कभी कभी समझतादा श्रोताओं पर विशेषत उनके एकागी सनकी विचारो पर तरस खाने को जी चाहता है है। उनकी प्रवृत्ति बगीचे मे जाकर जो पहला फूल नजर आएगा उसके प्रति दुराभिमान रखकर उसी को दुनियां का अद्वितीय फूल मानने की है। उनकी ऐसी मान्यता अज्ञानमूलक है। आपको कोई एक विशिष्ट गान शैली या गायक पसंद आता तो उसमे कोई गैर बात नहीं है। किन्तु उससे परे किसी बात का अस्तित्व ही नहीं है ऐसी धारणा सगीत की प्रगति के लिये बाधक ही है, फिर वह किसी भी काल की क्यों न हो। कई कलाकार इस वृत्ति के शिकार बन गए हैं। पूर्वाग्रह से दूषित रहकर किसी का गाना सुनना, तुलनात्मक रिवाज का अविचारी पद्धति से इस्तेमाल करना अनुचित ही है।

हर एक गाने का स्वतत्र रूप में खालिस रूप में सामना करना गुणग्राहकता का लक्षण है। प्रत्येक अभिव्यक्ति स्वतत्र हुआ करती है, उसकी परख, उसके परिवेश में की जानी चाहिए। पूर्वाग्रह दोष के सहारे एकाध मत बनाना और उसे प्रस्तुत करना

अनुचित है। विशेषत· भावी पीढ़ी की दृष्टि स यह एकांगी प्रतीत होगा। प्रत्येक गायक की प्रवृत्ति उसका सुख दु.ख, उसकी जीवन दृष्टि गाने के जरिए व्यक्त हुआ करती है। कोंइ उसे साहित्य के, कोंइ चित्र के तो कोंइ गाने के माध्यम से व्यक्त करता है। किन्तु दुर्भाग्य से इस प्रकार का समग्र विचार करते हुए कोई दिखाई नहीं देता वे केवल अपनी राय ही प्रस्तुत करते हुए नजर आते हैं। वामनराव का और मेरा अत्यत निकट ¬ सबध था। उनकी घरानेदार गायकी के बारे म मैने लिखा था, कठोरता के साथ साफ साफ लिखा था।

आपकी राय मे सगीत के घराने, परपराए, आज के बदलते जमाने मे किस स्वरूप मे पवहमान रहेगी। आपके विषय में, जगन्नाथबुवा पुरोहित, अजमतखा साहब आदि के सस्कारो की तरह भावी पीढ़ी पर आपके गायन सस्कार का विचार सामने आता है।

परपराए टिक गई है, प्रवहमान रह गंइ है अपनी अन्त·शक्ति के बलपर बिलकुल तानसेन से लेकर विचार किया जाए तो भी परपरा के प्रचलन में सामाजिक परिस्थिति बदलने पर भी कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ। वाहय परिवर्तन अवश्य हुए किन्तु अत स्त्रोत कायम है। आगे चलकर भी वह अगर टिका रहेगा तो इस शक्ति के बल पर ही। पुराने बड़े गायको के शक्ति स्थानो का विचार करते हुए एक बात स्पष्टत. प्रचीत होगी कि उन्होंने अपने समय के नए साहित्य, नई चित्रकला, नए विचारो को आत्मसात किया और अपने गायन के माध्यम से उसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे अभिव्यक्त किया। बंदिश कोंइ बडा काव्य नही होता। वह बडा काव्य होगा तो गाने की ओर से ध्यान विचलित होता जो यहा अपेक्षित भी नही होता। साधन में फसे रहने की अपेक्षा नहीं होती, क्योंकि यहा साध्य अलग होता है। इसके आगे

सा या जो आकार लगाना होता है वह वैसा तो आब्स्टक्ट ही होता है। इसके आग कहा जायगे। फलत उसमे अधिक से अधिक वाहय बदल हो सकते हैं, काव्य बदल सकता है। वह आज के जमाने का हो सकता है। आज के जमाने की गति को ध्यान रखकर ताल की गति में परिवतन हो सकते हैं। उनके पल्युटेशन्स काबिनेशन्स बदल सकते हैं। इसकी अपेक्षा आगे चलकर बहुत अधिक होगा ऐसा तो सभव नही दिखाई देता। पाश्चात्य अभिजात सगीत का विचार किया जाए तो उसमें बाझ से लेकर सातत्य के साथ परिवर्तन होते गए, इलेक्ट्रानिक इन्स्ट्रूमेटस बदल गए, टोन बदल गया। बिलकुल फिलान्थ्रोफिक आर्केस्ट्रा का उदाहरण लिया जाता तो भी मूल पैटर्न मे बदला हुआ नहीं दिखाई देता।

भारतीय अभिजात सगीत के बारे में भी वही बात है। उसकी बुनियाद मूल गाभा ही उतना सशक्त है कि उसमें कई वषो में कोई खास परिवतन नही हुआ, होगा भी नहीं। सम्भवत प्रस्तुतीकरण में बदल होगा। पीछे बैठकर सगत करने वालो को पूरक स्वर के बदले दूसरा स्वर दिया जा सकेगा। सिपथेटिक स्वर लगाने वो को स्वर गाना सभव होगा। इन सभावनाओं के बावजूद मुझे ये वाहय घटक प्रतीत होते हैं। मुझे नही लगता कि वे और अधिक बदल सकेंगे। अगर कोई जीनियस आ जाए तो कहा नही जा सकता। किन्तु वैसे भारतीय सगीत को बदलने की जरूरत भी नहीं है। समग्र गाना एक प्रयोग ही होता है। जो बार बार वही वही करते रहते हैं वे खत्म हो जाते हैं।

तो फिर इस द्रृष्टि से भारतीय और पाश्चात्य सगीत मे मूलभूत फर्क कौन सा है। भारतीय सगीत में मेलोडी को तो पाश्चात्य सगीत में हार्मनी को आज अतिसाधारण महत्व है। क्या इसका जनजीवन से, जीवन के व्यवहार से कुछ सबन्ध जोड़ा का सकता है।

हमारे संगीत मे एक स्वर और ताल का महत्व है, तो पाश्चात्य संगीत मे मे समूह का। हमने सूर को पर्याप्त मात्रा मे बढ़ाया, ताल भी बढाया, किन्तु समूह का मेल का विचार करने की कोई खास जरूरत भारतीय सगीत को सभवता प्रतीत न हुइ हो। हार्मनी हमारी राग प्रकृति के विरूद्ध है। हार्मनी में अनेकविध सुरो का जो मल किया जाता है वह हमारे कानो को खटकता है। वैसे पॉप और जाझ सगीत का विचार किया जाए तो हमारे रागसगीत के इन्प्रोव्हायझेशन के तत्व का ही उन्होंने इस्तेमाल किया दिखाई देता है। जिस प्रवृत्ति की देख भाल हमारे संगीत ने बरसो से की उसका विचार वे आज करते हुए उस्फूर्त रूप में खुलता, चितेरा जाता है। वैसे देखा जाए तो बाझ तक पाश्चात्य सगीत भी मेलोडी प्रधान था। उसके उपरात नेपोलियन ..न्झार्द ने हार्मनी का प्रयोक किया और सामूहिक प्रचलन का आरम्भ हुआ।

XXX

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

१ शास्त्रीय संगीत के प्रसिद्ध वाग्गेयकार एवं उनकी जीवनी .-

वाग्गेयकार एक परिचय -

सगीत के प्राचीन इतिहास की ओर दृष्टिगत करने से यह ज्ञात होता है कि पूर्वकाल मे यज्ञ यागादिक कार्यो के सम्पादन मे गीत एव वाद्ययत्रो का योग महत्वपूर्ण रहा है। षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम एव पचम का दर्शन क्रमश अग्नि, बह्मा, चद्रमा, विष्णु एव नारद का तथा धैवत व निषाद का दर्शन तुबुरु को हो चुका था। भगवान ब्रहमा ने इन्दादि देवताओ की प्रार्थना से द्रवीभूत होकर ऋग्वद स पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद स अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य वेद की सर्जना की ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। फिर महामुनि को ब्रहमाजी ने नाट्यवेद की शिक्षा प्रदान की।[1] उन्होंने स्वाति एव उनके शिष्यो को वाद्य तथा नारद और गधर्वों को गानयोग मे नियोजित किया। इस दृष्टि से इन आरम्भिक सगीतविदो को सगीतशास्त्र का आविष्कर्ता कहा जा सकता है। प्रजापिता ब्रह्मा नाट्यवेद के आविष्कर्ता महामुनि भरत के शिक्षक माने गये। अनेक ग्रन्थो के अनुसार भगवान शंकर के माहेश्वर सूत्र समस्त वागमय तथा इनमे प्रदर्शित स्वरवर्ण सागीतिक स्वरो के आधार है। इसी प्रकार पार्वती, नंदिकेश्वर, नारद, स्वाति, तुबुरू, भरत, कोहल, दतिल, स्कद, शुक्र, विश्वावसु अण्डन इत्यादि तत्युगीन महान शास्त्रकार एव वाग्गेयकार माने जा सकते हैं। आचार्य मतग, शारगदेव, कीर्तिधर, लोल्लत, रूद्रत सागरनदी तथा अभिनव गुप्त प्रभृति अनेकानेक सगीत विदो के सन्दर्भ में कतिपय जानकारी न्यूनाधिक रूपेण मिलती है

---

१ नाट्यशास्त्र - प्रथम अध्याय।

संगीत जगत का यह दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि पुराने वाग्ययकारो की जीवनी और कृतित्व की सुस्पष्ट जानकारी नहीं मिल पाती। सौभाग्यवश कतिपय महत्वपूर्ण रचनाए मिलती भी है तो उनमें आत्मपरिचय दिया ही नहीं है।

भरत :-

सगीत के इतिहास मे यद्यपि **भरत** नामके कई विद्वान हुए हैं किन्तु नाट्य शास्त्र के अमरप्रणेता महर्षि भरत का नाम स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगा।

इस महाविभूति की व्यक्तित्व सम्बन्धी जानकारी का परिचय उनके प्रणीत ग्रन्थ से ही कुछ हो पाता है। ' नाट्यशास्त्र' की रचना तिथि के सन्दर्भ मे भी एकमतता का अभाव है। किन्तु सामान्यत अधिकाश की धारणा है कि इनका रचनाकाल चौथी शताब्दी से छठी शताब्दी के मध्य रहा होगा।

भरताचार्य के जन्म संवत् माता-पिता के सम्बन्ध मे कोई परिचय नहीं प्राप्य है, तथापि उनके पुत्र 'कोहल' का नाम अवश्व मिलता है। वस्तुत भरत का नाट्यशास्त्र संगीत की दृष्टि से प्रथम ग्रथ है जिनमें संगीत शास्त्र का वैज्ञानिक एव सार्वभौमिक विवेचन मिलता है। परवर्ती सभी विद्वानों ने उनका ही अनुकरण किया है। उनके द्वारा पतिादित सगीतशास्त्र की उनके बाते आज भी मान्य है। वस्तुत आपका नाट्यशास्त्र एक ऐसा ग्रथ है जिसे उत्तरी एवं दक्षिणी दोनो ही सगीत पद्धतियो का आदर्श माना जाता है।

मतंग :-

'बृहद्देशी' ग्रन्थ के रचयिता आचार्य मतग के विषय मे स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता जबकि इनके ग्रंथ का रचनाकाल चौथी और सातवी शताब्दी के मध्य का माना जाता है। आपके इस महत्वपूर्ण ग्रथ मे देशी राग, श्रुतियो, जाति, से ग्राम रागो की उत्पत्ति का विवेचन किया गया है।

अभिनव गुप्त :-

आचार्य अभिनवगुप्त का रचना काल दशम शती ई0 का उत्तरार्द्ध माना जाता है। ये प्रत्यभिज्ञादर्शन, नाट्य सगीत तथा अलकार शास्त्र के प्रमाणिक आचार्य है। इनके द्वारा वितस्ता नदी के किनारे पर स्थित प्रवरपुर के एक मठ में 'भरतनाट्य शास्त्र' की अमर टीका अभिनव भारती की रचना की गयी आचाय अभिनव गुप्त न मतग के द्वादश स्वर मूर्च्छनावाद का युक्तियक्त खडन किया है। इन्होने उद्भव, लोल्लक, शकुक भट्टनायक इत्यादि के मतों का निराकरण भी किया है और रसात्मक अभिव्यजनावाद का सिद्धात प्रस्तुत किया।

काश्मीर में जन्मे अभिनव गुप्त के पूर्वज काश्मीर नरेश महाराज ललितादित्य के निमत्रण पर कन्नौज से काश्मीर आये और वहीं बस गये। इनके पिता नरसिह गुप्त और पितामह वराहगुप्त अपनी विद्वता के लिये प्रसिद्ध थे।

आचाय अभिनव गुप्त ने अध्यात्मशास्त्र, साहत्यशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र, सगीत शास्त्र एवं अनेक दर्शनो का अध्ययन किया आचार्य अभिनव गुप्त ने सगीत विषयक अध्यायो की व्याख्या में अपने महान गुरू उत्पल देव के मत का उल्लेख अनेक स्थलो मे किया है।[1]

संगीतज्ञ जयदेव -

सुप्रसिद्ध कवि एव संगीतज्ञ जयदेव का जन्म बारहवीं शताब्दी मे बगाल के केन्दुला ग्राम मे हुआ था। उनके पिता का नाम मजायदेव था बाल्यावस्था से ही उनके ऊपर से माँ -बाप का साया उठ गया था, निराश जयदेव जगन्नाथपुरी जा पहुचे और वहां पुरूषोत्तम धाम मे रहने लगे।

---

1. सगीतचित्रमणि - आचार्य बृहस्पति पृ0 - 44

कुछ दिनो बाद उनका विवाह हो गया और पत्नी के साथ तीर्थ स्थलो का भ्रमण किया। इसी दौरान आपने 'गीत गोविन्दम्' की रचना की। किन्तु जब उनकी पत्नी भी स्वर्गवामिनी हो गयी तो उन्होने पूर्ण रूपेण वैराग्य धारण कर लिया और वैष्णव सप्रदाय के महात्मा यशोदानन्दन के शिष्य हो गये। कालान्तर मे अपने गाव जाकर वही पचतत्व को प्राप्त हो गये। आज भी वहा प्रतिवर्ष सक्रान्ति का मेला उनकी समाधि के समीप लगता है।

शारंगदेव :-

जयदेव ने कतिपय ध्रुवपदो की रचना भी की थी। 'संगीतरत्नाकर' प्रणेता प0 शारगदव के जन्मकाल के विषय मे मत विभन्नता है। अधिकाश विद्वानो ने इनका जन्म तेरहवीं शताब्दी का पूर्वाद्ध माना है। इनके पूर्वज काश्मीर के निवासी थे जो कुछ कारणवश दक्षिण भारत मे जाकर बस गये थे। शारगदेव के पिता प0 शोडल जी दौलताबाद के तत्कालीन राजा के यहा कार्यरत थे। बाद मे प्रतिभा के धनी शारगदेव को भी राजाश्रय मिल गया। उनकी मृत्यु तेरहवी शताब्दी के आस पास हुई मानी जाती है। वस्तुत आपकी 'सगीतरत्नाकर' एक अमर कृति है।

अहोबल :-

पं0 अहाबल का नाम सागीतिक इतिहास सर्वदा अविस्मरणीय रहेगा। आपका जन्म सत्रहवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में दक्षिण भारत मे हुआ था। पिता प0 कृष्ण पडित सस्कृत भाषा के अधिकारी विद्वान थे। उन्होंने बालक अहोबल को सस्कृत की शिक्षा प्रदान की तत्पश्चात् उन्होंने सगीत शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की। दक्षिणी सगीत में प्रवीणता प्राप्ति के पश्चात् आपने उत्तर भारत की ओर प्रस्थान किया और धनगढ

को अपना पटाक्ष बनाया। जहा आपने उत्तरी सगीत का पर्याप्त अध्ययन किया और 1650 ई0 मे 'सगीत - पारिजात' नामक सगीत ग्रथ की रचना की। वस्तुत प0 अहाबल जी ने उस तथ्य की खाज की जो पाश्चात्य वैज्ञानिका द्वारा उन्नीसवी सदी मे जाकर की गयी। इससे पहले स्वरो की दूरी श्रुति द्वारा आकी जाती थी किन्तु अहाबल ने तार की लम्बाई का विधान करके सगीत को अधिक वैज्ञानिक बना दिया। स्वरो की संख्या बारह ही निर्धारित करना और प्रत्येक स्वर के तार की लम्बाई निश्चित करना निसंदेह उनकी बुद्धिमत्ता का परिचायक है। सगीतज्ञ एव वाग्गेयकार इस महापुरूष की मृत्यु सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हो गयी। वीणा के तार पर सर्वप्रथम स्वरो को स्थापित करन वाले ये प्रथम आचार्य थे।

व्यंकटमुखी :-

दक्षिण भारत के सगीतज्ञ[1] प0 व्यकटमुखी का पूरा नाम था प0 व्यकटेश उनके पिता का नाम श्री गोविन्द दीक्षित तथा माता का नाम नागमाबा था। इनके पिता तंजावुर के दीवान पद पर कार्यरत थे। उसी दरबार मे प0 व्यकटेश की नियुक्ति भी एक गायक के रूप मे हुई थी। उनके गुरू थे प0 तानधाचार्य जिनसे उन्होने सगीत ज्ञान ग्रहण किया था। प0 व्यकटेश सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में पचतत्व को प्राप्त हुए।

स्वामी हरिदास :-

सगीत के क्षेत्र मे स्वामी हरिदास का नाम सदैव प्रात स्मरणीय है। इनका जन्म सवत् 1537 के भाद्रपद महीने मे (सन् 1480) जन्माष्टमी के दिन हुआ।[2]

---

1. चतुर्दडिप्रकारिका - व्यकमुखी
2. भक्तचरितामृत

कतिपय विद्वानो इनका जन्म काल स0 1577 माना है। 'राजपुर' इनकी जन्मस्थली थी जो मथुरा जिले में थी। वे एक सारस्वत ब्राहम्ण थे। उनके पिता का नाम था आशुवीर और माता का गगा देवी। बाल्यावस्था से वे प्रखर प्रतिभावान थे। आपका विवाह अल्पायु मे ही हुआ किन्तु ग्रहस्थ जीवन रास नहीं आया और परमेश्वर भजन मे लीन रहे। पच्चीस वर्ष की अवस्था मे उन्होने सयास ग्रह कर लिया और वृंदावन पधारे जहा 'निधिवन निकुज' में एक कुटिया बनाकर निवास करने लगे। वे सदैव ईश्वराधना एव सगीत साधना मे ही सलग्न रहे।

कुछ सगीत के ग्रंथो मे हरिदास जी को 'नादब्रहमयोगी' से अभिहित किया गया है। कुछ लोगों का विचार है कि स्वामी जी ने नाद के माध्यम से ब्रहम का साक्षात्कार किया था। स्वामी जी सदैव अपने आश्रम ही रहा करते थे। तानसेन के माध्यम से सम्राट अकबर ने उनका साक्षात्कार किया था और उनके सुमधुर, चित्ताकर्षक गायन को सुनकर भाव विभोर हो गया था। स्वामी हरिदास जी गायन कला के साथ ही वादन में भी दक्ष थे। उत्तरभारतीय संगीत मे वे आज भी किसी न किसी रूप में उल्लेखनीय है। स्वामी हरिदास जी के आठ शिष्य थे - वैजू, गोपाल लाल, मदनराय, रामदास, सोमनाथ, दिवाकर, पंडित, राजा सौरसेन, तथा तानसेन। स्वामी ध्रुपद धमार गायन मे परम प्रवीण थे। उन्होने वीणा के पदों में वृद्धि भी की थी, कुछेक विद्वान उन्हें नृत्याचार्य भी मानते हैं। वे स्वामी हरिदास जी के वशज भी माने जाते हैं।

स्वामी जी एक अप्रतिम कवि भी थे जिन्होने रागानुसार अनेक गेयपदो का सर्जना की। इस महामानव का महाप्रयाण स0 1664 में हुआ।

विष्णुनारायण भातखंडे :-

म0 विष्णुनारायण भातखंडे जी का जन्म 10 अगस्त 1860 को बम्बई प्रान्त के बालकेश्वर नाम स्थान मे कृष्ण जन्माष्टमी तिथि को हुआ था। सगीत सीखने की प्रेरणा उन्हे अपने पिता से प्राप्त हुई। उन्होने पढ़ने के साथ ही सितार, गायन और बासुरी की भी शिक्षा प्राप्त की। सितार वादन की शिक्षा इन्होंने सेठ बल्लभ दास जी से ली। गायन मे दक्ष कराने वाले गुरूजन हैं - जयपुर के मुहम्मद अली खाँ ग्वालियर के पडित एकनाथ, रामपुर के कल्बअली खाँ। विष्णु नारायण ने बी0ए0 1883 ई0 तथा एल0एल0बी0 1890 ई0 मे उत्तीर्ण किया। कुछ समय वकालत का कार्य भी अपनाया किन्तु सतुष्टि न हुई और अतत सगीत की दुनिया मे रम गये।

म0 विष्णुनारायण जी ने देश के अनेक भागो का भ्रमण किया और प्राचीन सागीतिक ग्रथो की खोज भी की। देश के विभिन्न भागो के भ्रमण के दौरान उन्होने अनेक सगीतज्ञो एव विद्वानो से सम्पर्क कायम रखा। उन्होने विभिन्न रागो के अनेक गीत सग्रहीत किये। उनकी 'भातखंडे' नामक पुस्तक 6 क्रमिक भागो में प्रकाशित हुई। वास्तव मे सगीत के क्षेत्र मे उनका यह महान योगदान कहा जा सकता है।

भातखंडे जी द्वारा क्रियात्मक संगीत को लिपिबद्ध करने के लिये एक नवीन स्वरलिपि पद्धति की रचना की गयी। जो उत्तरी भारत मे पर्याप्त प्रचार-प्रसार मे रही। इस पद्धति को ही भातखंडे स्वरलिपि पद्धति कहा जाता है।

भातखंडे जी ने 1916 मे बडौदा नरेश की मदद स प्रथम सगीत सम्मेलन का सफलता पूर्वक आयोजन किया जिसमे 'अखिल भारतीय सगीत अकादमी' स्थापित करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। सन् 1925 तक उनके द्वारा पांच संगीत सम्मेलन आयोजित किये गये। भातखंडे जी से पूर्व राग रागिनी पद्धति प्रचार में थी।

उन्होने उसकी कमियो का अनुभव किया और उसके स्थान पर थाट-राग पद्धति को स्थापित किया जिसका प्रचार-प्रसार कालातर म सर्वत्र होता गया है।

आधुनिक युग में सगीत के शास्त्रीय पक्ष के ओर जन-ध्यान आकर्षित करने का प्राथमिक श्रेय स्व-भातखडे जी को ही दिया जाता है। इस प्रकार आपने आजीवन सगीत की अथक सेवा की और 11 सितम्बर, 1936 ई0 का स्वर्ग सिधार गये। उनके प्रमुख शिष्यो मे भातखंडे संगीत विद्यापीठ, लखनउ के पूर्व प्राचार्य स्व0 कृष्ण नारायण रतन जनकर का नाम उल्लेखनीय है।

पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर :-

पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर एक महान वांग्गेयकार के रूप म आधुनिक युगीन सागीतिक इतिहास मे स्मरणीय हैं। इनका जन्म श्रावण पूर्णिमा सन् 1872 ई0 मे कुरूदवाड रियासत के बेलगाव नामक ग्राम मे हुआ था। पिता श्री दिगम्बर गोपाल एक अच्छे कीर्तनकार थे और उनकी माता का नाम गगा देवी था। पडित जी ने उन्हे अग्रेजी शिक्षा दिलानी शुरू की। बचपन में ही दीवाली के अवसर पर आतिशबाजी के दौरान उनकी नेत्रज्योति क्षीण हो गयी। फलत नियमित अध्ययन बाधित हो गया यही कारण उनके सगीत शिक्षा के प्रति लगाव का बना। उन्हें मिरज के प0 बालकृष्ण बुआइयलंकर जोकर के पास सगीत शिक्षा हेतु भेजा गया। मिरज रियासत के तत्कालीन राजा का उन्हे राज्याश्रय मिल गया और प्रत्येक व्यवस्था सुलभ हो गयी।

उस समय संगीतज्ञो की स्थिति शोचनीय थी, वे एक गवैये मात्र ही समझे जाते थे, अत इस क्षेत्र मे उन्होने सगीतज्ञो की स्थिति सुधारने, समाज मे संगीत को उच्चस्थान दिलाने तथा प्रचार प्रसारार्थ महत्वपूर्ण व्रत लिया। 1896 मे उन्होने राज्याश्रय का

त्याग कर दिया। सतारा मे उनका गायन, कार्यक्रम काफी सफल रहा। तत्पश्चात उन्होने उत्तर प्रदेश, बगाल, बिहार, उडीसा, महाराष्ट्र तथा बम्बई इत्यादि स्थानो मे सागीतिक आयोजन किये जो काफी सराहनीय रहे। लोगो मे सगीत सीखने की भावना जाग्रत हुई।

विष्णु दिगम्बर जी का महत्वपूर्ण कार्य था श्रृगारिक गीतो के अश्लीलता सूचक शब्दो का निष्कासन और उसके स्थान पर भक्तिरस पूर्ण पदों, शब्दा का सयोजन आपने 3 मई 1901 ई0 मे लाहौर मै एक सगीत सस्था 'गाधव महाविद्यालय' की स्थापना की जिसमें कुछ दिनो बाद विद्यार्थी आने लगे और सख्या वृद्धि होती गयी। पडित जी ने सन 1908 मे गान्धर्व महाविद्यालय की एक शाखा खोली जहा पर उन्हे लाहौर की अपेक्षा अधिक कामयाबी हासिल हुई, किन्तु 15 वर्ष तक अनवरत चलते रहने के बाद घोर आर्थिक सकट के कारण विद्यालय बद हो गया। निराश पडित जी मे वैराग्य जाग्रत हो गया और वे गेरूआ वस्त्र धारण कर 'रघुपति' राघवराजाराम' ही जपने लगे और नासिक मे उन्होने 'रामनाम आश्रम' स्थापित किया।

उन्होने वैदिक पद्धति के अनुसार शिष्य मंडली का गठन किया और उनके लिए आवासीय सुविधा नि शुल्क करायी। उनके प्रमुख शिष्य है- बी0ए0 कशालकर, ओंकार नाथ ठाकुर, बी0आर0 देवधर, बी0 एन0 ठकार, पी0एन0 पटवर्धन तथा नारायण राव व्यास इत्यादि। उन्होने पचास के लगभग पुस्तकें लिखी जिनमे सगीत बालप्रकाश, बालबोध, राग प्रवेश (बीस भागों में) संगीत शिक्षक, राष्ट्रीय सगीत, महिला सगीत इत्यादि उल्लेखनीय है। सगीतामृत प्रवाह' नामक पत्रिका भी निकाली। 21 अगस्त 1931 का पलुस्कर जी का स्वर्गवास हो गया। उनके पुत्र दत्तात्रेय विष्णुपलुस्कर ने भी

सगीत के क्षेत्र मे प्रभूत योग दिया किन्तु वे भी कालकवलित हो गये। (1955 मे)

आज भी पडित जी के अनेकानेक शिष्यगण समूचे उत्तर भारत मे सगीत के प्रचार प्रसार मे सलग्न है उनके द्वारा सस्थापित 'गधर्व महाविद्यालय' सगीत सेवा मे सलग्न है।

तानसेन :-

सगीतकार तानसेन के सम्वन्ध मे अबुलफजल[1] का मत है कि "ऐसा महान गायक पिछले एक हजार वर्षों मे नही हुआ।

तानसेन का वास्तविक नाम था तन्ना मित्र और पिता का नाम मकरद पाण्डे। कुछ लोग पांडे जी को मिश्र से भी पुकारते थे। अनेक विद्वानो की मान्यता है कि उनका जन्म 1552 ई0 मे ग्वालियर से सात मील दूरी पर स्थित बेहट ग्राम मे हुआ था। कुछेक विद्वानो की दृष्टि मे उनका जन्मकाल 1506 तथा 1520 ठहरता है। अस्तु जनश्रुति है कि तानसेन का जन्म किसी गौस फकीर के आर्शीवाद से हुआ था। इकलौती सतान तन्ना का लालन पालन लाड प्यार से किया गया, बालक तन्ना मे पशु पक्षियो तथा अन्य जानवरों की बोलियो का अनुकरण करने की प्रवृत्ति थी और जटखट स्वभाव के कारण लोग विचित्र बोली से डर भी जाया करते थे।

एक बार की बात है कि स्वामी हरिदास जब अपने शिष्यो सहित जगल से गुजर रहे थे तो नटखट तन्ना ने शेर की दहाड़ की जिससे वे लोग भयभीत हो गये। कुछ देर के बाद स्वामी जी के दो - तीन शिष्य उसे पकड लाये। स्वामी जी उसकी प्राकृतिक प्रतिभा से काफी प्रभावित हुए और उन्हे उस बालक मे एक महान सगीतज्ञ की छवि दृष्टिगत हुई। फलत: उन्होने उसे अपने साथ ले लिया। तानसेन ने सलग्नता पूर्वक स्वामी हरिदास जी से दस वर्षों तक सगीत शिक्षा ग्रहण की। बाद

मे पिता के पास जा पहुचे, मरने से पहले पिता ने तानसेन को मुहम्मद गौस की कृपा के विषय मे बता दिया था, फलत वे स्वामी जी की आज्ञा लेकर गौस फकीर के पास रहने लगे ग्वालियर की सुदरता और उसके सगीत प्रेम से प्रभावित होकर तानसेन ने मृगनयनी की सहमति से विवाह कर लिया। हुसैनी एक सारस्वत ब्राह्मण जी जिसका वास्तविक नाम प्रेम कुमारी था। बाद मे तानसेन के चार पुत्र सुरतसेन, शरतसेन, तरग सेन और विलास सेन, हुऐ तथा एक पुत्री जिसका नाम था - सरस्वती।

एक श्रेष्ठ गायक के रूप मे तानसेन को रीवा नरेश रामचन्द्र का राज्याश्रय प्राप्त हुआ राजा रामचन्द्र ने अकबर की खिदमत मे गायक तानसेन को उपहास्वरूप भेट कर दिया। अकबर महान सगीत प्रेमी था जिसने अपने नवरत्नो मे तानसेन को सम्मिलित कर लिया। दरबार के अन्य गायक तानसेन की सगीत निपुणता से ईर्ष्या करने लगे और उन्होंने सम्राट अकबर से तानसेन को दीपक गाने के लिये बाध्य कर दिया, जिसके गाने ही चारो ओर अग्नि की ज्वालाये फैलने लगी और तानसेन का शरीर प्रचड गर्मी से जलने लगा तभी उसकी सुपुत्री सरस्वती ने 'मेघ' राग गाकर अपने पिता के प्राण बचाये। इसी प्रकार तानसेन एव उसके समकालीन बैजूबावरा के मध्य प्रतियोगिता का उल्लेख मिलता है जिसमे तानसेन परास्त हो गये किन्तु क्षमादान दे दिया गया।

तानसेन द्वारा अनेक रोगो का आविष्कार किया। सन् 1585 ई0 मे दिल्ली मे तानसेन की मृत्यु हो गयी और ग्वालियर मे गुलाम गौस की कब्र के नजदीक उनकी समाधि बनायी गयी। ग्वालियर मे आज भी प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति मे 'तानसेन समारोह' का आयोजन होता है।

बैजूबावरा :-

स्वामी हरिदास के शिष्यो मे बैजूबावरा का नाम भी लिया जाता है, बैजूबावरा का जन्म गुजरात प्रदेश के चापानेर ग्राम मे हुआ था। वास्तविक नाम बैजनाथ मिश्र था। बाल्याकाल में ही उनके पिता का देहान्त हो गया था। धार्मिक प्रवृत्ति वाली माँ बैजू के साथ वृदावन चली गयी जहा स्वामी हरिदास के दर्शन हुए। स्वामी जी ने बैजू की विलक्षण प्रतिभा को परख लिया और उन्हे सगीत का ज्ञान प्रदान किया। एक अच्छे गायक के रूप में प्रतिष्ठित होकर बैजू वृदावन से ग्वालियर जा पहुचे। बैजू ने अनेक नवीन रागो की रचना की जिनमे उल्लेखनीय है - मगल, गूजरी, तोड़ी, मृगरजनी आदि होरी गायन शैली और धमार ताल की रचना का श्रेय बैजू को ही प्राप्त है. होरी गायन मे वे बड़े ही पारगत थे। किवदन्ती है कि बैजूबावरा बाद मे विक्षिप्तावस्था को प्राप्त हो गये और काश्मीर के जगल मे अन्तर्धान हो गये। राम 'कल्पद्रुम' मे उनके अनेक ध्रुवपद मिलते हैं। हरिदास के शिष्यो मे बैजूबावरा, गोवाल और तानसेन उल्लेखनीय माने जाते हैं। एक जनश्रुति के अनुसार तानसेन और बैजूबावरा मे सगीत प्रतियोगिता हुई थी जिसमे वे विजयी रहे। रागकल्पद्रुम में सकलित ध्रुपदों मे बैजू का भी उल्लेख मिलता है।

ओंकार नाथ ठाकुर .-

सगीत कला एव शास्त्र के समन्वयक प० विष्णु पलुस्कर के सुयोग्य शिष्य प० ओकारनाथ ठाकुर एक उच्च कोटि के वाग्गेयकार थे। उनका जन्म 24 जून 1897 को बडौदा रियासत के जहाज ग्राम मे हुआ था। उनके पिता का नाम प०

---

1 धारू ध्रुरपद प्रबन्ध छन्द गीत गुली मात्रा चतुरंग।
कहे बैजू बावरे, सुन हो गोवाल नायक।
हिरन बोवावे वाहन पिघलावे तेरी लाख मेरी एक।।

गौरीशकर ठाकुर और माता का नाम झबेरवा था। इनकी धार्मिक स्थिति दयनीय थी, फलत इन्हें मिल या रामलीला मे काम करना पडा था। ओंकार नाथ जी का सगीत के प्रति अनुराग बाल्यावस्था से ही था। तेरह वर्ष की अवस्था म ओकार जी पडित विष्णु दिगम्बर जी के पास सगीत शिक्षा हेतु गये। कुछ समय पश्चात् काठियवाड की एक नाट्यमडली बम्बई, आयी, जो पडित जी के गायन से प्रभावित हो उसमे सम्मिलित होने की इच्छा व्यक्त की। बडे भाई की इच्छा होते हुए गुरु के आदेशानुसार वे नहीं शामिल हुए और पुन सगीत साधना म रत हो गये। सन 1916 ई0 मे इन्हे गाधर्व महाविद्यालय लाहौर का प्रिंसिपल पद प्राप्त हुआ। असहयोग आदोलन मे आपकी सक्रिय भागीदारी रही। जून 1922 ई0 मे सूरत मे इंदिरा देवी से आपका विवाह सम्पन्न हुआ। कुछ समय बाद वे नेपाल महाराज से सम्मान व धन लाभ की आशा से वहा पहुचे और इन्हे आपनी प्रतिभा से प्रभावित कर लिया फलत उन्हे प्रभूत धनराशि प्राप्त हुई। उन्होने तीन बार नेपाल की यात्रा की और सम्मानित हुए।

इसके साथ ही वे फ्रास, इटली, जर्मनी, बेल्जियम, स्विट्जरलैंड तथा इग्लैंड इत्यादि देशो मे गये और भारतीय सगीत का परचम फहराया। इटली के बैनोटी मुसोलिनी को आपने काफी प्रभावित किया था। पत्नी के निधन के कारण बम्बई वापस आ गये। भारत सरकार ने आपको 1922 ई0 मे अफगानिस्तान भेजा जहां उन्होंने भारतीय सास्कृतिक मडल का नेतृत्व किया। 1953 और 1954 में वे बुडापेस्ट तथा जर्मनी मे हो रहे विश्व शान्ति परिषद मे भारत का प्रतिनिधत्व किया।

1938 मे इनका महत्वपूर्ण ग्रन्थ सगीताजति प्रकाशित हुआ जिसमे सैद्धान्तिक एव प्रखर प्रतिभा के धनी ओकार जी को 1940 मे राजकीय सस्कृत महाविद्यालय

कलकत्ता द्वारा सगीत मार्तण्ड, सन 1953 मे विशुद्ध सस्कृत महाविद्यालय काशी द्वारा 'सगीत सम्राट' का विरुद मिला। यही नही 1955 मे गणतत्र दिवस के अवसर पर भारतीय राष्ट्रपति द्वारा " पद्म श्री " से भी विभूषित हुए। काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के सगीत भारती महाविद्यालय मे अध्यक्ष पद को सुशोभित किया।

पडित जी महान कला प्रेमी थे, उनकी किसी भी तरह की उपेक्षा उन्हे सहृदय न थी। उनके शब्दो मे कला के प्रदर्शन के समय कला और कला का अपमान मैं नही सह सकता। गोंडल के महाराज ने उनके इस वक्तव्य को सुनकर उच्च आसन की तुरत व्यवस्था की। ओकार जी की गायकी ग्वालियर घराने स सम्बद्ध थी। ये ख्याल गायक होते हुये भी ठुमरी का प्रदर्शन सफलता पूर्वक करते थे। उन्होने ठुमरी की शैली पर श्रृगारिकता से हटकर भजन गायन की नीवन शैली अपनायी। 'जोगी मत जा, भैया मोरी मैं न‍ह उनके भजन आज भी श्रवणीय हैं। इसके अतिरिक्त श्लोक व वदेमातरम् का गायन वे बडे ही अनूठे ढग से करते थ। आपकी आवाज अर्थानुकूल रसमयी, सुकोमलता से परिपूर्ण गामीय युक्ता थी। आलापकारी का ढग उन्हे हस्सू-दद्दू खॉ के पुत्र औलया रहमत खॉ से मिला था । इनके आलाप, बहलावा, तान-बोलतान, सरगम आदि मैं पूर्ण समन्वय दृष्टिगत होता था। 28 दिसम्बर 1967 को यह सगीत सम्राट, वाग्गेयकार पचतत्व मे विलीन हो गया किन्तु आज भी अपने कौशल से श्रद्धेय है।

अमीर खुसरो :-

अमीर खुसरो का वर्तमान भारतीय सगीत मे योगदान सराहनीय रहा है। उनका जन्म 1253 मे उ0प्र0 के एटा जिले के पटियाली नामक गाव मे हुआ था। उनके पिता का नाम मोहम्मद सैफुददीन था। अमीर खुसरो को राजा गयासुद्दीन बल्वन

का सरक्षण मिला था बाद मे अलाउददीन खिलजी के दरबार मे राजगायक नियुक्त किया गया। खुसरो को बचपन से ही शेरो शायरी का शौक था। ऐसा कहा जाता है कि देवगिरि के राज्य गायक गोपाल नायक से हुई प्रतियोगिता मे खुसरो ने छल कपट पूर्वक विजय हासिल की थी। किन्तु वह गोपाल नायक से प्रभावित हो उसे दिल्ली ले गया और महत्वपूर्ण कार्य किय। अमीर खुसरो ने जन रुचि को ध्यान मे रखते हुए अनेक नवीन वाद्यो, गीतों, ख्यालो आदि की सर्जना की। कतिपय विद्वानों की मान्यता है कि उन्होने होता ख्याल, कव्वाली, तथा तराना तीनो का आविष्कार किया। खुसरो के द्वारा रचित नये राग व ताल हैं - रागो मे पूरिया, साजगिरी, पूर्वी, जिला, शहाना आदि तालों मे झूमरा, त्रिताल आडा आरताल, पश्ती, सूलफाक आदि वह कई भाषाओ का ज्ञाता था तथा अनेकानेक शेर, व पहेलिया, भी रची, जो आज भी लोकप्रिय हैं। वे उस्ताद निजामुद्दीय औलिया से बहुत ही प्रभावित थे। सन् 1325 मे इस हस्ती का देहात हो गया।

अल्लादिया खाँ :-

अल्लादिया खाँ साहब का जन्म जयपुर रियासत के उनियार नामक स्थान में 1855 में हुआ था। उनके पिता ख्वाजा अहमद भी एक प्रसिद्ध गायक थे। उनके बडे भाई हैदर खाँ भी गायन कला मे निपुड़ थे। अल्लादिया खाँ ने अपने पिता से सगीत की शिक्षा पायी किन्तु हद्दू हस्सू खाँ तथा बडे मुहम्मद खाँ की गायकी से भी वे प्रभावित थे। कोल्हापुर दरबार मे आपको पर्याप्त सम्मान हासिल हुआ। उनका विचार था कि गलत आदमी के हाथ सही विद्या पड जाने से गलत बरती जाती है। अत वे प्रत्येक व्यक्ति को संगीत सिखाना नहीं पसद करते थे। युवावस्था मे आपने अडाना, मालश्री, शुद्ध कल्याण, पूर्वी, माड आदि अनेक रिकार्ड तैयार करवाये। इनमें

किसी भी प्रकार दुर्व्यसन नहीं था। सगीत मे व पुस्तकीय ज्ञान के पक्ष मे नहीं थे। उनके विचार मे सगीत इस प्रकार का होना चाहिए जो सुनने वालो को खुश कर सके। उनका यह कहना था कि गाओ, बजाओ, रिझाओ 16 मार्च 1946 को इनकी मृत्यु हो गयी। इनके योग्य शिष्यो में थे केसरबाई केरकर, मोघू बाई कुर्डीकर, लक्ष्मीबाइ जाधव, पुत्र मजी खॉ भतीजा नत्थन खॉ, तानी बाई घोड़पडे, शकर राव नाइक आदि। सगीतज्ञों के मध्य आपकी पेंचदार गायकी, रागो का अनूठा विस्तार और भावपूर्ण बोल आलाप, और बोलताने घूमती रहती थीं। किराना घराने की गायकी की छाप उसमे दिखती थी। आप एक महान वाग्गेयकार थे।

उस्ताद अमीर खॉ:-

किराना घराने के महत्वपूर्ण उस्ताद अमीर खॉ का जन्म 1912 मे अप्रैल माह मे अकोला मे हुआ था। इनके पिता स्व0 शाहमीर खॉ एक श्रष्ठ सारगी वादक थे। अमीर खॉ ने अपना पहला आकाशवाणी कार्यक्रम कलकत्ता से प्रसारित किया। तबसे आप देश के प्रत्येक आकाशवाणी केन्द्र से अपना कार्यक्रम प्रसारित करते रहे और विभिन्न सम्मेलनो सहभागी रहे। आपकी गायन शैली अत्यत गुरू गभीर थे। उनके आलाप मे स्वरो की वहुत एक विशेष प्रकार की थी। जिसे खडमेरू पद्धति कहा जाता है। इन्हे विलम्बित झूमरा ताल बहुत प्रिय थी। वे सीधा साधा लयदार ठेका ही पसन्द करते थे। विलम्बित ख्याल के वे विशेष प्रेमी थे। आपको सन् 1967 मे सगीत नाटक अकादमी ने पुरस्कृत किया और भारत सरकार ने 1971 मे 'पद्मभूषण' से नवाजा। इस प्रतिभाशील गायक की दुर्घटना मे सन् 1974 मे मृत्यु हो गयी। उनके शिष्य अमरनाथ एक महत्वपूर्ण गायक हैं।

कुमार गन्धर्व :-

संगीताकाश के देदीव्यमान नक्षत्र 'कुमार गन्धर्व' शास्त्रीय एवं लोकगीत दोनो ही क्षेत्र मे गीत, भजन, गजल इत्यादि के भी गायन मे सिद्धहस्त थे। इनका वास्तविक नाम है - ' शिवपुत्र सिद्धरमैया कोमकालि ' इनका जन्म 8 अप्रैल 1924 को बेलगाव जिले मे सुलभावे नामक स्थान पर हुआ है। पिता श्री सिद्धराम स्वामी संगीत के महान प्रेमी एवं मर्मज्ञ थे जो उनके गुरू भी थे।

बाल्यावस्था से ही कुमार गन्धर्व संगीत प्रेमी थे ।। वर्ष की अल्पायु मे सन् 1935 मे सर्वप्रथम कुमार ने इलाहाबाद के संगीत सम्मेलन मे कार्यक्रम प्रस्तुत कर सबको स्तब्ध कर दिया। इसके बाद कलकत्ता संगीत सम्मेलन मे बहुचर्चित हुए। सन 1936 मे डा0 वी0आर0 देवधर से शास्त्रीय संगीत की नियमित शिक्षा प्राप्त की। 1947 मे भानुवती से विवाह हो गया रोगग्रस्त हो जाने पर पत्नी के पूर्ण मनोयोग से सेवा सुश्रुषा किये जाने से स्वस्थ हुए।

किन्तु श्रीमती कुमार काल कवलित हो गयी। कुमार गन्धर्व के विचार से हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का आधार 'लोकगीतो मे दृष्टिगत होता है। उनके शब्दो मे, गायक वही है जिसका गाना सभी श्रोताओ को मुग्ध कर दे, चाहे वह समझदार हो अथवा नही। व्याकरण से संगीत नहीं होता है, संगीत तो वह है जिसमे रंजकता हो। शास्त्रीय संगीत के लिये सुरीलापन और दिमाग दोनो की जरूरत होती है। वस्तुत शास्त्रीय संगीत एक तपस्या है।

जहा एक ओर कुमार जी गम्भीर गायन शैली ख्याल के गायन मे निपुण है वही दूसरी ओर भजन, लोकगीत आदि के गायन मे भी उससे कम नहीं। अप्रचलित व स्वत निर्मित रागो पर वे विशेष ध्यान देते थे।

कुमार गन्धर्व को भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण, पद्मभूषण तथा मध्यप्रदेश द्वारा कालिदास सम्मान से विभूषित किया गया। 12 जनवरी 1992 को ये महान सगीतज्ञ स्वर्गवासी हो गये किन्तु जनमन मे आज भी अमर है।

पं0 कृष्णराव शंकर :-

ग्वालियर घराने के सगीतज्ञ प0 शकर राव के सुपुत्र 1893 में जन्मे प0 कृष्णराव शंकर पडित का नाम भी सगीतकारो मे आदर से लिया जाता है।

प्रारम्भ मे अपने पिता से संगीत शिक्षा लेने के बाद काफी समय तक ग्वालियर घराने के स्व0 निसार हुसैन खॉ से शिक्षा प्राप्त की। सन् 1940 से आपने अनेक आकशवाणी केन्द्रो से कार्यक्रम प्रसारित किया। पाच वर्षों तक ग्वालियर स्टेट मे नियुक्त रहे। एक वर्ष तक महाराज सतारा के सगीत शिक्षक भी रहे किन्तु बाद मे छोड दिया। कृष्णराव जी ने गायन, सितार, तबला, तथा जलतरग पर भी अनेक पुस्तको की रचना की।[1] इन्हे गायक शिरोमणित, मापन-विशारद, सगीत रत्नाकर की उपाधियो से अलकृत किया गया।

1914 ई0 में 'आपने' गाधर्व महाविद्यालय' बाद मे शाकर गाधर्व महाविद्यालय' की स्थापना की । सन् 1964 मे इसकी रजत जयन्ती और पंडित शकराव की भी शताब्दी मानायी गयी जिसमे देश के मुख्य कलाकारो ने शिरकत की। इनकी गायन शैली, सगीत जगत में विशिष्ट थी, इन्हे छोटा ख्याल ज्यादा रूचिकर था। इसके बाद या तो तराना गाते थे अथवा भजन गाते थे। भारत सरकार द्वारा आपको सन् 1986 में 'पदमभूषण' से अलकृत किया गया। इनका स्वर्गवास ~~ अगस्त 1989 को हो गया।

---

1 सगीत सरगमतार, संगीत - प्रवेश, सगीत आलाप सचारी आदि।

फैयाज खाँ :-

उत्तर भारत मे आगरा घराने के सगीतकार फैयाज खाँ साहब निसंदेह महत्वपूर्ण वागगयकार भी थ जिनका जन्म 1886 ई0 में आगरा मे हुआ था।

फैयाज खाँ के पिता सफदर हुसैन की मृत्यु उनके जन्म के प्रारम्भिक दिनो मे ही हो गयी थी। अत नाना गुलाम अब्बास खाँ ने परवरिश कर सगीत शिक्षा की भी व्यवस्था की। आपके प्रभावी गायन से मैसूर नरेश ने प्रभावित हो, उन्हे 1911 मे आफताबे मौसी की उपाधि प्रदान की। बड़ौदा नरेश सयाजीराव ने तो उन्हे राजाश्रय ही प्रदान कर दिया। खाँ साहब की आवाज जवारीदार बुलद थी वे ख्याल ध्रुपद, धमार, ठुमरी, टप्पा, गजल और कव्वाली के गायन मे निपुण थे। वस्तुत फैयाज खाँ गायन शैली मे बड़ा ही आकर्षण था, वे बोल बनाव एव बोल-तान मे बडे ही कुशल कलाकार थे जो आगरा घराने की एक महत्वपूर्ण विशेपता थी।

फैयाज खाँ ने अनेक रचनाओ का सृजन भी किया था। आपने अपना नाम 'प्रेमप्रिया' रखा था। जैजेवन्ती, ललित, दरबारी, सुघराई, तोडी रामकली, पूरिया, पूर्वा, आदि रागे उनकी पसदीदा रागे थी।

फैयाज खाँ साहब की ताने, स्पष्ट, सुन्दर, और तैयार रहती थी। उनका रागो का ज्ञान बहुत ही गहरा था। यहीं कारण है कि वे हरेक राग अलग-अलग ढग से गा लेते थे।

राम दास :

काशी के सगीतज्ञो में महान प0 राम दास जी का जन्म सन् 1876 मे कबीर चोरा नामक मुहल्ला मे हुआ। उनके पिता का नाम था शिवनन्दन तथा माता का नाम भगवन्ती देवी था। जिन्हे श्री भास्करानन्द स्वामी के शुभाशीवाद से रामदास

जैसे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई थी। इनकी सगीत शिक्षा पिता के द्वारा ही आरम्भ की गयी। शिवनदन जी स्वयमेव ध्रुपद धमार के श्रेष्ठ गायक थे। रामदास के श्वसुर जयकरन भी एक अच्छी कोटि के गायक माने जाते थे। उनका भी यथेष्ट निर्देशन व सानिध्य आपको मिलता रहा।

म0 रामदास जी ने दो बार नेपाल की यात्रा की और नेपाल नरेश द्वारा सम्मानित भी किये गये। इसके साथ ही आपने अपनी सुमधुर संगीत कला से रामपुर, उदयपुर, ग्वालियर, दन्दौर, काश्मीर, दरभगा, रियासतो तथा पटना, भागलपुर, कानपुर, इलाहाबाद दिल्ली, लखनऊ, ब ंई जैसे प्रमुख नगरों में श्रोता समाज को आकृष्ट किया।

काशी सनातन विद्यापीठ ने आपको 1926 'सगीतोपाध्याय' से तथा 1927 में 'भारत धर्म' महामण्डल द्वारा 'सगीत भूषण' की उपाधि से सम्मानित हुए। 1935 मे हरिनाम प्रदायिनी द्वारा आपको 'सगीत कलानिधि' सम्मान प्रदान किया गया।

निसदेह म0 रामदास एक श्रेष्ठ वाग्गेयकार भी थे। आपने अनेक बंदिशो के स्वर व शब्दो की रचना की थी। आपकी बहुत सी बंदिशे गायी जाती रही हैं। आपकी आवाज में अत्यन्त लचीलापन व सुरीलापन रहता था। आवश्यकतानुरूप गायन कला को श्रोता समाज के बीच में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने मे आप परम प्रवीण थे। लय ताल के बड़े ही पक्के रामदास जी अप्रचलित राम-तालों का भी प्रयोग सहजता से किया करते थे। यही नहीं आप एक आकर्षक व्यक्तित्व के भी धनी थे। सगीत ससार का यह महान वाग्गेयकार 31 जनवरी 1960 को इस असार ससार को छोड गया। म0 रामदास जी की शिष्यमंडली आज भी अपनी संगीत कला का सर्वत्र सुदर प्रदर्शन कर रही है, जिनमें श्री हरिशकर मिश्र, महादेव मिश्र, हनुमान मिश्र, जालपा प्रसाद, गणश प्रसाद, गिरिजा देवी, सिद्धेश्वरी देवी, तथा नदलाल आदि उल्लेखनीय हैं।

रामामात्य :-

प0 रामामात्य जी एक प्रमुख संगीत शास्त्रकार के रूप मे जाने हैं। इनके द्वारा 1550 ई0 मे एक प्रमुख ग्रथ की रचना की गयी जिसे 'स्वरमेलकलानिधि' के नाम से जाना है।

रमामात्य के पिता प0 तिम्बराज विजयनगर के राजा सदाशिवराय के यहा प्रधानमत्री थे। इनका वास्तविक नाम राम ही था जब राजा ने उन्हे 'अमात्य' पदवी प्रदान की तो इनका नाम 'रामामात्य' हो गया ऐसा कहा जाता है।

हृदयनारायण देव :-

ये मध्य प्रदेश के गढा के शासक थे, बाद मे मंडला को निवास स्थान बना लिया। इनके पिता का नाम प्रेम शाह था सत्रहवीं शताब्दी मे प0 हृदयनारायण देव ने 'हृदयकौतुक' तथा 'हृदय प्रकाश' नामक ग्रन्थो की रचना की जिनकी भाषा सस्कृत है। 'हृदयप्रकाश' में वीणा के तार पर उन्होने अहोवल की ही भाँति समान स्वरो को स्थापित किया है। वस्तुत श्रुतिस्वर की दृष्टि से ये दोनो ग्रन्थ काफी महत्वपूर्ण है।

मानसिंह तोमर :-

राजा मानसिह तोमर ग्वालियर घराने के जन्मदाता माने जाते हैं। इनका शासन काल 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 16वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक माना जाता है। आप एक महान सगीत कला प्रेमी थे तथा अनेक संगीतज्ञो को राज्याश्रय भी दे रखा था। इस वाग्गेयकार के नाम हैं- बख्शू, चरजू, भगवान रामदास आदि। इन विद्वानो न बदलते परिवेश को परखा और तदनुकूल ध्रुपद नामक एक नवीन गायन शैली का आविष्कार भी किया। इस प्रकार शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से इनका योगदान

महान तो है ही, इसके साथ सगीत को जनसामान्य की ओर ले जाने का श्रेय भी इन्हे दिया जाता है। राजामानसिह तोमर ने सगीत शास्त्र पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालने वाले सागीतिक ग्रन्थ 'मानकौतूहल' की रचना की जिसमे कुछ स्वरलिपिया भी अकित की गयी है। इस ग्रन्थ को 1673 में फकीरूल्ला ने फारसी भापा मे अनुदित किया और उसका नाम रखा 'संगीत दर्पण'। निसंदेह ध्रुपद आविष्कर्ता के रूप मे मानसिंह तोमर सदा-सदा के लिये अमर रहेगे।

सुरेन्द्र मोहन ठाकुर :-

सुरेन्द्र मोहन ठाकुर का जन्म कलकत्ता मे 1840 में हुआ था। उनके हरकुमार ठाकुर स्वय सगीतज्ञ थे। कुछ दिनों तक आपने अपने पिता से सगीत की शिक्षा ग्रहण की तत्पश्चात् लक्ष्मी प्रसाद मिश्र और उनके दो भाइयो से। मिश्र बन्धुओ से इन्होने टप्पा और कौव्वाली गाना सीखा सुरेन्द्र मोहन ने सगीत के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थो के सकलित कर विशाल सगीत भण्डार निर्मित किया। पश्चातत्य ग्रन्थो का भी सकलन किया 1875 और 1896 ई० मे इन्हे फिलाडेल्फिया और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय द्वारा डाक्टर आफ म्यूजिक की उपाधि से सम्मानित किया गया। महारानी विक्टोरिया ने राजा बहादुर, आई०आई०ई० और 'नाइट बैचलर आफ द यूनाइटेड किगडम से विभूषित किया।

अपने 'बग सगीत विद्यालय' तथा 'बगाल एकेडेमी आफ म्यूजिक विद्यालयो' के माध्यम से जन सामान्य के लिये सगीत सुलभ कराया 5 जून 1914 को इस सगीत साधक की मृत्यु हो गयी।

रामचतुर मलिक :-

इनका जन्म बिहार के दरभगा के एक सगीत परिवार मे 1915 के लगभग हुआ था। इनके पिता व चाचा भी अपने समय के श्रेष्ठ गायको मे गिने जाते थे। प0 रामचतुर मलिक जी को सगीत की शिक्षा अपने पिता प0 राजित राम, चाचा क्षितिज पाल मलिक तथा रामेश्वर पाठक से मिली। ये ध्रुपद गायन मे निष्णात थे। इसके साथ ही ख्याल, ठुमरी भी गाते थे। विद्यापति के गीतो का गायन भी ये बडी तन्मयता से करते थे। आपके अनेक कार्यक्रम आकाशवाणी (अखिल भारतीय) से प्रसारित किये गये हैं। पडित जी के देहान्त 11 जन0 1990 को हो गया।

ए0 कानन :-

ए0कानन का जन्म मद्रास में सन् 1921 मे एक धार्मिक परिवार मे हुआ था। इनके पिता श्री मेलवार कानन सगीत प्रेमी थे। कर्नाटक सगीत के माहौल मे रहते हुए भी इनकी अभिरूचि उत्तर भारतीय संगीत की ओर ही थी। 16 वर्ष की अवस्था मे कानन निजाम रेलवे मे तारबाबू के पद पर नियुक्त हो गये। इनके प्राथमिक सगीत शिक्षक लानू बाबू राव थे। बाद मे जब वे रेलवे की प्रशिक्षा हेतु कलकत्ता गये तो वहा स्व0 गिरिजाशकर चक्रवर्ती के सानिध्य में सगीत की शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद उन्होने उस्ताद अमीर खॉ को अपना गुरू बनाया। कालान्तर मे नौकरी का त्यागकर व्यापार कम अपनाया और सुबह शाम सगीत का अभ्यास भी करते रहे। 1941 ई0 से कानन जी आकाशवाणी केन्द्र से अपने कार्यक्रम प्रस्तुत करने लगे। सन 1944 मे पहली बार कलकत्ता सगीत सम्मेमलन में इन्होंने अति प्रशसनीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इसी प्रकार अखिल भारतीय आकाशवाणी कार्यक्रम के तहत भी प्रसारण हुआ। इतना ही नही कानन जी ने बगला चलचित्रो मे गाने भी गाये हैं और इस दृष्टि से उनकी लोकप्रियता भी काफी बढी है। कानन जी स्वर के लगाव माधुर्य

उस्ताद बडे गुलाम अली खॉ का जन्म 1901 में लाहौर मे हुआ। इनके पिता उस्ताद काले खॉ एक श्रेष्ठ सगीतज्ञ थे। इन्होने अपने चाचा व पिता से सगीत शिक्षा ली। कुछ दिनो के बाद बम्बई जाकर उस्ताद सिंधी खॉ से गायन सीखने लगे। सगीत सम्मेलनो मे आपका प्रथम कार्यक्रम कलकत्ता से पेश हुआ। 1947 के बटवारे के बाद ये हिन्दुस्तान छोडकर पाकिस्तान के कराची मे रहने लगे किन्तु पुन भारत लौट आये और बम्बई मे रहने लगे। लकवा पीड़ित होने पर महाराष्ट्र सरकार ने उन्हे 1961 मे पाच हजार की सहायता की और उनका स्वास्थ्य ठीक भी हो गया फलत· वे कार्यक्रम देने लगे। अनेक बार आपने अखिल भारतीय कार्यक्रम प्रसारित किया।

खॉ साहब का स्वरों और रागों पर इतना नियत्रण था कि कठिन से कठिन स्वर-समूह बडे ही सरल ढग से देते थे। गले पर भी उनका नियत्रण लाजवाब ही था। चाहे जैसा ६। घुमा लेते थे। पजाब अंग की ठुमरी गाने मे निष्णात थे आप। गुलाम अली खॉ व्यक्तित्व भी विशालकाय व आकर्षक था। दोनो मे ही मधुरता दृष्टिगत होती थी। इनका विचार था कि घरानो से सगीत को काफी क्षति पहुची क्योंकि लोग इनके आश्रय मे मनमानापन बरतने लगे थे। मुख मुद्रा के सन्दर्भ मे आपका यही मत रहा है कि उसे विकृत न करते हुये स्वरो में सजीवता लानी चाहिए। 23 अप्रैल 1968 को गुलाम अली साहब ससार छोड गये।

अब्दुल करीम खॉ :-

ठुमरी गायन को सरस एवं लोकप्रिय बनाने वाले अब्दुल करीम खॉ साहब सहारनपुर जिले के किराना नामक गांव के निवासी थे इनके पिता काले खॉ तथा चाचा अब्दुल्ला खॉ भी एक अच्छे संगीतज्ञ थे। अत सगीत शिक्षा एक तरह से इन्हे विरासत मे ही मिली थी। बड़ौदा रियासत में आपने राजगायक के पद को भी प्रतिष्ठित

किया किन्तु तीन वर्षों के बाद वे बम्बई गये। बम्बई से फिर मिरज को अपना निवास बनाया। 1913 के आस पास आपने पूना मे एक सगीत विद्यालय की स्थापना की जिनका नाम रखा गया - आर्य सगीत विद्यालय। बाद मे बम्बई मे भी इसकी शाखा खोली। मद्रास मे आपका सगीत कार्यक्रम बडा ही सराहनीय व सफल रहा। आखिर मे पाँडिचेरी यात्रा के दौरान बीच मे ही अस्वस्थता वश 27 अक्टूबर 1917 को इनकी मृत्यु हो गयी। शात स्वभाव एव मृदुभाषी खॉ साहब का ठुमरी गायन अतीव आकर्षक है। आपकी गायी हुई ' मत जइयो राधे जमुना के तीर ' तथा ' पिया बिन आवत नही चैन ' ठुमरिया अत्यन्त ही लोकप्रिय रही हैं। आपके ठुमरी के रिकार्ड प्राय आकाशवाणी से प्रसारित होते रहते हैं। इतना ही नहीं उनका ख्याल, ठुमरी, भजन तथा मराठी भाव गीतों पर समान अधिकार था। आपने अनेक वाग्येकारो व संगीतज्ञों को दिशा निर्देशन व प्रोत्साहन भी दिया जिनम हीराबाई बडोदेकर, सरस्वती राणे, रोशनारा बेगम, सुरेश बाबू माने, पडित रामभाऊ कुन्दगोल्कर (सवाई गन्धर्व) बहरे वुआ आदि उल्लेखनीय हैं।

डी0बी0 पलुस्कर .-

18 मई 1921 को कुरन्दवाड मे डी0वी0 पलुस्कर का जन्म हुआ जो स्व0 विष्णु दिगम्बर की ही बारहवीं संतान थी। आपका पूरा नाम म0 दत्तात्रेय विष्णु पलुस्कर था।

सुयोग्य गुरू पिता की छत्र छाया उठ जाने के उपरांत आपने नारायण राव व्यास, पूना मे विनायकराव पटवर्धन तथा म0 मिराशी बुआ से क्रमश सांगीतिक ज्ञान ग्रहण किया। 1935 में जालधर के हरिबल्लभ सगीत मेले में आपके पदार्पण से पजाबी जनता गदगद हो गयी थी। यहीं पर उनका पहला सार्वजनिक कार्यक्रम हुआ था जो

सफल रहा। इसके पश्चात् आकाशवाणी बम्बई पर 1938 मे म0 वी0डी0 पलुस्कर की स्मृति स्वरूप उनका प्रथम आकाशवाणी कार्यक्रम भी हुआ। इस प्रकार धीरे धीरे वे उत्तर एव दक्षिण भारत मे भी लोकप्रिय होते गये। दक्षिणी राग सिहेन्द्र माध्यमा मे उनके द्वारा गायी हुई त्यागराज की कृति 'निदुचरण मुक्के' दक्षिणी जनता को बहुत भायी।

पडित दत्तात्रेय जी ख्याल के अतिरिक्त भजन गायन मे भी परमप्रवीण थे, जैसा कि उनके द्वारा गाये गये विशिष्ट शैली मे भजन - चलो मन गगा चमुना तीर, ठुमक चलत रामचन्द्र, जब जानकि नाथ सहाय करे, तथा रघुपति राघव राजा राम, सगीतज्ञो एव जनसामान्य मे बहुलोप्रिय रहे हैं। उन्हे ,ाय सभी घरानो से लगाव था।

आपको आगरा घराने की बोल-ताने, किराना घराने की बढत और सुरीलापन, तथा अल्लादिया खॉ घराने की वक्र ताने काफी प्रिय थीं। 1954 सास्कृतिक मण्डल के साथ चीन की यात्रा की और भारतीय सगीत को ऊचा उठाया। 'हिज मास्टर्स वायस' मे आपके कई रिकार्ड किये गये हैं। दत्तात्रेय जी को गौड़, सारग, यमन, मालकोश, भूपाली, ∽दार, मालगुजी, मुलतानी इत्यादि राग अत्यन्त प्रिय थे। आपने अपने पिता श्री की लिखी पुस्तकों का सम्पादन भी किया। वे एक श्रेष्ठ रचनाकार भी थे। 26 अक्टूबर 1955 को यह महान गायक ससार सागर से पार हो गये।

निसार हुसैन खॉ -

वर्तमान प्रसिद्ध सगीतज्ञ निसार हुसैन का जन्म 1909 मे बदायूँ मे हुआ था। पाच वर्ष की अवस्था से ही सगीत शिक्षा मिलने लगी थी। प्रारम्भिक शिक्षक इनके बाबा हैदर खॉ थे। बाद में अपने पिता फिदाहुसैन से बडौदा मे संगीत शिक्षा प्राप्त की। इस समय ‾क निसार खॉ साहब अनेक अखिल भारतीय आकाशवाणी कार्यक्रम

पेश कर चुके हैं। 1920-21 मे महाराज सदाजीराव ने प्रभावित होकर इन्हे छात्रवृत्ति की सुविधा प्रदान की। बाद मे बडौदा रियासत मे भी रहे। आपके दामाद हाफिज अहमद खाँ तथा गुलाम मुस्तफा आपके शिष्य मे हैं। कई भाषाओ पर आपका समान अधिकार था। ख्याल तथा तराना गायन मे आप सिद्ध हस्त कलाकार थे। ध्रुपद-धमार की बहुत सी बन्दिशे याद थी। तराने को द्रुत लय मे बढ़त करना सब के वश की बात ना थी। आपके ख्याल और तराना के कई रिकार्डस तैयार हो चुके है। सन् 1971 मे भारत सरकार ने आपको 'पद्म भूषण' सम्मान से अलकृत किया। सगीत नाटक अकादमी द्वारा भी आपको ताम्रका प्राप्त हुआ। 16 जुलाई 1993 को इनका देहान्त हो गया।

नारायण राव व्यास :-

प0 नारायणराव व्यास का जन्म सन् 1902 मे कोल्हापुर मे हुआ। इनके पिता श्री गणेश व्यास तथा माता श्रीमती रामाबाई थीं। 1910 मे जब प0 विष्णु दिगम्बर जी अपने अन्य शिष्यो के साथ कोल्हापुर गये हुए थे तो इनका परिवार उनके गायन से व उनके वात्सल्य पूर्ण व्यवहार अत्यन्त ही प्रभावित हो गया। तभी नारायणराव और शकरराव दानो भाई सुयोग्य के सानिध्य मे रहने लगे। सन 1921 मे दोनो भाइयो ने गाधर्व महाविद्यालय से 'सगीत अलकार' नामक परीक्षा पास की। 1923 मे स्थापित अहमदाबाद के सगीत विद्यालय मे आपने चार वर्षों तक सगीत शिक्षा का अध्यापन भी किया। अनेक सागीतिक सम्मेलनो में सहभागिता निभायी, 'हिज मास्टस आफ वायस' मे आपके रिकार्डस किये गये। पडित जी ख्याल और भजन गायन मे परमदक्ष थे। तानो की तैयारी बोलतानों की विधिवत, लयताल का सामजस्य छोटी छोटी तिहाइयां बनाना इत्यादि पडित व्यास जी की गायन कला की विशिष्टतायें हैं आपके पसदीदा

राग थे - दुगा, मालकोश, मालगुन्जी, विरमक कामोद, बागेश्वरी इत्यादि जीवन के अन्तिम दिनो बम्बई मे ही सगीत साधना में बिताया और फिर चल बसे।

नसीर मोइनुद्दीन डागर .-

उस्ताद नसीरउद्दीन और नसीर अमीनुद्दीन डागर प्राय 'डागर बन्धु' के नाम से जाने जाते हैं। ये दोनो व्यक्ति एक साथ आलाप, जोड़ और ध्रुपद धमार प्रस्तुत करते थे जबकि ख्याल, ठुमरी, टप्पा, भजन आदि बिल्कुल भी नहीं गाते। आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से तथा अखिल भारतीय आकाशवाणी कार्यक्रम से आपके कार्यक्रम अनेक बार प्रकाशित होते रहे हैं।

नसीर का जन्म अलवर (राजस्थान रियासत मे 24 जून 1922 को सगीत परिवार मे हुआ उनके पिता नासिरउद्दीन खा थे। इनके पूर्वज प0 गोपालनाथ को शाहजहा के समय विवश होकर मुसलमान बनना पडा था, ऐसा कहा जाता है। उसी समय से ध्रुपद शैली की 'डागर बानी' मुसलमानो मे चल पडी। इस परम्परा के सभी गायक अपना सम्बन्ध स्वामी हरिदास जी से जोड़ने का प्रयास करते हैं, और अपने नाम के साथ "डागर" शब्द का प्रयोग जरूर करते हैं।

उस्ताद रज्जब अली खॉ के साथ सागीतिक बैठकें होती थीं इनकी सगीत शिक्षा के विकास मे इनके बाबा अलाबन्दे खॉ तथा पिता का योगदान महत्वपूर्ण रहा।

सन् 1934 के काशी सगीत सम्मेलन में पिता की अनुमति से राग तोड़ी की जगह गुर्जरी तोडी गा बैठे फलत: पिता जी की फटकार भी सुननी पड़ी किन्तु आखिरकार उन्होने इस क्षेत्र मे उस्ताद रियाजुद्दीन तथा जियाउद्दीन जैसे गुरूओं का सानिध्य प्राप्त कर सगीत का पथ पकड़े ही रखा। बाद में वे अपने छोटे भाइ अमीनुद्दीन

डागर के साथ बम्बई में निवास करने लगे। आपकी गायन शैली में गम्भीरता ज्यादा दृष्टिगत होती ह। स्वरो का भराव शब्दों के उच्चारण में सुस्पष्टता, काव्य निहित भावनाओं की अभिव्यक्ति, नोम तोम का आलाप, गमक का उचित प्रयोग, लयताल के साथ निडरता से खेलना आदि डागर जी की विशेषताएं थीं। आपका आलाप जोड़ काफी विस्तृत होता था और स्थायी अतरा सचारी, आभोग इन चार रूपों में विभक्त रहता था। उस्ताद नसीरउद्दीन डागर का आकस्मिक निधन 1966 को हो गया। सगीत मे उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

भास्कर बुआ बखले :-

इनका जन्म 17 अक्टूबर सन् 1969 को बड़ौदा रियासत में दाखिला लिया किन्तु बाद में सगीत के प्रति रूझान बढ़ता ही गया और मौलाबख्श से संगीत की शिक्षा ग्रहण करने लगे। भास्कर का कठ प्रकृत्या मधुर था जिनमें और भी निखार आ गया। कालातर 'किलोस्कर नाट्य कम्पनी' से जुड़ गये और इदौर में उनके गायन को सुनकर वल्देअली खॉ साहब बहुत प्रभावित हुए, फलत· सगीत शिक्षा प्रदान किया। कुछ समय पश्चात् नाटक कंपनी को छोड़कर भास्कर जी बड़ौदा के फैजमुहम्मद से सगीत सिखना शुरू किया। ट्रेनिंग कालेज धारवाड़ में आपको संगीत-शिक्षक पद मिल गया जहां उन्होंने नत्थन खॉ तथा उनकी मृत्युपरान्त अल्लादिया खॉ के निर्देशन में प्रगति की। इनकी आवाज मे पर्याप्त खुलापन था। उन्हें प्रचलित रागों के गाने का बड़ा शौक था। उनके प्रिय रागों में - यमन, भूपाली, हमीर, वागेश्री, मालकोस, छायानट, सोहिनी आदि उल्लेखनीय हैं। वे पहले चीस की बन्दिश सम्पूर्ण स्थायी अन्तरे के साथ गाया करते। लय, बोलतान और बोल आलाप में शब्दों का बहुत स्थान रखते थे।

इनके विचार थे कि केवल तान बासी अथवा सुरों के भरने से ही संगीत नहीं कहा जा सकता भास्कर बुआ जी का स्वर्गवास अप्रैल सन् 1922 को पूना में हो गया।

भोला नाथ भट्ट -

भोला नाथ जी एक ऐसी विलक्षण प्रतिभा थे जिन्हें अनेकानेक अप्रचिलित रागों को गाने में परम प्रवीण थे। बिना रूके हुये ही वार्तालाप के दौरान ही वे गायन में सिद्धहस्त संगीतज्ञ थे। इनका जन्म 1891 ई0 में दरभगा में हुआ था जहां इनके पिता पं0 मोती लाल भट्ट रहने लगे थे। जबकि इनके पूर्वज मारवाड़ के फतेहपुर नामक ग्राम के निवासी थे। कतिपय कारणवश ये राजस्थान छोड़कर उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले के कराली ग्राम में रहने लगे। आपका पालन पोषण सागीतिक माहौल ही हुआ था। कुछ समय इन्होंने ध्रुपद धमार गायन अपने पिता से ही सीखा था किन्तु अकस्मात उनकी मृत्यु हो जाने के बाद इन्हें अनेक जटिलताओं से जूझना पड़ा। इसके बाद भोला नाथ जी अपने मामा श्याम सुन्दर भट्ट के पास जाकर ख्याल गायन सीखा।

कलकत्ता में आपको करामत उल्ला खॉ के माध्यम से सेठ बेचा बाबू से मुलाकात हुई जिन्होंने इनसे प्रभावित होकर काफी धनराशि प्रदान की। उनके संगीत उस्तादों में उस्ताद मिट्टू खॉ, बिन्दू खॉ, वजीर खॉ (रामपुर) विलास खॉ (दतिया), भैया गणपतराय, मोजुउद्दीन खॉ, आदि उल्लेखनीय है। श्री बी0आर0 देवधर तथा माणिक वर्मा से भी काफी लाभान्वित हुए आपके प्रमुख शिष्यों में पं0 रामाश्रय झा, प0 गणेश प्रसाद शर्मा, पं0 शकर लाल मिश्र उल्लेखनीय हैं। भोलानाथ जी 16 मई 1970 को सागीतिक ससार से अपनी अपनी याद छोड़कर विदा हो गये।

राजा भैया 'पूछवाले' -

इनके पूर्वज बुन्देलखड के 'पूछ' नामक ग्राम के निवासी थे। अत इन्हे 'पूछवाले' के नाम से भी जाना है। जबकि राजा भैया का वास्तविक नाम प0 बालकृष्ण आनन्दराव अटेकर पूछवाले था। बाल्यावस्था से ही सागीतिक माहौल मे रहने को मिला था। इनका जन्म 12 अगस्त 1882 को लश्कर-ग्वालियर मे हुआ था।

छोटी उम्र मे ही पैर लकवाग्रस्त हो गया। किन्तु कालातर म भगवान की कृपा से उनमे काफी सुधार होता गया तथा वे लगडाकर चलने लग। शुरू म ही आपको अनेक महान मगीतज्ञ का सानिध्य मिला। ग्वालियर नरेश के शिवेक्तब की नाटक कम्पनी मे आपका हारमोनियम वादक का पद मिल गया। बलदेव, वामन बुआ देशपाडे, आदि सगीतज्ञो से शिक्षा ली। सौभाग्यवश उन्हें शकरराव पडित की गायी हुई 'ठुमरी' कृपा मुरारी विनती करत कर हारी' सुनने का मिली जिससे प्रभावित हो गये और कई बार सुना भी। उन्हे गुरू मानकर उन्होने सागीतिक अभ्यास किया। राजा भैया ने भातखडे जी के साथ कई स्थाना का भ्रमण किया। ग्वालियर दरबार की ओर मे भातखडे स्वर लिपि सीखने हेतु भेजे जाने वाले आप भी थे। 1918 मे ग्वालियर के सगीत विद्यालय मे अध्यापक बने बाद म 1941 म प्रिंसिपल पद को सुशोभित किया और 1949 तक कार्य करते रहे।

आपने अपने विनम्र स्वभाव का परिचय देते हुए अनेक शिष्यो को सगीत की शिक्षा दी। ग्वालियर महाराज द्वारा 'सगीतरत्नाकर' तथा 1956 मे राष्ट्रपति पदक से सर्वश्रेष्ठ गायक के रूप मे सम्मानित किये गये। आपने जिन सात महत्वपूर्ण रचनाओ का लिखा वे हैं - तानमालिका भाग, 1,2,3 (पूवार्द्ध) और भाग तीन (उत्तरार्द्ध) सगीतोपासना, ठुमरी, तरगिनी और ध्रुपद धमार गायन थे। आपके योग्य शिष्यो मे पुत्र

बालासाहब पूछवाले रामचन्द्रराव अग्निहोत्री, वामनराव राजुरकर और एन0एन0 गुण आदि उल्लेखनीय है, । अप्रैल 1956 को यह विभूति विलीन हो गयी।

विनायक राव पटवर्धन :-

ये म0 विष्णु दिगम्बर के सुयोग्य शिष्यो मे से एक थे। इनका जन्म 12 जुलाई 1898 को मिरज मे हुआ था। सबसे पहले विनायक ने सगीत सीखना अपने चाचा केशवराव से किया, 1907 ई0 से आपके सगीत शिक्षक बने प0 विष्णु दिगम्बर जी जिनके साथ कई यात्रायें भी की। अपने गांधर्व महाविद्यालय की बम्बई, नागपुर और लाहौर शाखाओ मे सगीत - शिक्षक का भी दायित्व निभाया।

सन् 1923 मे गाधर्व महाविद्यालय की एक शाखा पूना मे सस्थापित की। विनायक राव जी के अनेक सगीत सम्मेलनो एव आकाशवाणी से कार्यक्रम प्रसारित होते रहे हैं। आकाशवाणी के अखिल भारतीय कार्यक्रम के अन्तर्गत भी पटवर्धन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया है।

आप एक महत्वपर्ण वाग्गेयकार थे, 'राग विज्ञान' नामक सागीतिक ग्रंथ की रचना सात भागो मे आपके द्वारा की गयी है। प्रचलित तथा अप्रचलित दोनो ही तरह की रागो का परिचय तथा सगीत शास्त्र के विषय मे प्रकाश डाला गया है। पटवर्धन जी एक महत्वपूर्ण तराना गायक थे। तराने मे आड़ - कुआड आदि की लयकारी से सामान्य श्रोता तथा सगीतज्ञ दोनो ही प्रभावित होते थे। 1965 ई0 मे विनायक जी को सगीत नाटक आकादमी दिल्ली की फेलोशिप ओर 1972 मे राष्ट्रपति वी0वी0 गिरि द्वारा पद्मभूषण से भी आप सम्मानित किये गये। आपने गायन के समय गीत के बोलो की स्पष्टता पूर्ण उच्चारण किया पर विशेष जो दि [illegible]। आपने ठुमरी के साथ ही भजन ग[illegible] पर बल दिया। इस सगीत वेत्ता की मृत्यु 23 अगस्त 1974

विलायत हुसैन खॉ -

सुयोग्य सगीतज्ञ विलायत खॉ का जन्म सन 1896 को मैसूर मे हुआ था। इनके पिता उस्ताद नत्थन खॉ स्वयमेव एक मान्य सगीतज्ञ थे, जो मैसूर रियासत से जुडे हुए थे। विलायत की सगीत शिक्षा स्व0 करामत खॉ ने दी। तीन साल बाद इन्होने अपने अग्रज उस्ताद मोहम्मद बख्श से सगीत सीखा, विशेष कर ध्रुपद धमार। अन्य शिक्षको मे कल्लन खॉ, अब्दुल खॉ गुलाम अब्बास खॉ आदि बचपन से ही ध्रुपद धमार गाते थे। फैयाज खॉ ने इन्हें अनेक सगीत सभाओ मे इनसे पहले गवाया और बाद मे अपना गायन प्रस्तुत करवाय थे। जयपुर मे आपको अनेक सगीतज्ञो का सानिध्य मिला कुछ दिनो बाद आकर बम्बई में रहे और अनेक लोगो को शिक्षा प्रदान की। 1935 से 1940 तक आपकी नियुक्ति मैसूर दरबार मे हो गयी थी। इन्होने काश्मीरी राजकुमारो को भी शिक्षा प्रदान की।

वाराणसी सगीत परिषद से विलायत खॉ साहब को 'सगीत रत्नाकर' की उपाधि मिली। आपने आकाशवाणी प्रोग्राम किया और 18 मई को इनकी मृत्यु हो गयी। स्वभाव से सरल और विनम्रशील खॉ साहब बडे स्वाभिमानी सगीतज्ञ थे इनके शिष्यो मे श्रीमती अजनीबाई नावेकर, युनुस हुसैन खॉ, खरचतीबाई, इन्दिराबाई, जगन्नाथ बुआ, दत्तू बुआ आदि उल्लेखनीय है।

बी0ए0 कशालकर :-

कोल्हापुर के कुलीन ब्राह्मण परिवार मे 1882 मे बी0ए0 कशालकर जी का प्रादुर्भाव हुआ। शैशवास्था से ही संगीत के प्रति लगाव रहा। कालान्तर में इन्होने एक साधारण नौकरी करनी शुरू की। बाद मे छोडकर पारिवारिक विरोध की परवाह न करते हुए 1905 मे प0 विष्णुदिगम्बर जी से संगीत शिक्षा ग्रहण हेतु ये लाहौर

जी ने बम्बई मे जिस समय गाधर्व महाविद्यालय की शाखा स्थापित की उस समय कशालकर जी लाहौर शाखा क प्राचार्य पद का सुशोभित कर रहे थे। 1915 मे कशालकर जी न सगीत प्रवीण की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की। लार्ड विलिग्टन ने इन्हे स्वण पदक भी भेट किया।

गुरू के आदेशानुसार 1915 जुलाई से प्रयाग मे सगीत के प्रसार प्रचारार्थ सलग्न हुए जहा आपका परिचय मेजर रणजीत सिह, श्री सत्यानद जोशी, प0 गोपाल दत्त तिवारी, बाबू बैजनाथ सहाय आदि गणमान्य व्यक्तियो से हुआ। इन सभी प्रतिष्ठित पुरूषो के सम्मिलित योगदान से ही 1926 ई0 मे 'प्रयाग संगीत समिति' की स्थापना की गयी। बाद मे इन्होने स्वय एक सगीत स्था की स्थापना रघुनाथराव पटवर्धन के निर्देशन मे स्थापित की। 1950 ई0 मे कशालकर जी को विष्णु दिगम्बर एकेडमी आफ म्यूजिक डारेक्टर के पद पर नियुक्त किया गया और 18 वर्ष तक आपने सेवा की।

सन् 1962 मे आप भारतीय सगीत तथा ललित कला विद्यापीठ कानपुर द्वारा 'संगीत मा...ण्ड' विरूद से सम्मानित हुए, वक्त के पाषक पडित कशालकर जी को अनेक प्राचीन बंदिशे स्मरण थीं। 13 जुलाई 1968 को कशालकर जी प्रयाग मे ही स्वर्गवासी हो गये।

बासवराज राजगुरू :-

प0 बासवराज जी का आविर्भाव सन् 1920 में धारवाड़ मे हुआ था। इनके पिता श्री महत्न स्वामी राजगुरू कर्नाटक सगीत के प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। प्रारम्भिक शिक्षा पिता से ग्रहण की थी। बाद मे ये मडित मचाक्षरी बुआ के शिष्य बने और बारह

वर्षों तक शिक्षा प्राप्त की, आपन स्वामी गधर्व तथा सुरेश बाबू मार्ग से भी सगीत सीखा। इस प्रकार पडित जी ने उत्तरी व दक्षिणी दोनो प्रकार की सगीत का ज्ञान अर्जित किया। उत्तर भारत के प्रत्येक अच्छे सगीत सम्मेलन मे आप आमत्रित किये गये। आकाशवाणी से भी आपके कार्यक्रम प्रसारित हुए है। राट्रपति भवन मे आपने प्रसशनीय कार्यक्रम पेश किया। आपने ग्वालियर और किराना घरानो से भी सम्बद्ध रहे। सुमधुर एव आकर्षक कठ के धनी राजगुरू को 'गान कोकिल' से सम्मानित किया गया। 'सगीत सुधाकर' सगीत सर्वोदय और रत्नाकर जैसी श्रेष्ठ उपाधिया भी इन्हे प्रदान की गयी। बासवराज जी का आकस्मिक निधन 6 दिसम्बर 1992 को हो गया।

वामन नारायण ठकार :-

12 दिसम्बर 1999 को कोल्हापुर के ब्राह्मण परिवार मे वामन नारायण का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम प0 नारायण शास्त्री का शुरू से आपकी अभिरूचि सगीत एव संकीर्तन मे थी। शीघ्र सयोगवश पहुचे पं0 विष्णु दिगम्बर जी से इनके बडे भाई ने इन्हे सगीत शिक्षण हेतु निवेदन किया और फिर 1912 को वामन को उनके पास भेज दिया गया। पडित जी के साथ आप भारत के अनेकानेक स्थलो का भ्रमण किया। नासिक, नागपुर, कलकत्ता, बम्बई, वाराणसी, इलाहाबाद, जम्मू काश्मीर इत्यादि स्थलो का भ्रमण किया और पडित विष्णु दिगम्बर जी के सानिध्य मे 1925 तक रहे। उसी दौरान आपका विवह सस्कार भी सम्पन्न हुआ अत. भावनगर के दक्षिणामूर्ति विद्यालय मे सगीत शिक्षक बन गये और 'सौराष्ट्र सगीत विद्यालय ' की स्थापना की। गुरूभाई कशालकर जी की सलाह पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उप कुलपति डॉ0 डी0 आर0 भट्टाचार्य जी से हुई। आपने गायन से प्रभावित उन्होने वामन को विश्वविद्यालय मे रख लिया। सन् 1947 ई0 से 1953 तक श्री महेश नारायण सक्सेना, तत्कालीन डायरेक्टर प्रयाग सगीत सगीत समिति के आग्रह से समिति

में कार्यरत रहे। इसी दोरान आपने के0पी0 इण्टर कालेज इलाहाबाद मे 6 वर्षो तक कार्य किया। तत्पश्चात् महिला विद्यालय इलाहाबाद मे सगीत शिक्षण दिया। आपके तीनों पुत्र बसत, माधव और श्रीकांत वामन ठकार थे जिनमे श्रीकात जी ठकार सगीत सेवा मे तत्पर है।

आप अपने मित्रो से पुत्रवत् व्यवहार किया करते थे। जीवनात मे आप वाराणसी मे 28 मई 1977 को प्राण त्याग दिया।

शंकरराव पंडित :-

संगीतज्ञ विष्णु पडित के घर मे 1863 मे (ग्वालियर) मे शकरराव का जन्म हुआ। ये शास्त्री जी के तीसरे पुत्र थे जबकि चौथे पुत्र एकनाथ जी भी अपने समय के सम्मान्य सगीतज्ञ थे। ग्वालियर घराने के दोनों ही स्तंभ थे। आपने गायन पं0 बालकृष्ण बुआ से सीखा। बाद में दद्दू खॉ से भी सागीतिक शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला। उनकी मृत्यु के पश्चात् इन्होने युगल बन्धु नत्थू खॉ से भी शिक्षा प्राप्त की। निसार खॉ भी इनके गुरू रहे। शकर पडित ने धार के देव जी बुआ से टप्पा गायन सीखा इनकी मृत्यु सन् 1917 मे हो गयी, उनके नाम पर गाधर्व विद्यालय का नाम शकर गांधर्व विद्यालय रखा गया। शकर राव जी ध्रुपद धमार, ख्याल तथा टप्पा गायन में निष्णात थे। ख्याल की स्थायी और अन्तरा भरने के बाद ही वे आलाप और बहलावा करते थे। आपकी ताने तैयार तथा सुस्पष्ट होती थीं। लय व ताल पर उनका नियत्रण अन्यतम था ही साथ ही वे ख्याल व टप्पा के कोष थे। उनके प्रमुख शिष्य हैं - उनके पुत्र कृष्णराव पंडित, राजा भैया पूंछवाले, बालाभाऊ उमड़ेकर, रामकृष्ण बुआ बझे आदि।

श्रीकृष्ण नारायण रातनजनकर :-

श्री रातनजनकर जी का जन्म 31, दिसम्बर 1900 को बम्बई के एक सारस्वत ब्राहम्ण कुल में हुआ था। इनके पिता श्री नारायण गोविन्द जी को सगीत से लगाव था अत बालक श्रीकृष्ण नारायण को सिखाने हेतु सगीत शिक्षक कृष्णानद भट्ट को नियुक्त किया। रातनजकर का उपनाम था 'अन्ना'। सौभाग्यवश म0 अनन्त बुआ जोशी से उनका साक्षात्कार हुआ और वे सहर्ष शिक्षा देने लगे। कालान्तर भातखंडे जी से भी प्रशास्ति मिली भातखंडे जी इन्हें बाबूराम राम से पुकारते थे। 1917 मे आपको सगी शिक्षा हेतु बड़ौदा नरेश द्वारा वजीफा भी दिया गया। वहा इन्हों फैयाज खॉ साहब से गायन सीखा। सन् 1926 में मेरिस काले लखनऊ में प्राध्यापक पद पर प्रतिष्ठत हुए और 1928 मे प्राचार्य हो गये। इसके पश्चात् आप इन्दिरा कला सगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ में कुलपति जैसे पद की शोभा बढायी। आकाशवाणी से सगीत कार्यक्रम प्रसारकों के ध्वनि परीक्षक पैनल मे भी आपकी सहभागिता प्रमुख रही।

विभिन्न केन्द्रो तथा अखिल भारतीय आकाशवाणी केन्द्रो से अनेकश कार्यक्रम प्रसारित किये। आपके प्रमुख शिष्यो मे डा0 सुमति मुटाटकर, डा0 शत्रुघ्न शुक्ल, आदि उल्लेखनीय है। आपकी गयान शैली फैयाज खॉ से मेल खाती है। नोम तोम का विस्तृत आलाप, स्वरों का लगाव और गतिपूर्ति कला की दृष्टि से इन पर फैयाज जी का ही प्रभाव झलकता है 14 फरवरी 1974 को रातनजकर जी ने ससार सागर से विदा लिया।

सवाई गन्धर्व :-

आपका वास्तविक नाम था श्रीराम कुन्दगोलकर, किन्तु किराना घराने के प्रख्यात गायक तथा श्रीमती गगूबाई हसन, भीमसेन जोशी जैसे सुप्रसिद्ध संगीतविदों से

आप श्रेष्ठ गुरू थे, उनके अथक परिश्रम के कारण उन्हे 'सवाई गन्धर्व' कहा जाता था। पिता के निरन्तर प्रयासो से ये सगीत मे दक्ष हो गये। 24 वर्षों तक आपने नाट्यमडिलियो मे सहभागिता निभाई। अभिनय कला मे भी आप पारगत थे। स्व0 अकुलकरीम खॉ से मनोयोग पूर्वक सगीत शिक्षा ग्रहण की। सगीत की अनेक सभाओ मे आपकी प्रशसा की गयी। जहा एक ओर आप एक श्रेष्ठ गायक थे वहीं दूसरी ओर एक सुयोग्य सगीत शिक्षक भी। आपके उल्लेखनीय ख्यातिलब्ध शिष्यो मे है- भीमसेन जोशी, गगूबाई हसन, इन्दिराबाई सादिलकर, कागलकर बुआ इत्यादि।

उनके रिकार्डों से ज्ञात होता है कि सवाई गन्धर्व जी की गायकी मे चैनदारी स्वरो का श्रमिक सवर्द्धन और तानो मे गतिशीलता विद्यमान थी। पछाघात के शिकार, जीवन संघर्ष से जूझत हुए अतत 12 सितम्बर 1952 को पूना मे आपका स्वर्गवास हो गया।

सिद्धेश्वरी देवी :-

इन सगीतज्ञ का अविर्भाव 1908 मे काशी पुण्य भूमि मे हुआ था। बचपन में ही मॉ का साया उठ जाने से मौसी श्रीमती राजेश्वरी देवी द्वारा पलन पोषण किया गया। वे स्वयमेव एक अच्छी गायिका थी। अत. वे सिद्धेश्वरी देवी की प्राथमिक सगीत शिक्षका भी थीं। 11 वर्ष की अवस्था मे सिया जी से गायन सीखा जो कि एक श्रेष्ठ सारगी वादक थे। उनसे ख्याल, टप्पा, ठुमरी आदि से सम्बन्धित जानकारी हासिल की। काशी के सगीत सम्राट बडे रामदास जी के शुभ सानिध्य मे भी इन्होने बहुत कुछ सीखा। आपने अनेक सगीत सम्मेलनो, आकाशवाणी केन्द्रो मे कार्यक्रम प्रसारित किये है। आपकी दो सुपुत्रिया श्रीमती शाती और श्रीमती सविता देवी सगीत ससार मे प्रतिष्ठित हो रही हैं। श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी छोटे-बडे ख्याल मे कुशल थीं।

हीराबाई बड़ौदेकर :-

किराना घराने की प्रख्यात गायिका श्रीमती हीराबाई बडौदेकर जी का जन्म 29 मई 1907 को मिरज मे हुआ था। इनकी मा भी तारबाई एक श्रेष्ठ गायिका थी। इस प्रकार आपको एक सांगीतिक परिवेश प्रारम्भ से ही प्राप्त हो गया। तीन वर्ष की अल्पायु से ये अपने भाई सुरेश बापू से सगीत सीखने लगी। सन् 1921 से आप उस्ताद वहीद खॉ से सीखना शुरू किया गाधर्व महाविद्यालय पूना के सगीत महोत्सव में हीराबाई का गायन काफी सफल साबित हुआ। कालातर मे अनेक स्थानो मे कार्यक्रमों का प्रसारण किया, भरतपुर, भावनगर, इन्दौर, जूनागढ आदि रियासतो मे सगीत प्रस्तुतीकरण हेतु इन्हें आमत्रण दिया गया। विभिन्न आकाशवाणी केन्द्रों अखिल भारतीय प्रोग्राम भी सचालित किये गये। आप भारतीय सास्कृतिक मडल के साथ 1949 मे दक्षिणी अफ्रीका और सन् 1953 में चीन गयीं जहा इन्हाने अपनी कीर्ति का परचम फहराया। ये तानो सपाट तानो का प्रयोग करती थीं। ताने स्पष्ट तथा तैयार होती थीं। बड़े छोटे ख्याल के बाद ठुमरी गाती थीं। आपके गायनो की रिकार्डिंग हो चुकी है। आपके पद दीप राग मे निबद्ध पिया नहि आये' तथा भैरवी मे निबद्ध ठुमरी, अकेली मत जइयो राधे जमुना के तीन' बहुत ही लोकप्रिय है। आजीवन सगीत सेवा करती हुई यह सगीत ..ना स्वर्गधाम 20 नवम्बर 1989 को सिधार गयी।

हस्सूहद्दू खॉं :-

ग्वालियर घराने की गायकी को सुप्रतिष्ठित करने का श्रेय हस्सू हद्दू खॉं को है जिनके पिता कादिर बख्श और पितामह नत्थन पीरबख्श थे। इनमे हस्सू बड़े भाई थ जबकि दद्दू छोटे थे। इन्होने लखनऊ छोडकर ग्वालियर को अपनी कर्मभूमि बना लिया और ग्वालियर घराने का शुभारभ किया आप दोनो बन्धुओ को

2 ध्रुपद शैली के वाग्गेयकार :-

उत्तर भारतीय गायका द्वारा गाये जान वाले गीतो सागीतिक रचनाओं को ही ध्रुपद, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, गजल, होरी इत्यादि की सज्ञा दी जाती है।

"अनूपसगीत रत्नाकर" [1] नामक ग्रन्थ मे ध्रुपद को निम्नवत् व्याख्यायित किया गया है-

> गीर्वाणमध्य देशी या भाषा साहित्य रजितम्।
> द्विचतुर्वाक्यसम्पन्न नरनारीक का श्रयम्।।
> श्रृगार रस भावाढ्यं रागालापपदात्मकम्।
> पदातानुसप्रासयुक्तं पदातचुगक च वा।।
> प्रतिपाद पत्र बद्धमेव पादचतुष्टयम् ।
> उद्ग्राहध्रुवकाभोगान्तर ध्रुवपदसमृतम्।।

प्राय: प्रचार मे ध्रुवपद हिन्दी, ब्रजभाषा या उर्दू मे ही होते हैं। आज जो गायन हिन्दुस्तानी संगीत के रूप मे जाना जाता है वह सब इन्हीं भाषाओ मे लिपिबद्ध है। ध्रुवपद के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध निश्चित रूपेण कुछ भी कहना कठिन है। ऐसे अनेक ऐतिहासिक साक्ष्य इस बात का सकेत देते हैं कि पिछले पाच सौ वर्षो से इसका प्रचलन उत्तर भारत मे है।

मुगल सम्राट अकबर के अनेक प्रसिद्ध गायको मे प्राय ध्रुव दिये अथवा ध्रुवपद ही गाते थे। तानसेन का नाम इस सम्बन्ध मे कौन न जानता होगा ? तानसेन

---

1 भावभट्ट कृत अनूप सगीतरत्नाकर

वृंदावन के संत स्वामी हरिदास जी का शिष्य था। स्वयं स्वामी हरिदास जी के तथा उनके शिष्यो द्वारा (तानसेन, गोपाल बैजूबावरा) द्वारा गाये गये ध्रुपद आज भी चर्जित है। तानसेन के वंशज वजीर खॉ व मुहम्मद अली खॉ इत्यादि को आज भी उनके अनेक ध्रुपद स्मरण हैं। ख्याल की तुलना में यदि देखे तो ध्रुपद अपेक्षाकृत अधिक व्यापकता लिये होता है। इसके चार भाग होते हैं - स्थाई, अन्तरा, संचारी व आभोग कुछ ध्रुपदो में स्थायी व अन्तरा ही होते हैं। प्राचीनकालीन ध्रुपदो मे प्राय चार भाग एवं उनके उपचरण होते थे।

हजारो की संख्या मे पुराने ध्रुपद संगीतकल्पतय नामक संगीतिक ग्रन्थ मे मिलते हैं लेकिन वे स्वर ताल व लिपि से लिखे हुए नहीं हैं फलत नष्ट प्राय हो गये हैं। अनेक ऐसे घरानो से सम्बद्ध गायक अभी है किन्तु उनमे अधिकांश शिक्षित नहीं है। अत उनके गीतो मे स्वर और शब्द बिगड़े से दृष्टिगत होते हैं।

ध्रुवपद गायन को हिन्दुस्तान का काफी तेज तर्रार गायन कहा गया है इसमे वीर, श्रृंगार एवं शान्त रसो की प्रधानता रहती है। भाषिक स्तर उच्च कोटि का हुआ करता है। ध्रुवपद चौताल, सूलफाक, झपा, तीव्रा, ब्रह्मा, तथा रूद्र इत्यादि तालो मे गाये जाते हैं। जो गायक ध्रुपद गाते है उन्हे "कलावन्त" कहा जाता है। जिनके अनेक वर्ग माने गये हैं यथा - खंजर, नीहार, डागुर, तथा गोबरहार। इन वाणियो के उद्भव के सम्बन्ध निश्चितता नहीं है फिर भी विद्वानो की अवधारणा है कि प्राचीन काल मे शुद्धा, भिन्ना, बेसरा, गौड़ी, तथा साधारणी इत्यादि जो रीतियां प्रचलित नहीं है उन्हीं से उक्त वाणियो का भी उद्भव होगा। गायक चाहे जिस घराने के हो अपने गायन के प्रस्तुतीकरण मे प्रर्वजो की परम्परा को ही आधार मानते और अभ्यास करते थे। 'रत्नाकर' मे प्राचीन गीतियो अवरीतियो के सम्बन्ध मे चर्चा हुई है तदनसाद -

गीतय भच शुद्धाया भिन्नागौडी च बेसरा।

साधारर्णोति शुद्धास्पावक्त त्वलितैं स्वरै ।।

भिन्ना सूक्ष्मैं स्वरैर्वक्रर्मधुरैगमकैर्युता।

गाठैस्त्रिस्थानगमकैरूहाटीललितै· स्वरैठ।।

अखंडितस्थिति स्थानत्रेय गौडी मता सताम्।

उहाटी कपितैर्मद्रैर्दुतद्रुततरै स्वरै. '

हकारोकार स्वरैर्वणचतुश्केउष्यतिरक्तित ।।

वेगस्वरा रागगीतिर्वसरा चोच्यते वुधैठ ।।

आधुनिक युग मे वाणियों के रहस्य के सम्बन्ध सम्यक ज्ञान व परिचय रखने वाले गायको का प्राय. अभाव सा रहा है। दर असल ख्याल गायन की लोकप्रियता बढ जाने के कारण सभी नवीन तथा प्राचीन वाणियों की न्यूनता होती गयी। ध्रुपद मे तानो का प्रयोग नहीं होता है। इसमे दुगुन, चौगुन, बोलतान गमक इत्यादि रूप हो सकते हैं। रामपुर तानसेन परम्परा के गायको की तो ऐसा भी कहना है कि प्राचीन काल मे दुगुन चौगुन बोलतान आदि प्रकार ध्रुपद मे प्राप्त होते थे किन्तु आजकल दुगुन, चौगुन और बोलतान के प्रकार भी ध्रुवपद मे मिल जाते हैं।

ध्रुवपद का गायन पिछली शताब्दी की शुरूआती दौर तक लोकप्रियता को प्राप्त था। इसे शुद्ध व सम्मानित स्थान दिया जाता था। किन्तु गत दो सौ वर्षो से (लगभग) ख्याल गायन कुछ ज्यादा लोकप्रिय हो रहा है। यह कहना अप्रासंगिक न होगा। वस्तुत ध्रुवपद के पुनर्प्रचलन, लोकप्रियता हेतु यथेष्ठ प्रयास की अपेक्षा है।

ध्रुवपद के विषयों का स्रोत :-

काव्य का प्रयोजन यश, अर्थ, व्यवहार ज्ञान, अमगल की शाति और लोकरजन माना गया है, और यही बात 'गीत' के सन्दर्भ मे लागू होती है जिसे धम अर्थ काम और मोक्ष इन चारो पुरूषार्थ का साधन भताया गया है। प्राचीन काल मे वीणावादक ब्राह्मण यज्ञो मे वीणावादन करते थे तथा गाते भी थे। इससे गायको के धम की तथा गायक वादक ब्राह्मणो के अर्थ की पूर्ति हो जाती थी।

काव्य गीत का अंग है और कावय के लिये संगीत शास्त्र मे 'पद' शब्द प्रयोग हुआ है। जो निबद्ध एव अनिबद्ध होता है। इसी प्रकार वाणी की सजना करके उसे गेय रूप मे ढालने वाले व्यक्ति को वाग्गेयकार कहा जाता है जिनमे व्याकरण कोष, छद, अलकार, रस भाव तथा देश स्थितियो का ज्ञान अपेक्षित होता है। विचारको द्वारा जनअभिरूचि के अनुसार गीतों की कई कोटिया मानी गयी हैं। भरत के अनुसार, आचार्य अर्थात् सगीतवेत्ता 'सम' गीत को पसद करते हैं जबकि 'पडितो' के लिए व्यक्त 'गीत' रूचिकर होता है। इसके अलावे नारिया 'मधुर' गीत पर मुग्ध होती हैं तो अन्य वर्ग 'विकृष्ट' गीत की अभिलाषा करते हैं।

इन्हे हम ध्रुवपद के उत्स के रूप मे व्याख्यायित कर सकते हैं। पार्श्वदेव का अभिमत है कि ऊचनीच स्वरो एव वीर रस प्रयोज्य अक्षरो से युक्त आरभतीवृत्ति सवलित और उत्साहपूर्ण गीत वीरो को रूचिकर होता है। प्रेमरस का सचार कर देने वाला कठिन कठ से गेय गीत रसिक हृदयो को प्रिय लगता है, इसके दो रूप होते हैं। सयोग व वियोग उल्टे सीधे शब्दों से युक्त स्वर भगी प्रधान और परिहास पूर्ण गीत विटो को पिय होता है। इस प्रकार वाग्गेयकार को काफी दायित्व का निर्वाह

करना पड़ता है, गायक रजन करता है तो वाग्येयकार सर्वलोकरजक सामग्री प्रदान करता है। इस तथ्य के आलोक मे 15वीं शताब्दी के ध्रुपदकारो की योग्यता वाग्गेयकारी की अपेक्षा न्यून थी किन्तु समस्यो, कोक रूचि वैभिन्य वही था, अतः ध्रुवपदकारी की रचनाओ पर विचार करते समय उक्त तथ्य पर ध्यान देना चाहिए।

पन्द्रहवी ''ाब्दी ईस्वीं के ध्रुवपदकारो ने प्राय अहिन्दू राजाओ का गुणगान किया है। वस्तुत अकबर से लेकर बहादुरशाह द्वितीय तक काव्य, सगीत और विलास की जो परपरायें उनके दरबारों और रनिवासो में विद्यमान थी, दरअसल वे सभी भारतीय परपरा की ही देन कही जा सकती है, जिन कलावंतो, ठारियो अथवा अन्य सगीत जीवियो की चर्चा ध्रुवपदकार के रूप में की जाती है, उनकी आजीविका का अनुवशिक साधन सगीत, था, इसीलिए हम उनमे ब्राह्मण इत्यादि सवर्ण जातियो मे उत्पन्न व्यक्तियो का प्राय. अभाव पाते हैं। परंपरागत विरूद्ध एव स्तुतिगान कर्ता जातियो जब मुसलमान हो गयी तब भी उनका उक्त कार्य पूर्ववत् बरकरार रहा।[1] परीजनो मे स्तुतिपाठ के साथ ही साथ गायन वादन भी आजीविका का साधन बन गया था। इसी जाति ने जहा अनेक समर्थ कवि उत्पन्न किये, वहीं अच्छे 'वाग्गेयकार' भी। राज्य सरक्षण प्राप्त ब्रज रचना का विषय बनाया गया है, वे सभी ध्रुवपदकारों के साहित्य का भी विषय बनी है। इस प्रकार ध्रुपद के विषयों का स्रोत एक ही प्रतीत होता है। इन्हीं बृजभाषादि ने रचनाकारो की ही भांति ध्रुपदकार ने भी पुरूषार्थ के अतिम लक्ष्य मोक्ष की अभिव्यक्ति 'हरिनाम' के रूप मे की है।

ध्रुवपद गायन के समय उसी प्रकार नर्तन भी करते थे जैसे ठुमरी गाते समय लच्छन महाराज जैसे गुणी व्यक्ति ठुमरी के भावों का अभिनय करते थे। स्व0 भातखंडे

---

1. संगीतचिन्तामणि - पृ0 69 भाग - 1

जी की दृष्टि मे ध्रुवपद गान शुद्ध और आदरणीय है, उनकी प्रबल इच्छा थी कि ध्रुवपद गान का पुन प्रसार है।

भातखंडे जी की विचार ध्रुवपद के सन्दर्भ में :-

"रामपुर की ओर तानसेनी स्थित परम्परा तथा पूर्व की ओर सभी स्थानो की ध्रुवपद परम्परा में ताल की खट् खट् बिल्कुल नहीं।.... वर्तमान समय मे गायक तथा पखावजो की सगीत का ध्रुवपद सुनने की बजाय प्राय उनकी विसगति या प्रतियोगिता का ध्रुवपद ही सुनाई देता है। परिणाम में 'कौन' हारा, कौन जीता? इसकी दिल्लगी उडती है और सगीतानन्द शून्य हो जाता है। इस प्रकार के गान की आदर यदि श्रोताओ द्वारा न हो तो उचित ही है।"[1] प्राचीनकाल मे दुगुन, चौगुन, बोलतान इत्यादि प्रकार ध्रुवपद मे निषिद्ध माने जाते थे किन्तु आजकल प्रचार मे दुगुन, चौगुन और बोलतान से प्रकार भी ध्रुवपद मे गाये जाते हैं।

भातखंडे जी की दृष्टि में ताल प्रधान ध्रुवपद गाने की प्रथा कब और किसके द्वारा आरम्भ हुई। यह ज्ञात नहीं। बडे बड़े राजाओ के दरबार मे गायको/वादको के दगल होते थे। सम्भवत इन्हीं दगलो से गायक और पखावजी की स्पर्धा की कल्पना से 'धा' से 'धी' को स्पर्श न करने का दाम निकला होगा।

वांग्गेयकार तानसेन की दृष्टि में ध्रुवपद :-

तानसेन के एक ध्रुवपद से उनकी ध्रुवपद सम्बन्धी धारणा का परिचय मिलता है। तदनुसार ध्रुवपद की चार तुके होनी चाहिए उसे शुद्ध अक्षरा से युक्त गुरूओ के द्वारा विरचित रसोत्पन्न, प्रकृति की दृष्टि से राग व इससे सम्बद्ध सामजस्य पूर्ण ढग से होना चाहिए।

अबुल फजल की दृष्टि में :-

ध्रुवपद तीन या चार पक्तियो से निर्मित पद है जिनकी लम्बाई कुछ भी हो सकता, इनका मुख्य विषय मुख्यत उन व्यक्ति की प्रशसा होती है जो अपने पौरूष अथवा गुणो के कारण प्रसिद्ध होते है, ध्रुवपद आगरा ग्वालियर और समीपवती प्रदेशो मे प्रचलित गीत है।

इमाम की दृष्टि से -

ध्रुवपद मे चार पाच चरण होते हैं, और दो भी। चरण का तात्पर्य 'तुक' है। स्थायी, अतरा, भोड़ा और आमोघ में चारो तुको के नाम है। इसे खड भी कहते है"।

निष्कर्षत: कहते हैं कि ध्रुवपद गायन काफी पहले शुरू हो गया था, जिसकी परम्परा नये रूप मे आज भी यत्र तत्र दिख जाती है। जहा तक ध्रुपद शैली के वाग्गेयकारो का प्रश्न है अनेक ध्रुपद गायक व रचनाकार मिलते हैं जिनका नामोल्लेख करना सर्वथा प्रासगिक है। प0 ओंकारनाथ जी ख्याल के साथ ही ध्रुपद गायन मे माहिर थे। अल्लासिए खॉ भी इसी प्रकार पहले ध्रुपद गाते थे। ध्रुपद गायन के लिये स्वामी हरिदास जी, तानसेन चिन्तामणि मिश्र भी उल्लेखनीय है। निसार हुसैन खॉ साहब को भी ध्रुपद शैली का पाग्गेयकार माना जाता है। वतमान समय मे ध्रुपद के पुनरूद्धारक विभूति है नसीरमोइनुद्दीन डागर, जिन्होने जनता का हृदय ध्रुपद की ओर उन्मुख किया। फैयाज खा साहब भी ध्रुपद शैली के वाग्गेयकार थे। बैजूबावरा के सहयोग से मानसिह तोमर से तो ध्रुपद शैली का प्रतिकार ही नहीं प्रचार भी किया था। अन्य प्रमुख ध्रुपद वाग्गेयकार हैं - बड़े रामदास जी प0 भोलानाथ भट्‌ट, विलायत हुसैन खॉ शकरराव पंडित इत्यादि।

ख्याल शैली के वाग्गेयकार :-

ख्याल फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है, 'विचार' या 'कल्पना'। ख्याल शब्द 'ध्यान' का रूपान्तर है। राजस्थान मे कविकल्पना अथवा ऐतिहासिक घटना के आधार पर निर्मित चित्र 'ख्याल' कहे जाते हैं। चंग बजाकर लखनी गाने वाले लोग उन गीतो को ख्याल कहते हैं, जिनमें ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन होता है। शाह बुर्हानुद्दीन जानम- 16वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध जैसे प्रसिद्ध सूफियो की रचनाओं को भी ख्याल स[illegible] दी गयी है। जिनमें प्रेम की पीर का चित्रण हुआ है।[1] इसी प्रकार पीर, पैगम्बर की प्रार्थनापरक एवं ध्यानमुद्रा सम्बन्धित ऐसी रचनाओ को भी 'ख्याल' नाम से अभिहित किया जाता है जो गजल की तरह छंदोबद्ध नहीं थी। ख्याल में दो धातु 'स्थायी और अतरा' होते थे। वस्तुत गजल, कव्वाली और ख्याल गायन एक ही वर्ग के लोगो द्वारा सपादित होता था।

ख्याल गायक ख्याल को 'बडा या लगड़ा' ध्रुवपद कहते थे।

स्वर लिपि के न मिलने के कारण प्राचीन ध्रुवपदों में जिस प्रकार व्यवधान उपस्थित हुआ है वैसे ही ख्यालों में भी दृष्टिगत होता है। आज के समाज में ध्रुवपद व ख्याल इनका ही गायन उत्कृष्ट माना जाता है। ख्याल में श्रृंगार रस का प्रयोगाधिक्य दृष्टिगत होता है। ध्रुवपद की भांति इसमें गम्भीरता नहीं होती शब्द वैचित्र एवं शुद्धता का अभाव भी खटकता है। ख्याल गायक बहुधा धीमा त्रिताल, निबाड़ा - विलम्बित ताल एकताल, झूमरा, आड़ा चारताल, आदि का उपयोग करते हैं, ख्यालों में ही द्रुतताल गिटकड़ी, आदि भी चलते हैं।

प्राचीन स[illegible]य समाज मे ख्याल का स्थान ऊचा नहीं था। ख्याल का गायन

---

1 मुसलमान और भारतीय सगीत - पृ0 79

प्रथमत जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह शर्की ने उस स्थिति पर आकर फिर कोई ध्यान न दिया। ख्याल को लोकप्रिय बनाने मे शर्की सुल्तान का योगदान महत्वपूर्ण है। मुगल बादशाह मुहम्मद शाह (1719-1740) के दरबार में सदारग तथा अदारग नामक दो बुद्धिमान कलाकार रहते थे। उन्होने सहस्त्रो ख्याल की रचना की और अनेक शिष्यो को उसकी शिक्षा भी।

आज भारतवर्ष मे जो ख्याल गायन हो रहा है, वह इन्हीं कलाकारों की देन का परिणाम है। इस सम्बन्ध में यह आश्चर्य का विषय है कि सदारग-अदारग बन्धुओ ने यह ख्याल गायन अपने ही वशजो को नहीं सिखाया उदाहरणार्थ रामपुर के वजीरखां जो सदारग के वशज थे, वे ख्याल की जगह सदैव ध्रुवपद का ही गायन किया करते थे। इतना ही नहीं रामपुर के मोहम्मद अली खां जिन्हे दूसरे तानसेन के घराने का वशज माना गया, वे भी ध्रुवपद का गायन किया करते थे न कि ख्याल। प्राय सभी सगीतज्ञो की यह मान्यता रही है कि पिछले सौ डेढ सौ वर्षो मे ख्याल गायन का जो प्रसार प्रचार हुआ है और सम्प्रति हो रहा है, वह सदारग अदारग की शिष्य प्रशिष्य परपरा के प्रयास का ही प्रतिफल है।

ग्वालियर के हद्दू खा, हस्सू खा, नत्थू खा तथा इनके पूर्वज नत्थन पीरबख्श भी अपनी गुरु परम्परा सदरग-अदारग तक ले जाते थे। सदारग-अदारग के अतिरिक्त अन्य अनेक लोप्रियता हासिल हुई है। इसी प्रकार कौव्वाल वाणी के ख्यातिए अपनी परम्परा को हजरत अमीर खुसरो तक पहुंचाते हैं। लोगो की ऐसी धारणा है कि आजकल द्रुतलय के जो ख्याल प्रचार मे हैं, उसके पीछे सर्वाधिक योगदान कव्वालों के एक बड़े हिस्से का है, जिनके माध्यम से लोकप्रियता बड़ी है। जिस प्रकार स्वर एव लिपि सम्बन्धी अभावों के कारण पुराने ध्रुवपदो मे न्यूनाधिक विसगति प्राप्त होती

वर्तमान समय मे ध्रुवपद व ख्याल मे दोनो मे गायन मे उत्कृष्टता अपेक्षित समझी जाती है। ख्याल मे श्रृगाररस की प्रधानता अधिक होती है। ध्रुवपद मे जैसी गभीरता पायी जाती है वैसी ख्याल मे नहीं मिलती इसके साथ ही ख्याल म शब्द वैचित्र्य व शुद्धता की भी कमी परिलक्षित होती है। ख्याल में दो ही भाग प्राय प्रयुक्त होते हैं - स्थायी व अन्तरा। ख्याल गायको द्वारा प्राय मध्यम गतिक त्रिताल, विलम्बित त्रिताल (तिलवाडा), एकताल, झूमरा, आडा चारताल, आदि का प्रयोग बहुतायत से किया जाता है। हलांकि ख्यालों में द्रुतताल, गिटकडी आदि का भी प्रयोग उपेक्षित नहीं है।

मुहम्मदशाह रगीले के काल तक गायक गण शब्द और अर्थ के प्रति शत्रुता का भाव नहीं रखते थे, सदारग जैसे सुशिक्षित व्यक्ति महाकवि देव जैसे आचार्य के शिष्य थे। उस युग मे रहीमसेन और तानसेन (तृतीय) जैसे कलावत कवित्र गायन भी किया करते थे, शुजात खा कवित्त गाते थे तो ख्याल गायक शाह, दानियाल भी कवित्त गाते थे।[1]

ख्याल उस समय काफी प्रचलन में था तत्कालीन ख्यालिए शब्दो को समझते थे उनका सही उच्चारण करते तथा उन्हें राग व लय से सुसज्जित करने मे दक्ष थे। नवाब वाजिद अलीशाह के युग तक आते आते कलाकारों की अज्ञानता वश प्रचानपूर्ण गायन समाप्त प्राय होता गया। कहीं कहीं किसी सीमा तक ख्याल, ध्रुवपद, होरी और सरगम गायन रह गया था। यही कारण है कि कव्वालो को 'बिगडा हुआ गवैया' समझा जाने लगा। अर्थहीन तानबाजी लोक दृष्टि मे निन्द्रयाजन अथव निरर्थक ही होती है जैसा कि आज गाये जाने वाले निरर्थक ख्यालो से जनता मुंह बिचकाती नजर आती है।

शब्द और अर्थ का भली भांति समझना और फिर तदनुरूप ख्यालों का गायन करना ही श्रेयस्कर एवं जनमन सुखकर होगा।

प्रमुख ख्याल शैली के वाग्गेयकारों के कुछ नाम निम्नवत् है-

पंडित ओंकारनाथ एक महत्वपूर्ण ख्याल गायक थे। आपकी आवाज मधुर होने के साथ ही अर्थ के अनुकूल और रसानुकूल थी। एक ओर जहां अपनी आवाज के जरिये बादलो की गरज, बिजली की कड़क, रौद्र का क्रोध दिखा सकते थे तो वही दूसरी ओर कोमलता, भक्ति भाव, चंचलता, करूणादि मनोभावों को भी अभिव्यक्ति प्रदान करने मे सक्षम थे। उनके भावपूर्ण गायन से द्रवीभूत रसिक श्रोतागण अश्रु प्रवाहित करने लगते थे।

आधुनिक काल का लोकप्रिय गीत छोटा ख्याल को जन्म देने का श्रेय और खुसरो को दिया जाता है जबकि कतिपय विद्वानों की मान्यता है कि उन्होने छोटा ख्याल, कव्वाली तथा तराना तीनो का आविष्कार किया था। उस्ताद अमीर खॉ को विलम्बित ख्याल बहुत ही प्रिय था। रागों में मुल्तानी, दरबारी काहडा, शुद्ध कल्याण, आभोगी, ललित मियां मलहार, भटियार, मारवा सुघराई आदि पसंद थी।

सुप्रसिद्ध वाग्गेयकार कुमार गंधर्व का नाम भी गंभीर गायन शैली के ख्याल गायन हेतु श्रद्धा के साथ लिया जाता है। छोटे ख्याल के गायन में तो पंडित कृष्णराव जी सिद्धहस्त थे। कभी कभी वे ठुमरी भी गाया करते थे।

अल्लाकरीम खां साहब भी ख्याल गायकी मे दक्ष थे। पं0 दत्तात्रेय पलुस्कर जी ख्याल के साथ साथ भजन गायकों में अद्वितीय थे। बदायूं के निसार हुसैन खॉ का नाम भी वतमान युगीन संगीतज्ञो मे उल्लेखनीय है जो ख्याल और तराने के लिये

मशहूर थे। इनके कई रिकार्ड भी ख्याल व तराना सम्बन्धी तैयार हो चुके हैं। जैसे- 'कान्हा रे नन्दन वन'। प0 विष्णु दिगम्बर के शिष्य नारायण राव जी भी एक कुशल ख्याल गायक थे। आगरे घराने के फैयाज खां साहब तो ख्याल ध्रुपद और धमार में एक साथ पारंगत वांग्गेयकार थे। मैं ख्याल में भी ध्रुपद धमार के समान नोम तोम का आलाप करते थे बीच बीच में 'तू ही अनन्त हरि' बोला करते थे। काशी वासी बड़े रामदास ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी तथा, दादरा, कहरवा इत्यादि के लिये जाने जाते हैं। ध्रुपद व ख्याल गायको में भोलानाथ भट्ट जी भी उल्लेखनीय स्थान रखते हैं। आज की प्रतिक्षित ख्याल गायिकाओं में माणिक वर्मा का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वे बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल के बाद ठुमरी तथा भजन गाती हैं। परम्परानुसार आप विलम्बित ख्याल में लय बहुत धीमी नहीं रखती।

रराव पंडित जी ग्वालियर घराने से सम्बद्ध थे। आप ध्रुपद धमार, ख्याल तथा टप्पा गायन मे बडे निपुण कलाकार थे।

काशी निवासिनी श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी जी छोटे बड़े दोनों ही ख्यालों के गायन मे सिद्धहस्त गायिका थीं हलांकि टप्पा, ठुमरी में भी उनकी पैठ कम गहरी नहीं थी।

ग्वालियर घराने के महत्वपूर्ण स्तंभ हस्सू हद्दू खां बंधु ख्याल गायन में परम प्रवीण थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संगीत में अनेकानेक ख्याल गायकों ने अपना महत्वपूर्ण योग दिया।

ठुमरी शैली के वांग्गेयकार -

ठुमरी एक क्षुद्र गीत है जिसका प्रधान रस श्रृगार होता है। इसकी शब्द रचना अति संक्षिप्त होती है, इसे जिन ताल में गाते हैं उसे पंजाबी कहा जाता है। ठुमरी की गति ज्यादा चपल नहीं होती। जिन रागों में टप्पे होते हैं, उन्हीं में ठुमरियां भी होती है। उच्च कोटि के गायक ठुमरी नहीं गाते कुछ लोग इसे निम्नकोटि में रखते हैं। उत्तर भारतीय संगीत व्यवसायी स्त्रियां प्राय ठुमरियों का गायन करती हैं। वस्तुत: यह एक लोकप्रिय गायन रहा है। लखनऊ व बनारस तो ठुमरी गायन के लिये विख्यात है। ठुमरी में राग के शुद्ध स्वरूप पर विशेष विचार नहीं किया जाता। महाराष्ट्र में इस शैली के प्रति विशेष आकर्षण नहीं दिखायी देता। वहां राग व उसके शास्त्र की ओर अधिक ध्यान देते हैं। इसके बावजूद ठुमरी की लोकप्रियता व महत्ता संशय रहित है। गाने का ढंग अवश्य उत्तम होना चाहिए।

ठुमरी शब्द दो शब्दों ठम और री से निर्मित हुआ है। आचार्य ब्रहस्पति[1] के शब्दों में " 1945 या 1946 ई0 में हमने लखनऊ रेडियो से प्रसारित एक वार्ता में कहा था। ठुम ठुमकने का द्योतक है और री अतरंग सखी से अपने अंतर की बात कहने का। ठुमरी का विषय नायिका के अन्तर की असंख्य भाव लहरियों का चित्रण है, यही विषय 'रेख्ती' नामक फारसी काव्य का भी है, जिसकी परम्परा उर्दू काव्य में भी आयी है।" इसी उद्देश्य की सम्पूर्ति हेतु कैशिकी वृत्ति का आश्रय लेकर जब स्वर, भाषा ताल और मार्ग का प्रयोग किया जाता है, तब 'ठुमरी' नामक 'गीत' की सृस्टि होती है। 'चित्तामणि' नामक सांगीतिक ग्रन्थ मे यह भी प्रतिपादित है कि जब वादन के द्वारा यह गीत उपरंजित होता है और अभिनय के द्वारा इसे पूर्ण

---

1. संगीत चिन्तामणि पृ0 103

करक सगात बना दिया जाता है, तब ये भावनाये मूत हाकर आ जाती है जिनके द्वारा भगवान ने 'मोहिनी' रूप धारण करके योगिराज देवाधिदेव जैसे कामरिपु को मनमाना नाच नचाया था और गापियो मे जिन भावनाओ के ूर्त होने पर मायापति "लीलापुरूषोत्तम क. . या" बनकर छछिया पर छाछ पर चाते थे।[1]

ठुमरी शैली मे वस्तुत अनेक उपरागो का सम्मिलित दिखायी देता है, जो श्रृगारिक हाव भाव व चेष्टाओ से रससिक्त हो गयी, घूघट मे मुह छिपाये हुए, अधखुले घूघट वाली, प्रियतम से दृष्टि मिलते ही, लज्जा ललिता नेत्रो को झुका लेने वाली तथा भौहो को तरेरे हुए प्रियतम की ओर तिरछी चितवन से ताकती हुई नवोढ़ा का व्यक्तित्व तो एक ही है परन्तु छविया अलग अलग है। ठुमरी गायन मे विभिन्न रागोपरागो की छाया इन्ही छवियो को व्यक्त करती है। स्वरो का भावो के अनुसार विचित्रताओ से युक्त प्रयोग ठुमरी का स्वर पक्ष है। जिसके लिये काफी समझदारी व विवेकशीलता अपेक्षित है।

ठुमरी की भाषा उसके विषय एव उसकी प्रकृति के अनुरूप प्रदेश की भाषाओ मे से है, ठुमरी जहा उपजी है, ठुमरी मे शब्द और स्वर परस्पर पूरक है। नयी नयी छविया एक ही शब्द को नव स्वर प्रदान करती है। लय मे ही ठुमरी प्रतिष्ठित है, जो बोलबाट की ठुमरियों मे थिरकती और मचलती है। बोल बनाव की ठुमरी की लय के विषय मे मौन ही श्रेष्ठ है इसके लिये श्रोताओ का स्वय ही ताल देकर उसकी परीक्षा करनी चाहिए ऐसा आचार्य बृहस्पति महोदय का विचार है। आपने ठुमरी को ध्रुव मानने या बताने वालो पर व्यग किया है। उसे हास्यास्पद बताया है।

---

1 आचाय ब्रहस्पति - सं0चि0म0 पृष्ठ 105

कला के माध्यम से जब अनुराग, हास शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय इत्यादि सनातन भावों की अभिव्यक्ति होती है जो मानव मात्र के मन मे स्थित है, तज कला श्रोता सवग के अन्तस का स्पर्श करती हुई उसके हृदय के सारे तारो को सकृत कर देती है। फलत· कुछ क्षण के लिये तो वह एक दूसरे ही लोक मे विचरण करने लग जाता है। स्वर लय ताल, मार्ग, वादन और अभिनय इस तन्मयता की प्राप्ति के साधन है और ही इसकी अनुभूति है। ठुमरी गा· के सम्बन्ध मे भी यही तथ्य लागू हो.. है। श्रद्धेय आचार्य ब्रहस्पति के शब्दों में ठुमरी की एक प्रकृति है। वह 'विरहिन' भी है और 'मदभरी' सुहागिन' भी उसे सयोग मे वियोग की आशका है। वियोग मे उसे सयोग की स्मृतिया बेचैन बनाती हैं। इसलिये छूक और टेर से वह शून्य कभी नहीं है। तीस न होने पर भी वह टीस का अभिनय करती है और जब उसमे सचमुच टीस होती है, तब सुनने वालो की आखो से गगा-जमुना बहती है। दाम्पत्य भावनायें सम्पूर्ण जीवन नहीं है, परन्तु जीवन का आधार अवश्य है। ठुमरी का क्षेत्र अपना है, निजी है। सब कुछ स्वय मे समेट लेने का दावा ठुमरी को नहीं है।

इस प्रकार उस विवेचन से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि ठुमरी का गायन घृणित कदापि नही है, हा इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि ठुमरी को उत्तम रीति व ढग से गायन का माध्यम बनाया जाय। ठुमरी शैली के वाग्गेयकार भी प्राय वही है, जो ख्याल, ध्रुपद धमार, इत्यादि के पडित हैं, तथापि कतिपय ऐसे भी कलाकार है जिन्होने ठुमरी गायन को लोकप्रिय बनाया। उदाहरणार्थ पडित ओकार नाथ भी ख्याल गायक होते हुए भी ध्रुपद व ठुमरी का प्रदशन सफलता पूर्वक करते थे। हा यह अवश्य है कि उन्होने ठुमरी की श्रृगार की ओर उन्मुख किया। कृष्ण राव शकर

जी कभी कभी ठुमरी भी गाते थे। उस्ताद बडे गुलाम अली खा तो पजाब अग की ठुमरी मे बडे ही सिद्धहस्त थे। पेचीदी हरकते, दानेदान ताने, कठिन से कठिन सरगमी से मानो वे खेल रहे हो।

ठुमरी का सरल व लोकप्रिय बनाने मे सर्वाधिक योगदान अब्दुलकरीम खा साहब का है जिनके खद् प्रयत्नो के फलस्वरूप अब लगभग सभी गायक ठुमरी गाना पसद करने लगे हैं। कभी कभी तो देखा गया है कि स्वयं जनता की ओर से ठुमरी की पुकार हो जाती है। आप स्वय ठुमरी गाने मे परम प्रवीण थे। ठुमरी के कुछ रिकार्ड जो प्राय आकाशवाणी से प्रसारित हुआ करते हैं, वास्तव बडे ही मधुर व आकर्षक हुआ करते हैं। आपकी गायी हुई 'मत जइयों राधे जमुना के तीर' तथा 'पिया बिन आवत नाही चैन' ठुमरिया अतीव प्रसिद्ध है। तार सप्तक मे आपकी आवाज बड़ी सरलता से तथा सजक रूप जाती थी सुप्रसिद्ध सगीतज्ञा गिरिजा देवी जितनी ख्याल गायन मे निपुण हैं उतनी ही ठुमरी मे भी। ठुमरी का एक घराना बनारस के ही नाम से प्रसिद्ध है। आपका गायन अत्यन्त भावपूण होता है जिसकी पराकाष्ठा ठुमरी या अन्य लोकगीतो के गायन देखी जा सकती है।

फैयाज खां साहब बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। अत ख्याल व ध्रुपद इत्यादि के साथ ही आपने ठुमरी को भी गान का विषय बनाया था। वे मोटी आवाज से ठुमरी के प्रत्येक अग को इतनी सुन्दरता से पेश किया करते थे कि आश्चर्य होता था। उनकी गायी ठुमरी का रिकार्ड 'बाजूबन्द खुल खुल जाय" बड़ा ही प्रसिद्ध है।

बड़े रामदास जी भी ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी तथा इत्यादि गाते थे। माणिक वर्मा जी भी ख्याल के बाद ठुमरी और भजन गाते हैं। वाराणसी का ही रसूलन बाई ख्याल व ारी का गायन बडी ही तन्मयता से किया करती थीं। ठुमरी के सम्बन्ध

प्रसिद्ध वाग्गेयकार विनायक राव पटवधन जी का विचार था कि शास्त्रीय सगीत द्वारा फिल्म सगीत का प्रचार दबाने के लिये ठुमरी बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है। सिद्धेश्वरी देवी जहां एक ओर ख्याल गायन मे दक्ष थीं वहीं उन्होने ठुमरी व टप्पा को भी अपने गायन का क्षेत्र बनाया था। किराना घराने की प्रसिद्ध संगीतज्ञा हीराबाई बडोदेकर छोटे बडे ख्याल के बाद ठुमरी भी गाती थीं। आपकी ठुमरियो मे 'पटदीप' राग मे निबद्ध 'पिया नहीं आये, तथा भरवी मे निबद्ध ठुमरी ' अकेली मत जइयो राधे जमुना के तीर' बहुत ही लोकप्रिय रही है।

वाग्गेयकार रामचतुर मलिक जी यद्यपि ध्रुपद गायन के विशेषज्ञ थे किन्तु ख्याल, ठुमरी भी बड़ी कुशलता के साथ गाते थे। अली बधु सलामत नजाकत मुगल गायन प्रस्तुत करते हुए ख्याल ठुमरी, टप्पा और गजल का समान रूपेण प्रयोग करते थे।

निष्कर्ष कह सकते हैं कि ठुमरी शैली का भी सागीतिक दुनिया मे स्थान है, जो कुछ वाग्गेयकारो का एक विषय रहा है।

टप्पा शैली एवं उसके वांग्गेयकार -

टप्पा हिन्दी शब्द माना गया है, ख्याल व ध्रुवपद की अपेक्षा टप्पा अधिक संक्षिप्त होताह है, अर्थाथ इसके गीतो में शब्दाधिक्य नहीं होता है। टप्पा शैली में स्थायी व अन्तरा दो ही भाग या तुक होते हैं। इसमें भी वे ही ताले प्रयोग में लायी जाती हैं जिनका प्रयोग ख्याल गायको द्वारा ख्याल गायन मे होता है। टप्पे की प्रकृति ध्रुत मानी गयी है जिसमे श्रृगारिकता सर्वत्र विद्यमान रहती है। सभी रागो मे टप्पा नहीं पाया जाता । टप्पे के राग अधिकतर काफी, झिझोटी, पीलू, बरवा, झाझ, भैरवी, खमाज इत्यादि होते हैं।

जहा तक टप्पे के गायन का प्रश्न है, टप्पे का गायन सभ्य समाज मे शोरी मिया ने प्रचलित किया। टप्पे में प्राय पजाबी भाषा के शब्द होते हैं जिससे टप्पे का उत्पत्ति स्थल पजाब प्रदेश प्रतीत होता है, टप्पा गाने का ढग भी अलग होता है जो ख्याल और ध्रुवपदो के ढग से बिल्कुल अनोखा होता है। टप्पे की ताने छोटे छोटे खडो मे बनी होती है। टप्पे की गति अत्यन्त प्रबल होती है। कतिपय विद्वानों का विचार है कि प्राचीन **'बेसरा'** गीति से इस गायन की रीति निकली होगी। ध्रुपद, ख्याल व टप्पा, इन गीतो के गाने वालों के घराने पहले भिन्न भिन्न होते थे। इन्हे भिन्न भिन्न ढंगों से तैयार करना पड़ता था। गंभीरता से परिपूर्ण, परिष्कृत गीत गाने वाले को बिल्कुल क्षुद्र प्रकृति का गायन कठिन ही होगा। अथवा चपलमति से भिन्न होगा ऐसा कुछ लोगो का कहना है। आजकल तो यहां का गायक प्रत्येक शैली में गाने को प्रस्तुत रहता है, चाहे वह ध्रुवपद, ख्याल हो अथवा ठुमरी या टप्पा हो।

बनारस की सगीतज्ञो की श्रेणी में गिरिजा देवी का नाम भी महत्वपूर्ण है

जहा एक ओर आपने ठुमरी दादरा व गजरा पेश किया है वहीं टप्पा गायन भी बखूबी प्रस्तुत किया है। स्वरो के लगाव मे नासिका का अल्प अश कानो को खटकता नहीं बल्कि रोचक ही लगता है। फैयाज खा साहब के बारे मे पहले भी बताया जा चुका है कि वे ख्याल ध्रुपद धमार, ठुमरी, टप्पा, गजल, कव्वाली आदि के गायन मे सिद्धहस्त थे। एक श्रेष्ठ वाग्गेयकार फैयाज जी की ताने सुस्पष्ट, सुन्दर और तैयार रहती है उनका रागो का ज्ञान बहुत अच्छा था। वे प्रत्येक राग को पृथक पृथक रूपो मे गाकर प्रस्तुत कर सकते थे।

काशी नगरी के ही स्वनाम धन्य संगीतविद बडे रामदास जी चारो पट के गायक थे। जहां ऐसी जरूरत होती थी वहां तदनुरूप ही गायन प्रस्तुत करना उनके लिये खेल ही था। आप ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, दादरा, कहरवा, चैती, कजरी, होरी आदि सभी का प्रभावी ढग से निवाह करने मे सक्षम थे। आपकी सुरीली कणप्रिय आवाज बड़ी ऊंची थी जो जनता जनादन को आकृष्ट कर लेती थी। वाराणसी की सुप्रसिद्ध गायिका रसूलनबाई ख्याल, ठुमरी, टप्पा, और दादरा कहरवा गायन में बड़ी निपुण थीं, श्रीमती रसूलनबाई की गायकी मे टप्पा अग प्रधान था। आपका विचार था कि टप्पा शैली मे गायन से गला मज जाता है जिससे ख्याल, ठुमरी, आदि का गायन आसान हो जाता है। टप्पा सीखा हुआ व्यक्ति बिना किसी कठिनाई के ख्याल प्रस्तुत कर सकताहै। जबकि ख्याल सीखे हुए व्यक्ति को टप्पा गाने मे कठिनाई का सामना करना पड सकता है।

विद्वान संगीतज्ञ शकर राव पंडित ध्रुपद, धमार, ख्याल तथा टप्पा गायन मे अतीव निपुण थे आपका गला तीनो सप्तको मे अभ्यस्त था। उनके पास ख्याल और टप्पे का विशाल

भडार था। वे भी एक राग को अनेक प्रकार से मानते थे। लय व ताल पर उनका पूरा नियत्रण था। वाराणसी की गायिका सिद्धेश्वरी देवी जी टप्पा, ठुमरी, गायन तथा पूवी दादरा इत्यादि मे पर निष्जात थी।

इसी प्रकार टप्पा शैली के विषय मे कहा जा सकता है कि इसका भी प्रचलन सागीतिक दुनिया मे हुआ है।

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

1- वाग्गेयकारों की रचनाएँ -

भारतीय परम्परा मे सगीत का उद्गम वेदों से माना जाता है। जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि सगीत का जन्म सर्वप्रथम यज्ञादि के अवसर पर गेय मत्रों के रूप मे ही हुआ। शनै-शनै यही सगीत भारतीय जन मानस मे इतना गहरा प्रविष्ट हो गया कि साहित्य एव कला का तो कहना ही क्या वैज्ञानिक एव अभितांत्रिक रचनाओं तक का प्रणयन छन्दोबद्ध रूपेण होने लगा। अनेक सागीतिक विधाओं का विकास होता गया और इस प्रकार समय-समय पर होने वाले आचार्यों अथवा वाग्गेयकारों ने अनेकानेक श्रेष्ठ रचनाओं का प्रणयन किया और सगीत शास्त्रों की निरतर श्री वृद्धि मे सुयोग प्रदान किया।

इस सन्दर्भ मे हम यथा सुलभ वाग्गेयकारों प्रमुख (यथासभव प्राप्य) रचनाओं का परिचय प्रस्तुत कर रहे है, जो निम्नवत् है -

सगीत के प्रारंभिक आविष्कर्ता वाग्येयकारों मे सृष्टि कर्ता प्रजापिता ब्रह्मा जी उल्लेखनीय है जिनसे समस्त वैश्विक पदार्थो - प्राणियों का प्रादुर्भाव हुआ, माना जाता है तथा जिन्होंने चतुर्वेदों से सागीतिक तत्वों को लेकर नाट्यदेव की रचना की और तत्पश्चात् महामुनि भरत को दीक्षित किया। आचार्य भरत ने जिस नाट्य शास्त्र की रचना की, वह निसंदेह सागीतिक इतिहास मे सदा सर्वदा श्रद्धेय रहेगी। इस प्रकार प्राथमिक (अलौकिक) रचनाओं मे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, तथा अथर्व वेद की गणना की जा सकती है।

पौराणिक कालीन रचनाएँ है उपनिषद जिनमे सगीत का आभास मिलता है। सामगान की भरपूर प्रशसा उपनिषदो मे की गयी मिलती हो। प्रमुख उपनिषद

है - तैत्तिरीय, ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मण, इनमे सगीत का यथेष्ट दर्शन मिलता है। याज्ञवल्क्य, वर्ज, रत्नप्रदीपिका, प्रातिभा, प्रदीपकी और नागरी इत्यादि रचनाओं मे सगीत का परिचय प्राप्त होता है। यही नहीं हरिवश और मार्कण्डेय पुराण, वायु, विष्णु पुराणादि मे भी सगीत का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। कठोपनिषद मे यमराज, नचिकेता को सगीत के दिव्यानद का प्रलोभन देते है। उपनिषदों मे बताया गया है कि श्वतश सम्मिलित पितृ लोक के आनन्द से एक गान्धर्व लोक का आनद श्रेयस्कर है, जो समस्त भोगों से सम्पन्न तथा समृद्ध एकाधिपति नरेश को भी उपलब्ध नहीं हो सकता।[1]

रामायण एव महाभारत जैसे महाकाव्यों मे यत्र-तत्र प्राप्य सागीतिक स्थलों एवं उनकी सगीतात्मकता के कारण उन्हें भी इस कोटि मे रखा जा सकता है।

पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी सगीत का रूप प्राप्त हो जाता है। इस ग्रन्थ मे मन्त्रोच्चारण की विधि बतलायी गयी है। सम्राट हर्षकालीन महान संगीतज्ञ व वाग्गेय कार मतंग की प्रमुख रचना है 'वृहद्देशीय' जिसमें सबसे पहले देशी सगीत का निरूपण मिलता है।

वस्तुत मतंग कृत 'वृहद्देशी' को संगीत का प्रथम ग्रंथ माना जाता है। मतंग मुनि सगीत विद्या के प्रकाण्ड पडित थे। वृहद्देशयी में आठ अध्याय हैं, परन्तु यह ग्रन्थ खंडितावस्था मे ही प्राप्त है। 'राग' शब्द का प्रयोग मतग के वृहद्देशी की महत्वपूर्ण बात है -

राग मार्गश्च पदस्य यदोक्त भारतादिभि
निरूप्यते तदस्भामि लक्ष्य लक्षणं संयुतम्।[2]

1- वृहारण्यक उपनिषद

2- वृहद्देशी, पृष्ठ 81.

वृहद्देशीय के रागाध्याय, स्वराध्याय और प्रबन्धायाय ही प्राप्त है। महाराजा कुभा को मतग का वाद्याध्याय उपलब्ध था। उन्होंने अपने ग्रन्थ संगीतरत्न में मतंग की किन्नरी वीणा का वर्णन किया है, मार्ग सगीत के साथ ही मतग ने देशी संगीत का भी वर्णन वृहद्देशीय मे किया है।

इस ग्रन्थ के आरभ मे ही मतग ने लिखा है कि -

देशे-देशे प्रवृत्तोड सौ ध्वनिर्देशीति संज्ञित" अर्थात् भिन्न-भिन्न देशों एव स्थानों में ध्वनि प्रसारित एव प्रवृत्त होती है, इसलिए यह 'वृहद्देशीय' कहलाती है। जो अनुराग सहित गाया जाय, वही देशी कहा जाता है। यहाँ मार्ग से तात्पर्य नियमबद्ध संगीत से है। वृहद्देशीय में संगीतोपयोगी ध्वनि को देशी कहा गया है, इसके साथ ही देशी ध्वनि से रचित जन (मन) मनोरञ्जक गीत भी देशी संज्ञा से अभिहित किया गया है।

मतंग के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि देशी संगीत और मार्गी संगीत मे कोई फर्क नहीं है। उन्होंने नाद महिमा वर्णन के दौरान नृत्य का भी संकेत किया है -

न नादेन बिना गीत, न नादेन बिना स्वरा. ।

न नादेन बिना मृत्त, तस्मान्नादात्मक जगत् ।।'

नाद के पाँच प्रकार है - (1) सूक्ष्म (2) अति सूक्ष्म (3) व्यक्त (4) अव्यक्त (5) कृत्रिम।

नारदकृत नारदीय शिक्षा में भी यत्र-तत्र सांगीतिक परिचय मिलता है। इसका प्रतिपाद्य सामगान है न कि गान्धर्व। संगीत की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में सामवेद की ऋचाओं के वर्णोच्चार एवं स्वरोच्चारण के सम्बन्ध मे उपदिष्ट किया गया है। शुद्ध मत्रोच्चारण पठन-पाठन के नियमों को समझाया गया है।

'नारदीय शिक्षा' यह दो भागों मे बंटा हुआ ग्रन्थ है। प्रत्येक भाग मे आठ कणिकायें- हैं। कुल 238 श्लोक हैं। प्रथम भाग को प्रथमाष्टक एव द्वितीय को द्वितीयाष्टक कहा गया है।

नारदीय शिक्षा मे 'स्वर' ग्राम, राग एव तान आदि का विवेचन प्राचीन सगीत की परपरा का वर्णन प्राप्त होता है। इस ग्रंथ मे सामाजिक भेदभाव, बंगपशुपक्षियों के स्वर आदि सभी का सम्बन्ध सांगीतिक स्वरों से जोड़ा गया।

गीत-गोविन्द एक सुप्रसिद्ध सांगीतिक ग्रन्थ है जिसके रचयिता हैं, प्रसिद्ध कवि एवं संगीतज्ञ जयदेव। 'गीत-गोविन्द' मे प्रत्येक अष्टपदी पर राग एव ताल का निर्देश उपलब्ध है। श्रृंगार रस प्रधान इस रचना में अप्रितम नाद सौन्दर्य है। इसकी प्रशस्ति में आग्ल विद्वान 'इडविन आर्राल्स' इसे गीतों का गीत अर्थात् 'द इंडियन सांग चह सांगृस' कहा है। महाराजा कुम्भा ने 'गीत गोविन्द' की टीका भी लिखी थी।

परवर्ती प्रबन्धों पर दो रूपों में इसका प्रभाव पड़ा - (1) ध्रुपदों और वैष्णव पद साहित्य में पदशैली के रूप में और (2) गीतगोविन्द के आधार पर निर्मित 'गीत-गिरीश', संगीत गंगाधरम, कृष्णलीला, तरंगिणी आदि प्रबन्ध रचनाओं के रूप में।

इस प्रकार यशस्वी कवि जयदेव जी की रचना 'गीतगोविन्द' सागीतिक साहित्य मे सर्वथा समादृत है। जयदेव जी जहाँ एक ओर उत्कृष्ट साहित्यकार अथवा कवि थे वहीं दूसरी ओर संगीतज्ञ - वाग्गेयकार भी थे।

'संगीत-रत्नाकर' पं0 शारंगदेव की अमर रचना है। वस्तुत 13वीं तथा 14वीं शताब्दी के मध्य का यह श्रेष्ठतम सागीतिक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ 6 सौ वर्षों से अधिक भारतीय संगीत का आधार ग्रन्थ के रूप मे प्रतिष्ठित रहा है।

सगीत-रत्नाकर का समय 1210 से 1247 के मध्य माना जाता है। आधुनिक युग मे, जबकि भरत से शारंगदेव तक की विस्तृत सीमावधि मे सगीत इसके अतिरिक्त कोई भी श्रेष्ठ ग्रन्थ नहीं मिलता, इस दृष्टि से भी गांधर्व तथा उसके बाद के समय की जानकारी के लिए शारंगदेव का संगीत रत्नाकर ही मुख्य आधार भूत ग्रन्थ सिद्ध होता है। प्राय· सभी वाग्गेयकारों ने 'संगीत रत्नाकर' के श्लोकों का उद्धरण प्रस्तुत किया है।

सगीत रत्नाकर पर कहा जाता है कि सात टीकाएं लिखी गयीं जिनमे दो टीकाएँ प्राप्य हैं - (1) सिंह भूपाल की टीका (2) कल्लिनाथ की टीका। संगीत रत्नाकर में संगीत की परिभाषा शुरू में मिल जाती है -

गीतवाद्य तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।
मार्गी देशीति तद्देध तत्र मार्ग स उच्यते ।'
देशे-देशे जनानां यद्रच्च्या हृद रंजकम्।
गीतं च वादनं नृत्य देशांत्यभिधीयते ।'

अर्थात् गीत वाद्य तथा नृत्य इन तीनों को ही संगीत कहा जाता है। मार्ग और देशी भेद से सगीत के दो प्रकार होते हैं, मार्ग, जिस ब्रह्मादि देवों ने खोजा है और भारतीय मुनियों ने भगवान शंकर के समक्ष प्रस्तुत किया है। यह सगीत कल्याणदायक है, जो गीत वादन और नृत्य के साथ देश-देश में जगरूचि के अनुसार लोक का मानस-रंजन होता है, वहीं देशी है।

संगीत रत्नाकर में सात अध्याय है - स्वराध्याय, नादाध्याय, राग विवेकाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय तथा नर्तनाध्याय।

वर्तमान हिन्दुस्तानी सगीत मे अमीरखुसरो का नाम महत्वपूर्ण है, जिन्होंने सगीत को आधुनिक रूप प्रदान करने मे काफी कामयाबी हासिल की। अलाउद्दीन के दरबार मे उसका स्थान सर्वोपरि था। अमीर खुसरो ने जनरूचि के अनुकूल अनेक नवीन वाद्यों की रचना की ओर छोटा ख्याल, कव्वाली, तराना आदि का आविष्कर्ता भी माने जाते है। अमीर खुसरो ने फाराती और सगीत पर कुल 99 पुस्तके लिखी थी जिनमे 22 के लगभग उपलब्ध है।

'राग तरंगिणी' के रचयिता लोचन पडित ने इस ग्रन्थ की रचना लगभग 15वीं शताब्दी मे की थी। थाट राग के वर्गीकरण हेतु आप विश्वविख्यात है। रागतरंगिणी मे गायन के दो प्रकार बतलाये गये हैं - (1) निबद्ध गान (2) अनिबद्ध गान। तदुपरान्त इसमें श्रुति का उल्लेख हुआ है -

चतुश्चतुश्चतुरश्चैव षड्ज, मध्यम, पचम।

'रागतरंगिणी' मे विद्यापति के गीतों पर भी विवचेन हुआ है। पं० कल्लिनाथ ने 15वीं शता० के लगभग इस पर टीकाच लिखी थी।

'सगीत पारिजात' प० अहोवल जी की एक महत्वपूर्ण सागीतिक कृति है, जिसकी रचना तिथि 1650 ई० है। यह उत्तरी और दक्षिणी दोनों सगीत पद्धत्तियों का आधार ग्रन्थ माना जाता है। इसमे वीणा के तार पर बारह स्वरों का स्थान निश्चित किया गया है और प्रत्येक स्वर के तार की लम्बाई निकाली गयी है। वस्तुत: जिस तथ्य की खोज पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा 19वीं शताब्दी मे की गयी उसकी खोज पं० अहोवल जी ने 17वी शताब्दी मे ही बिना किसी उपकरण के ही कर ली थी। इस दृष्टि से निश्चय ही 'सगीतपारिजात' एक महत्वपूर्ण वाग्गेयकार की महत्वपूर्ण सागीतिक रचना है।

'चतुर्दंडिप्रकाशिका' नामक रचना के रचनाकार दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध सगीतज्ञ वाग्येयकार प0 व्यकंटमुखी जी है।

इस सागीतिक रचना मे यह सिद्ध किया गया है कि गणित के द्वारा एक मेल अथवा थाट से अधिक से अधिक 72 थाटों की रचना की जा सकती है, किन्तु प्रयोग के लिए केवल 19 मेलों को ही मान्यता दी गयी है, जिनसे पचपन रागो का उद्भव माना गया है। एक सप्तक के अन्तर्गत सात शुद्ध और पॉच विकृत स्वर रखे गये है।

अकबर कालीन हिन्दू सत सगीतज्ञ स्वामी हरिदास जी ने अनेक ध्रुपद, धमार, तराने, त्रिवट, रागमालाये, चतुरग, तथा अनेक रागों की रचना की थी। स्वामी जी की काफी रचनाएँ 'सगीत-कल्पद्रुम' मे मिलती है।

स्वामी हरिदास के श्रेष्ठतम शिष्यों मे तानसेन का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने अनेक रचनाए लिखीं। ये 'रागकल्पद्रुम' एव अन्य सगीत ग्रन्थों मे प्राप्य है।

तानसेन की तीन प्रमुख रचनाएँ उल्लेखनीय है - (1) सगीत-सार (2) रागमाला तथा (3) गणेश स्रोत।

सगीत के क्षेत्र मे प0 विष्णुनारायण भातखंडे जी के योगदान को जितना भी कहा जाय कम ही है। आपने अनेक प्राचीन सागीतिक ग्रन्थो का अन्वेषण किया। इनकी रचना 'भातखंडे' नाम से छ क्रमिक भागों मे प्रकाशित हुई। आपकी अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं - हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति (छ भाग), भातखंडे सगीत (चार भागों मे), अभिनव राग मजरी, लक्ष्य सगीत स्वर मालिका आदि।

सुप्रसिद्ध वाग्गेयकार प0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी ने एक नवीन स्वरलिपि पद्धति की रचना की थी जो उन्हीं के नाम से सम्बद्ध है। इन्होंने लगभग पचास रचनाएँ

लिखीं जिनके नाम है - सगीत बाल प्रकाश, बालबोध, राग प्रवेश, सगीत शिक्षक, राष्ट्रीय सगीत तथा महिला सगीत आदि। आपने 'सगीतामृत प्रवाह' नामक पत्रिका भी निकाली।

स्वामी हरिदास जी के शिष्यों मे बैजूबावरा का नाम भी सगीत मे उल्लेखनीय है जिनके अनेक ध्रुपद 'रागकल्पद्रुम' मे मिलत है।

प0 ओकारनाथ ठाकुर का महत्वपूर्ण ग्रथ 1938 मे प्रकाशित हुआ जिसका नाम है - सगीताञ्जलि' इसमे सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनों ही पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इसके छ भाग अब तक प्रकाशित हो चुके है। इस श्रृंखला के अतिरिक्त उन्होंने 'प्रणवभारती' नामक पुस्तक की भी रचना की। संगीताञ्जलि मे आपके स्वरचित स्वर लिपि पद्धति का अनुसरण किया है।

कुमार गधर्व ने लोकगीतों पर आधारित अनेक शास्त्रीय रागों की रचना की है, जैसे- मालवती, लगनगधार, सजारी, निदियारी, रात का मघवा, सहेली तोड़ी, राही, वीहड भैरव आदि।

ग्वालियर घराने के प्रसिद्ध सगीतज्ञ प0 कृष्णराव शकर जी की प्रमुख रचनाएँ हैं- सगीत सरगमतार, सगीत प्रवेश, संगीत आलाप संचारी आदि।

उस्ताद फैयाज खाँ साहब भी एक श्रेष्ठ रचनाकार थे, 'प्रेमप्रिया' नाम से उन्होंने रचनाएँ लिखी थीं। काशी-निवासी प0 रामदास जी भी एक श्रेष्ठ वाग्गेयकार थे जिन्होंने अनेक बंदिशों के स्वर तथा शब्दों की रचना की थी।

प्रमुख सगीतशास्त्रकार प0 रामामात्य ने 1550 ई0 मे एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी जिसे 'स्वरमेलकलानिधि' के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार मध्य भारतीय प0 हृदयनारायण जी ने संस्कृत भाषा मे 'हृदयकौतुक' और 'हृदयप्रकाश' नामक ग्रन्थ रचे। इन दोनों ग्रन्थों की उपादेयता स्वर एव श्रुति की दृष्टि से आज भी है। 'मानकौतूहल'

सगीत शास्त्र की एक अमर रचना है, जिसके रचयिता है - मानसिह तोमर। इसका अनुवाद 1973 मे फकीरूल्ला साहब ने फारसी मे किया और उसे 'सगीत दर्पण' का नाम दिया।

राजाभैया पूँछवाले की प्रमुख सागीतिक रचनाएँ है, तान मालिका भाग एक, दो, तीन (पूर्वार्द्ध एव भाग-3 उत्तरार्द्ध), सगीतोपासना, ठुमरी, तरंगिनी और ध्रुपद धमार गायन।'

संगीत साहित्य की श्री वृद्धि करने मे विनायक राव जी भी महत्वपूर्ण है जिनकी रचना 'राग विज्ञान' है। इसमे प्रचलित-अप्रचलित रागों की बंदिशें तथा सगीत शास्त्र पर प्रकाश डाला गया है।

सुप्रसिद्ध सगीतज्ञ एव शास्त्रकार अभिनवगुप्त का काल 10 शती0 ई0 माना जाता है। ये प्रत्यविज्ञा दर्शन, नाट्य, संगीत एव अलकार शास्त्र के प्रामाणिक आचार्य है आपकी अभिनवभारती महत्वपूर्ण कृति है।

2- **ध्रुपद शैली की रचनाएँ -**

प0 भावभट्ट कृत अनूपसंगीत रत्नाकर मे ध्रुपद की विधिवत व्याख्या की गयी है, जिसका उल्लेख हम पिछले अध्याय मे कर चुके है। यहाँ पर ध्रुपद शैली के कतिपय वाग्गेयकारों की रचनाओं का, जो बहुत कम ही प्राप्य है, का उल्लेख यथासभव करने का प्रयास किया गया है, जो निम्नवत् है -

'सगीतकल्पतरू' नामक ग्रन्थ मे अनेकानेक ध्रुवपद प्राप्त होते है।

नाट्यशास्त्र के 32वे अध्याय मे ध्रुवा गीतों के सम्बन्ध मे विवरण प्राप्त होता है। छन्द पद तथा वृत्त की विशिष्ट रचना ध्रुवा गीतों के निर्माण मे सहयोगी देती रही है। ध्रुवागीतों की परम्परा का क्रियात्मक रूप भरत के पूर्व संस्कृत नाटकों में पाया जाता है।

ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर ने परम्परागत प्रबन्ध गान शैली के आधार पर ही एक नवीन शैली का स्वरूप सामने रखा जो आगे चलकर ध्रुपद कहलायी। ध्रुपद के भी दो स्वरूप प्रचलित हुए। पहला - मदिरों आदि मे भक्त कवियों द्वारा गाये जाने वाले गीत के प्रकार के रूप मे - विष्णुपद कहलाये। दूसरा प्रकार भी जो राजदरबारो मे प्रचलित था - यह पद ध्रुपद कहे गये। मुगल बादशाहो ने इस गायन शैली को मान्यता दी जिसके कारण इसे मान्यता मिली।

मानसिह की प्रमुख रचना - मानकौतूहल मे ध्रुपद के विषय मे सकेत प्राप्त होता है।

तानसेन की प्रमुख रचनाएं ध्रुपद ही है जो लिखित रूप मे 'रागकल्पद्रुम' एव अन्य सगीत के ग्रन्थों मे सुलभ है। उनके लगभग 300 ध्रुपद तो ग्रन्थों में मिलते है तथा अलिखित ध्रुपद घरानो से सम्बन्धित कलखटों की कंठस्थ है उनके तीन ग्रन्थ

है - रागमाला सगीत सार तथा गणेशस्रोत। इनमे ध्रुपद का उल्लेख प्राप्त होता है। जिकलावर्तो, ढारियों, अथवा अन्य सगीत जीवियों की चली ध्रुवपदकार के रूप मे की जाती है, उनकी आजीविका का आनुवशिक साधन सगीत ही था। राज्याश्रित व्रजभाषा कवियों ने जीवन की जिन झाँकियों को अपने काव्य का विषय बनाया है, वे सभी ध्रुवपदकारों के साहित्य का भी विषय बनी है। वस्तुत ध्रुवपद रचनाकार राज्याश्रित थे तथा उनका राजकीय वातावरण से प्रभावित रहना आश्चर्यजनक नही है। पं0 विष्णुनारायण भातखंडे जी ने क्रमिक पुस्तक माला भाग 4 मे ध्रुपद की विस्तृत चर्चा की है।

शिवा जी के पिता शाह जी के सभा पडित वेद ने 'ध्रुवपदनृत्त' का उल्लेख किया है।[1] अबुलफजल ने भी 'आइनेअकबरी' मे ध्रुवपद का उल्लेख किया है।

'सगीतरत्नाकर' प्रबन्धाध्याय (पृ0 313) मे ध्रुवक के लक्षण प्रतिपादित किये गये है।

ध्रुव के विभिन्न भेदों पर कल्लिनाथ ने भी विचार किया है।

यद्यपि शास्त्रीय ध्रुवभेद कल्लिनाथ के युग मे प्रचलित थे, तथापि कामचार के कारण ऐसे प्रबन्ध भी प्रचलित हो गये थे, जिनमे ध्रुव के शास्त्रोक्त अवयव उदग्राह इत्यादि तो थे किन्तु अक्षर सस्था नियम तालविनियोग, रसविनियोग इत्यादि के विषय मे स्वतत्रता बरती गयी थी। ऐसी अवस्था मे भी उन्हे ध्रुव कहा जाता था और उसमे प्रयोज्य काव्य ध्रुवपद कहलाता था ।

1- भरतकोष, पृ0 299.

सगीत रत्नाकर मे वर्णित 'ध्रुव' नामक सालगसूड प्रबन्ध के भेदों मे है। तोमर द्वारा लिखाये हुए ग्रन्थ त्मान कुतूहल के फारसी अनुवाद 'रागदर्पण' मे ध्रुवपद का लक्षण यों किया है। रागदर्पण प्रथम अध्याय[1] मे ध्रुवपद के लक्षण प्रतिपादित किये गये है। ध्रुपद रचनाओं मे महाराज कुभी का ग्रन्थ सगीतराज उल्लेखनीय है।

रामामात्य का 'स्वरमेलकलानिधि' भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय ग्रन्थ है। विष्णुपदों मे ताल की दृष्टि हरिदास जी की रचनाओं को 'ध्रुपद' कहा गया है। वस्तुत आगरा, ग्वालियर एव आसपास के प्रदेशों की भाषा में गाये जाने वाले गीत ध्रुवपद कहे जाते थे।

चतुर्दण्ड प्रकाशिका से किचित प्रकाश पडता है।

मुहम्मदशा रगीले की मृत्यु के बाद अहमदशाह गद्दी पर बैठा 'सुरभावन' तथा 'आलम' उसके आश्रित ध्रुवपदकार थे। आलमगीर द्वितीय के प्रशसा मे अदारग में कतिपय ध्रुवपदों की रचना की थी।

1797 ई0 मे नादिरातिशाही नामक गेय काव्य सग्रह की रचना की गयी जिसमें प्रत्येक पद के ऊपर राग और ताल का नाम है। ये फारसी तथा देवनागरी दोनों लिपियों मे हैं। प्रत्येक रचना किसी उत्सव या पर्व से सम्बद्ध है। 'सुरभावन' की मुद्रा से अकित कुछ ध्रुवपदों मे शाहआलम की चर्चा है। मुहम्मदशाह रगीले तथा उसके कलाकारों को देव जैसे समर्थ आचार्य, महाकवि एव सगीतज्ञ को दीर्घकालीन सानिध्य मिला था। प्रसिद्ध वीणावादक, ध्रुवपदकार, ख्याल प्रणेता नेमत खाँ 'सदारग' को भी महाकवि देव के चरणों मे साहित्य व सागीतिक साधना का सुअवसर मिला था।

1- रागदर्पण प्र0अ0 रामपुर प्रति।

बख्शर इत्यादि दरबारी गायक से सवर्ग से सम्बन्धित थे जिसे आर्थिक विवशता वश मुस्लिम प्रभाव मे आना पड़ा था। विभिन्न रागों को मानसिंह ने ध्रुवपद और होरी जैसे प्रबन्ध दिये। ध्रुवपदों मे देवताओं और महापुरूषों की स्तुतियाँ थीं। नायिका-भेद के आधार पर कुछ श्रृगारमय चित्र थे जिनमे जनता की वास्तविक जीवन की झाकियाँ भी मिल सकती थीं। होरिया मधुर थी और इनका विषय था कृष्णलीला ध्रुवपद और होरी ने काफी लोप्रियता हासिल की।

अबुलफजल ने ध्रुवपद पद्धति को उस समय की ऐसी गानपद्धति कहा है, जो जनता के प्रत्येक वर्ग को प्रिय लगती थी।

बख्श के ध्रुवपद हमारे समक्ष तो नहीं है परन्तु अबुलफजल ने ध्रुपद का जो लक्षण बतलाया है उससे मालूम होता है कि ताल और छद की सामजस्य भी ध्रुवपद पद्धति मे था। कवित्त और सवैया जैसे छद बारह मात्रा के तालों मे बधे हुए मिलते है जिनका चौताले से कोई सामजस्य नहीं है।

इब्राहीम अली आदिल शाह (द्वितीय) ने 'नवरस पुर' नामक एक नवीन नगर बसाया था। 'किताबे नवरस' नामक ग्रथ मे उसके द्वारा विरचित ध्रुवपद संगृहीत है।

इसी प्रकार 'शाहजहाँ' की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद खुशहाल की कृति हे। (शाहजहाँ काल) ऐसा भी उल्लेख प्राप्त होता है कि शाहजहाँ ने एक सहस्रध्रुव पदों का सग्रह कराया और उस सग्रह का नाम 'सहस्र रस' रखा।[1]

बादशाह होने के दस वर्ष बाद तक औरगजेब सगीत का आनद लेता रहा। आलमगीर की (औरगजेब) की मुद्रा से अकित अनेक ध्रुवपद प्राप्त होते है।

1- सगीत चितामनि (प्र0ख0) 353.

आजम भी ध्रुवपदकारों और गायकों का आश्रयदाता था। 'आजम' की मुद्रा मे अकित अनेक ध्रुवपद मिलते है।[1]

औरगजेब के द्वितीय पुत्र मुअज्जम बहादुर शाह की प्रशसा मे अनेक ध्रुवपद मिलते है।

सदारग, अदारग, इछाबरस आदि ध्रुवपदकारों की रचनाए यद्यपि आज पर्याप्त सीमा तक विकृत हो गई है, तथापि इनके माध्यम मुहम्मदशाह रंगीले का नाम स्मरणीय है।[2]

सुरभावन और आलम, अहमशाह के आश्रित ध्रुवपदकार थे। शाहआलम जिसे फारसी-उर्दू कविता मे 'आफताब' एव हिन्दी मे शाहआलम के नाम से जाना जाता था। 1797 ई0 में 'नादिरादिशाही' नामक गेयकाव्य सग्रह की रचना उसने की थी। प्रत्येक के ऊपर राग और ताल के नाम अंकित है और प्रत्येक पद फारसी व देवनागरी दोनों ही लिपियों मे है जिनका सम्बन्ध किसी भी उत्सव या पर्व से है। 'सुरभावन' की मुद्रा से अकित कुछ ध्रुवपदों मे शाहआलम का उल्लेख प्राप्त होता है।

क्रमिक प्रस्तुक मालिका मे 'सादत' की मुद्रा से अकित रचनाएँ छम्मन साहब की है। उनकी ध्रुवपद शैली मे अनेक रचनाए है यथा-

जौं जौं मारतंक चद्र सोहै आसमान नाँहि
जौं जौं सेस-सीस भुव अचल बनी है,
जौं जौ गग-जमुन की धार धारामडल मे,
जौं जौं कयलास मे कुवरे सो धरी रहे ।

1- मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ0 - 77.

2- सगीत चिन्तामणि (प्रथम खण्ड) पृ0 357

जौं जौं छीरसागर उजागर जहाग बीच

जौं जौं विष्णु चक्र, असुरन पर गनी रहै।

'सादत' के प्रभु नवाव रसिंक बहादुर जू

तौं लौं जग राबरी सुकीरवि बनी रहै।

'विहाग की उक्त पकित्याँ ध्रुवपद शैली मे हैं।

छम्मन साहब की ऐसी कृतियाँ प्राप्त होती है।

अकबर ने अपने कलाकारों की मदद से 'राग सागर' नामक किसी ग्रन्थ की रचना कराई थी। फकीरउल्ला की दृष्टि मे 'राग सागर' और मानसिंह तोमर द्वारा लिखाये गये 'मानकुलूहल' मे काफी अन्तर है।

जहागीर और शाहजहा के युग मे ध्रुवपद की अनेक पुस्तक रचनाएँ प्राप्त होती है। शाहजहाँ ने कलावत लाल खा और जगन्नाथ कविराय नामक ध्रुवपद-रचनाकार और गायक को चाँदी से तुलवाया था। इसीप्रकार औरगजेब विषयक ध्रुवपदों के साक्ष्य भी प्राप्त हो जाते है। जैसे कि राजसिहासन पर बिराजमान औरंगजेब, उसकी वर्षगाठ, उसके गुणों की प्रशसा इत्यादि विषयों पर अनेक ध्रुवपद मिलते है, इनमे से कुछ ध्रुव पद नायिका भेद से सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ एक ऐसे ही ध्रुवपद में जिसकी रचना या तो मगलामुखियों द्वारा की गयी है या फिर किसी उस्ताद द्वारा। बसत के अवसर पर गाया गया एक ध्रुवपद, जिसमे मगलामुखियों का कथन है - शाह औरगजेब तुम हमारे साथ असख्य वर्षो तक धमारी खेलते रहो।'6

मुहम्मदशाह रगीले के दरबार मे सदारग ध्रुवपद गायक का उल्लेखनीय स्थान था।

इस प्रकार निष्कर्षित होता है कि 15-16वीं शताब्दी मे प्रादुर्भूत ध्रुवपद शैली अपने विषय तथा सरलता के कारण काफी लोकप्रिय हुई।

अकबर के दरबार मे ध्रुवप का बोलबाला रहा और खुसरो पद्धति भी बहुचर्चित रही।

ध्रुवपद गायकों के पास मध्य युगीन कला के कतिपय ध्वंसावशेष बाद मे भी बरकरार रहे। स्तर मे गिरावट होते हुए भी उनके पास बंदिशें, आनुवशिक ताने तथा रागों का अपेक्षाकृत शुद्ध रूप था।

3- **ख्याल शैली की रचनाएँ -**

'ख्याल अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ 'ध्यान' होता है। भारतीय भाषाओं मे भारतीय रागों के माध्यम से देवी-देवताओं के ध्यान गाये जाते थे। मुलसमान सुफी सगीत पसद करते थै। उन्होंने भारतीय भाषाओं मे 'अल्लाह, मुहम्मद और पीरों का ध्यान करना आरभ कर दिया, भाषा और राग भारतीय रहे। 'ध्यान' का पर्याय ख्याल था अर्थात् ख्याल शब्द का सम्बन्ध विषय से था, गान शैली से नहीं'।[1]

'ख्याल' गायकी मध्यकाल से प्रचलन मे आयी। इससे सम्बन्धित वाग्गेयकारों की रचनाएँ प्राय यत्र-तत्र मिलती है।

हुसैनशाह शर्की द्वारा ख्याल का आविष्कार किया गया ऐसा माना जाता है। मुहम्मदशाह रगीले ने शर्की द्वारा आविष्कृत ख्याल का पुनरूत्थान किया था।

शाह बुरहानुद्दीन जानम (16वीं शता0) जैसे प्रसिद्ध सूफियों की ऐसी रचनायें 'ख्याल' कही गयी है, जिनमे 'प्रेम की पीर' का चित्रण है।[2] पीर, पैगम्बर की प्रार्थना या ध्यान से मुक्त रचनाएँ, गजल की भाँति छन्दोबद्ध नहीं होती थीं, इसीलिए 'गजल' कव्वाली और ख्याल का गायन एक ही वर्ग का कार्य था। आचार्य वृहस्पति के शब्दों मे एक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि कव्वालों ने 'ख्याल' के द्वारा 'ध्रुवपद' का जवाब दिया था।"

करमइमाम का कथन है कि धुरू, दोहा, माण, छद, प्रबंध और कवित्त के स्थान पर ख्याल, कौल, कलवान, नक्श, गुल और तराना का आविष्कार किया गया।

1- सगीत चिन्तामणि, पृ0 230

2- मुसलमान और भारतीय सगीत, पृ0 - 112

खुसरो के खयाल मे चार मिसरे होते थे। कौल और कलवान की भाषा अरबी, नक्श गुल और तराने की भाषा फारसी तथा खयाल की भाषा हिदी थी।

पन्द्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे जौनपुर के सुल्तान हुसैनशाह शर्की ने खयाल का आविष्कार करके प्रचार के लिए अपने समस्त साधनों का प्रयोग किया और बहुसख्य रागो व गीतों की उद्भावनाये कीं।

13वीं और 14वीं शताब्दी मे अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल मे सगीत का पुन उत्कर्ष हुआ। इस महत्वाकाक्षी शासक ने सागीतिक प्रचार-प्रसार मे प्रभूत योग दिया। इसके दरबारी अमीर खुसरो ने सगीत क्षेत्र मे तहलमा मचा दिया उसने सर्वप्रथम कव्वाली रीति को अपनाया खुसरों द्वारा भारतीय सगीत को प्रदत्त अमूल्य निधियाँ है-

(1) गायन शैलिया - ख्याल, तराना, चतुरग, त्रिजट आदि।

(2) ताल - झूमरा, सूल, आडा, चारताल आदि।

(3) वाद्य - तबला, सितार आदि।

शारगदेव कृत 'सगीत रत्नाकर' मे सागीतिक विषयों का विस्तृत विवेचन है। 'सगीत रत्नाकर' पर उपलब्ध दो टीकाएँ है - एक सिह भूपाल की टीका और दूसरी कल्लिनाथ की।

ख्याल के आविष्कर्ता हुसेनशाह शर्की सूबेदार के पत्र से लेकर मुगल सम्राटों तक ने 'रत्नाकर' का नाम बडे ही आदर के साथ लिया है। अनेक रचनाओं मे 'रत्नाकर' एवं उसके विषय की चर्चा की गयी है। इतना ही नहीं मुगल सम्राटों को 'रत्नाकर' पर विचार करने वाला और उसका मर्मज्ञ बताया गया है। तानसेन से लेकर सदारंग और अदारंग तक के ऐसे ध्रुवपदों की प्राप्ति रत्नाकर' की उपादेयता व प्रासंगिकता को सिद्ध करती है।

लोदी काल मे कव्वाली, गजल इत्यादि की प्रगुखता के साथ ही 'ख्याल' का भी खूब प्रचलन होने लगा था। इस काल मे अनेक रचनाएँ लिखी गयीं। मुगलशासक बाबर सगीत प्रेमी सम्राट था जिसके समय मे ख्याल व कव्वाली इत्यादि का प्रचलन हुआ। इस सन्दर्भ मे यह कहना समीचीन होगा कि श्रृगारिक रचनाएँ तो इस काल मे की गयीं परन्तु इसके साथ ही साथ भारतीय सगीत के प्रचीन स्वरूप को भी अपनाया गया, उसकी अवहेलना नहीं की गयी। सामान्यतया सागीतिक समारोहों का आयोजन होता रहता था।

इसी समय जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह शर्की (1458-1499) द्वारा 'खाल गायिकी' तथा अन्य नवीन रागों की रचना की गयी जिनमे जौनपुरी, तोडी, सिन्धु, भैरवी, रसूल तोडी, श्याम, सिन्दूरी इत्यादि उल्लेखनीय है।

इस सन्दर्भ मे कतिपय विद्वानों का विचार है कि हुसैन ने ख्याल का आविष्कार नहीं किया, बल्कि ख्याल के समान गाना समाज मे पूर्व प्रचलित था। उन्होंने तो केवल उस ख्याल गायिकी को पसन्द किया और गायकों को प्रोत्साहन दिया। इसके परिणामस्वरूप ख्याल गायन का प्रभूतत· प्रचार-प्रसार होता गया।

वस्तुत· भारतीय मध्यकालीन इतिहास पर गौर किया जाय तो ज्ञात होता है कि इस समय सगीत के द्विविध रूप विकसित हो रहे थे। एक ओर चैतन्य महाप्रभु जैसे अनन्य भक्त सतों द्वारा भजन-कीर्तन तो दूसरी ओर मुस्लिम संगीतज्ञों द्वारा ख्याल और कव्वालियों की रचना एव उनका गायन। इस समय अनेक सागीतिक शास्त्रीय रचनाएँ लिखी गयीं।

इसी समय 1550 ई0 के लगभग 'स्वरमेल कलानिधि' नामक प्रसिद्ध सागीतिक ग्रथ की रचना हुई जिसके रचयिता थे रामामात्य।

मुगल शासक सम्राट अकबर के दरबार मे मेल-पद्धति की व्याख्या करने वाला एक ग्रन्थ 'राग सागर' की रचना की गयी जिसमे अनेक राग-रागिनियों के ध्यान (ख्याल) भी दिये हुए है। वस्तुत अकबर का काल सागीतिक दृष्टि से भी स्वर्णिम युग का प्रतिनिधित्व करता है जिसमे संगीत की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ सुचाय ढग से विकसित हुई। उसके दरबार मे 36 सगीतज्ञ थे।

मानसिह तोमर के समय जहाँ एक ओर ध्रुवद शैली और कव्वाली का गोल-बाला था वहीं दूसरी ओर इनके साथ ही ख्याल रचनाओं का भी प्रयोग प्रचुरता से किया जाने लगा बल्कि यू कहा जाय कि ध्रुवद का स्थान ख्याल ने ही ले लिया था। इस काल मे एक ऐसा वर्ग था जिसने ध्रुवद के स्थायी, अन्तरा तथा अलाप, बढ़त और कव्वाली की तान बन्न के मिश्रण से ख्याल के नवीन स्वरूप को विकसित किया था। ये गायक सन्त कवियों की रचनाओं को ख्याल का रूप देते थे और यह रचनाएँ काफी लोकप्रिय भी हो रही थीं।[1]

अकबर कालीन भक्त कवियों की पक्ति मे सूरदास जी अत्यन्त महत्वपूर्ण सगीतज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित थे। इनके समय मे 'ध्रुपद' और 'ख्याल' दोनों का प्रचार समान रूप से था। ध्रुवद प्राचीनतम शैली थी तो 'ख्याल' आधुनिकतम।

ख्याल-गायन की दृष्टि से अवलोकन करने पर सूरदास के पद बडे ही उपयुक्त प्रतीत होते है।

सूरदास के पदों में प्रयुक्त प्रमुख तालों मे उल्लेखनीय है - एकताल झ्राप ताल, चचरी, ध्रुवताल, थमार ताल आदि सूर ने अपना एक भजन मनारे करिमाधौ सौ प्रीत सुनाकर अपने सगीत ज्ञान से अकबर के। चकित कर दिया था।

1- भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ0 108

पुण्डरीक कृत 'रागमजरी' एक महत्वपूर्ण सागीतिक रचना है। उन्होने उत्तरभारत के सगीत परिष्कार मे महत्वपूर्ण योगदान दिया था। जहाँगीर के समय मे भी अनेक ख्याल रचनाएँ प्रयुक्त की गयीं। उसके दरबार मे विलास खाँ, छत्तर खाँ, खुर्रमदाद, मक्खू, परवेज दाद जैसे प्रसिद्ध गवैये मौजूद थे। जो विविध शैलियों में अपना गायन प्रस्तुत करते थे। 1625 ई0 के लगभग रचित प0 दामोदरमिश्र की रचना 'सगीत दर्पण' भी काफी महत्वपूर्ण है। इसमें राग-रागनियों के 'ध्यान' (ख्याल) आकर्षक एव मनोरजक है।

शाहजहाँ के काल मे ध्रुपद शैली का ज्यादा प्रचार-प्रसार था। इस काल के बारे मे सकेतित होता है कि जिस प्रकार हमारा शास्त्रीय ज्ञान ध्रुवद ख्याल मे तथा मृदग वाद्य 'तबले' मे परिवर्तित हो गया था, वैसे ही 'कत्थक नृत्य' का विकास श्रृगारिक, उत्तेजक एवं आकर्षक बनाने के लिए हुआ।

'अनूपसगीतरत्नाकर' मे भाव भट्ट ने भिन्न-भिन्न रागों के सैकडों प्राचीन ध्रुपदों का भी उल्लेख किया है।

मुहम्मदशाहरगीले का सांगीतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था क्योंकि ध्रुपद, धमार के स्थान पर खयाल, ठुमरी, दादरा, कव्वाली जैसी गायन शैलियाँ तथा वीणा के स्थान पर सितार जैसे नीवनतम् ततुवाद्य का प्रचार एव विकास इस काल मे हुआ था। इसी शासक के दरबार मे अदारग और सदारग ने प्रतिष्ठा प्राप्त की जो प्रसिद्ध गायक व रचनाकार भी थे। सदारंग मुहम्मदशाह के प्रिय गायकों मे अग्रगण्य थे जिसने बादशाह को सन्तुष्ट करने के लिए हजारों ख्यालों की रचना की थी। चूँकि सम्राट को ख्याल सुनने का बहुत शौक था, अत· सदारग को पन्नाबाई और कमलाबाई जैसी सुकण्ठी महिलाओं को ख्याल की शिक्षा देनी पड़ी। यही वह समय था जब ध्रुपद का ह्रास होना शुरू हो गया था।

दरअसल सदारग ने ख्याल शैली को सुर, भाषा और लय से सजाया और सवारा था। उन्होंने ख्याल मे स्वर भाषा और लय की त्रिवेणी बहा दी। श्रेष्ठ भाषा के माध्यम से उन्होने ख्याल की रचनाओं को आकर्षक बना दिया। उस समय के समाज मे लोग ख्याल और कव्वाली सुनने को काफी महत्व देते थे, सर्वत्र रसिकता विद्यमान थी। सदारग की रचनाये साहित्यिक होती थी जिनमे रसात्मकता, भावात्मकता, नायक-नायिका भेद इत्यादि का समावेश बखूबी होता था।

सदारंग को कव्वाली परपरा की ख्याल गायिकी को एक नवीन रूप एव शैली देने का श्रेय दिया जाता है, फलत ख्याल की विषयवस्तु मे श्रृगारिक्ता झलकने लगी। ख्याल अनेक गुणों के कारण लोकप्रिय होता गया।

कव्वाल बच्चो के ख्यालो मे ताने मोतियों की माला के समान पिरोयी रहती थीं। उनकी छोटी-छोटी हरकतें अत्यन्त मोहक होती थीं, और गायक लय से खेलते थे।

सदारग के भाई खुसरो खाँ अदारंग ने भी अनेकानेक ख्यालों की रचनाये की थीं, जो आज भी खूब प्रचार मे है। यद्यपि वे स्वय ध्रुपद गायन किया करते थे। पन्नाबाई और कमालबाई ने भी अनेक रागों की रचना की थी। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ख्याल रचनाओं एव ख्याल गायिकी का इस युग मे प्रभूत मात्रा मे प्रचार-प्रसार हुआ था।

नवाब वाजिद अलीशाह एक उत्तम गायक व वाग्गेयकार थे जिन्होंने 'अख्तर' उपनाम से अनेक सादरे, ख्याल, दुभरी और गजलों की रचना की थी। जैसे प्रचलित खमाज का सादरा तुम बिसर गयी आज अपने गुनन की।" और वहार का प्रसिद्ध

ख्याल - "फूलवाले कत मैका,

गडुवा मोल ले दे रै।"

उनकी लोकप्रिय रचनाये है।

प0 विष्णुनारायण भातखण्डे जी ने 'हिन्दुस्तानी सगीत-पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसके चार भागो मे उत्तर भारत की सगीत के 45 लोकप्रिय एव प्रचलित रागो के ध्रुवद, धमार, विलम्बित एव द्रुत ख्याल तराने, सरगम तथा लक्षण गीतों को स्वरलिपि दी गयी और 1922 मे प्रकाशित किया गया।

पडित विष्णु वी0डी0 पलुस्कर जी भी एक महान वाग्गेयकार थे जिन्होंने अनेक रचनाएँ सगीत जगत को प्रदान की जैसे - सगीत बाल बोध, भारतीय सगीत लेखन पद्धति, सगीत तत्व दर्शक, 'टप्पा गायन' एव अन्य अनेक पुस्तके। उन्होने रागो मे ख्याल, ध्रुपद आदि की वदिश और भक्ति साहित्य का समावेश करके गायन प्रशिक्षण देना शुरू किया। आपके प्रमुख शिष्यो मे प0 ओंकार नाथ ठाकुर, प0 विनायकराव पटवर्धन आदि उल्लेखनीय है।

बालकृष्ण दुआ ने भी कई ख्याल रचनाए की थीं। ठाकुरनवाब अली की रचना 'मुआरिफुन्गभात' मे अनेक सगीत तत्वों रागादि का सकलन है।

प0 रामाश्रय जी ने अनेक सागीतिक ग्रन्थो की रचना की है, उन्होने अभिनव गीताजलि मे अनेक रागों का सकलन किया है। इसके साथ ही आपने ध्रुपद, धमार, ख्याल, दुभरी, टप्पा, तराना आदि हजारों बंदिशों की रचना की है।

उत्तर प्रदेश की वर्तमान दुभरी व ख्याल गायिकाओ मे डॉ0 गीता बनर्जी का महत्वपूर्ण स्थान है। आपने प0 रामप्रसाद और रामाश्रय जी से शिक्षा प्राप्त की थी। वे ख्याल, ठुमरी सभी मे निपुण थीं।

प0 ओंकारनाथ जी की प्रमुख रचनाएँ है- सगीताज्जलि, एव प्रणवभारती' जिसमे उन्होंने विभिन्न शैलियों पर प्रकाश डाला है। अमीर खॉ साहब के प्रिय विलम्बित ख्याल से सम्बन्धित रचनाएँ उल्लेखनीय है। ख्याल रचनाओ के गभीर गान प्रस्तुतीकरण हेतु कुमारगधर्व जी का नाम भी विशेष महत्व का है जिन्होने ठुमरी, भजन, लोकगीतों मे भी नैपुण्य प्रदर्शित किया था। कृष्णराव पडित की 'सगीतालाप सचारी' आदि रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। छोटे ख्याल के अतिरिक्त ठुमरी-तराना के भी आप प्रेमी थे। तानसेन ने अनेक रागो की रचना की थी जैसे- दरबारी काहडा, मियो की सारग मियो मल्हार इत्यादि। इसी प्रकार निसार हुसेन खॉ साहब के ख्याल और तराना के कई रिकार्डस तैयार ो हो चुके है। केदार राग मे निबद्ध "कान्हा रे नद नदन" का रिकार्ड तो अत्यन्त ही कलापूर्ण और लोकप्रिय है। 'फैयाज खॉ साहब ख्याल मे भी ध्रुवद धमार के सामन नोम-तोम का आलाप करते थे। बीच-बीच मे 'तू ही अनन्त हरि' बोला करते थे। इन्होंने अनेक बंदिशों की रचना की। जे जेवन्ती मे 'मोरे मदिर अब लौं नहि आये" तथा राग जोग मे 'आज मोरे घर आये' गीत की रिकार्डिग भी हो चुकी है। ललित राग मे 'तरपत हूँ जैसे जल बिन मीन" तथा नट विहाग मे 'झन झन झन पायल बाजे' के रिकार्ड्स भी काफी लोकप्रिय रहे है।

बडे रामदास जी की भी ख्याल, ध्रुपद, ठुमरी तथा टघा आदि मे रचनाएँ उल्लेखनीय रही है। शंकररावपडित ख्याल की स्थायी और अन्तरा भरने के बाद आलाप और बहलावा करते थे। इनके पास ख्याल और टप्पे का विशाल कोष था।

4- **ठुमरी शैली की रचनाएँ -**

ख्याल गायन के पश्चात् जो शैली सागीतिक दृष्टि मे उल्लखनीय है - वह ठुमरी ही है जिसके सन्दर्भ मे पिछले अध्याय मे चर्चा की गयी है। ठुमरी शैली की रचनाएँ जहाँ एक ओर प्रधानतया श्रृगारिकता, रसात्मकता से सयुक्त या सम्पृक्त रही है वही उनमे नवीनता एव आध्यात्मिकता का भी समावेशन कालातरीय वाग्येयकारो द्वारा किया गया। अनेक कलाकारो ने ठुमरी गायन शैली को लोकप्रिय बनाने स्तुत्य प्रयास किया और रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

इस सदर्भ मे पडित ओंकार नाथ जी का नाम सर्वथा उल्लेखनीय है जिन्होंने ठुमरी रचनाओं को आध्यात्मिकता का पुट दिया दूसरे शब्दों मे भजन के रूप मे प्रस्तुत करने मे कामयाब रहे।

सुप्रसिद्ध सगीतज्ञ कृष्णराव जी ने अनेक ठुमरी रचनाएँ प्रस्तुत की। उस्ताद बडे गुलाम अली खाँ साहब पेचींदी हरकतों, दानेदार तानों से युक्त ठुमरी का प्रयोग करते थे।

अब्दुलकरीम खाँ साहब ठुमरी गायन मे सिद्धहस्त कलाकार थे। आपकी गायी हुई ठुमरी-परक रचना है - मत जइयो राधे जमुना के तीर" और 'पिया बिन आवत नाहीं चैन' आदि। गिरिजादेवी जी ने भी ठुमरी गायन को विषय बनाया है। इसी प्रकार फैयाज खां साहब की ठुमरी जो बहुत ही मशहूर है - "बाजूबद खुल-खुल जाय" काफी लोकप्रिय है। बडेरामदास जी ने भी अनेक ठुमरी रचनाओं का गायन किया है। माणिकवर्मा एव सिद्धेश्वरी देवी के नाम भी ठुमरी रचनाओं के प्रसग भी उल्लेखनीय है।

सुप्रसिद्ध अदाकारा सगीतज्ञा हीराबाई बडोदेकर की ठुमरियों मे 'पटदीप' राग मे निबद्ध 'पिया नहि आये' काफी महत्वपूर्ण है, इसके साथ भैरवी मे निबद्ध 'अकेली मत जइयो राधे जमुना के तीर' भी अतीव लोकप्रिय रही है।

रामचतुर जी की भी कतिपय ठुमरी शैली की रचनाए उल्लेखनीय है।

विनायकराव पटवर्द्धन जी के 'रागविज्ञान' मे अनेक प्रचलित-अप्रचलित राग रागिनियों का वर्णन मिलता है।

रसूलन बाई प्राय पूरबी अग की ठुमरी का गायन किया करती थीं।'

मुहम्मद शाह रगीले के काल में ठुमरी का भी सर्वाधिक प्रचलन था।

घर-घर मे ठुमरी का गायन किया जाता था। जिन रागो मे टप्पे होते हैं, वही ठुमरी के लिए भी प्रयुक्त होता है। ठुमरी मे पजाबी, अक्ष, कव्वाली आदि तालें प्रयोग होती थी। लखनऊ की ओर ठुमरी का प्रचलन अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।

दरअसल भारत मे ठुमरी का गायन कोठे पर हाने के कारण कुशल एव उत्तम गायक ठुमरी गायन को अपेक्षाकृत निम्न समझा करते थे।

नवाब वाजि अली शाह ने अनेक ठुमरियों की रचना की थीं। उनकी सुप्रसिद्ध ठुमरी है - "बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाये।"

इसी प्रकार अनेक ठुमरी शैली की रचनाएँ यत्र-तत्र-सर्वत्र दृष्टिगत होती है।

5- **टप्पा शैली की रचनाएँ -**

टप्पा गायन शैली का प्रारम्भ प्राय मध्यकाल से हुआ माना जाता है। इस सम्बन्ध मे गुलामनमी शोरी का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जो पजाब के रहने वाले थे।[1] गुलामनवी एक अच्छे गायक भी थे। आजकल 'टप्पा' गायन की एक लोकमान्य शैली के रूप मे समादृत है। इनके टप्पे खमाज, झिझोटी, भैरवी, सिन्धु इत्यादि रागों मे उपलब्ध है। शोरी मियाँ जब गाते थे तो एक विलक्षण स्थिति होती थी और उस समय प्रयोग मे आने वाले तान, कपन, गिटकिरी इत्यादि अनोखे ही मालूम पडते थे।

टप्पा मे भी ख्याल शैली मे गायी जाने वाली तालो का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक काल मे टप्पा से सम्बन्धित विभिन्न रागों मे रचनाओं का गायन होता है।

बनारस घराने की सगीतज्ञा गिरजा देवी तथा शली की रचनाओ का गायन प्रस्तुत करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अवध के नवाब आसफुद्दौला के समय टप्पे को सगीत मे स्थान मिला, जबकि उससे पहले वह पंजाब का एक विशेष लोकगीत समझा जाता था।[2] फेयाज खाँ साहब भी टप्पा रचनाओ का गायन मे उपयोग किया है।

रसूलन बाई का नाम भी टप्पा शैली की रचनाओं के लिए आदर पूर्वक लिया जाता रहा है।

1- भारतीय सगीत का इतिहास, पृ0 139.

2- सगीत चिन्तामणि, पृ0 403 (प्र0खड)

बडे रामदास जी ने भी टप्पा शैली की रचनाओं को महत्व दिया था।

पडित शकरराव जी अन्यान्य गेय शैलियो के साथ ही टप्पा शैली की रचनाओं का गायन किया करते थे। उनके टप्पे का भी प्रचुर भडार विद्यमान था। बनारस की गायिका सिद्धेश्वरी देवी ने टप्पा रचनाओं को अपने गायन कला का माध्यम बनाया है।

ग्वालियर घराने की एक विशेषता है कि इसमे टप्पा अग की मुरकियाँ प्रयोग होती है।

15वीं-16वीं शत0 के काल मे **'रागचित्रमाला'** का सयोजन भी हुआ जिसमे सगीत की विभिन्न राग-रागनियों का वर्णन एव चित्रण किया गया है।

पटियाला घराने मे ख्याल के अलावा टप्पा अग की ठुमरी गायन मे पर्याप्त निपुणता गायको मे थी।

षष्टम अध्याय

1. प्राचीन वाग्गेयकार एवं उनकी रचनाएँ -

भारतीय सागीतिक इतिहास की दृष्टि से वैदिकयुग प्राचीनतम ठहरता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन वाग्गेयकार एव रचनाकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश (ओम) की सर्जना के रूप मे आर्यगण थे, जिन्होंने श्रेष्ठ, आकर्षक सगीत का प्रचार प्रसार करत हुए उसे सर्वथा लोकप्रिय बनाया।

इस युग मे दो तरह की सागीतिक रचनाओ के दर्शन होते है एक तो शास्त्रीय सगीत और दूसरी लोक सगीत जिसमे युद्ध विजय सम्बन्धी घटनाओं का गान किया जाता था। वैदिक युग मे उल्लिखित 'समन' और 'समज्जा' शब्द एक प्रकार से तत्कालीन सागीतिक समारोहों का ही रूप था। ऋग्वेद-प्राचीनतम रचना है जिसमे सगीत की त्रिविध स्वरूप सर्वत्र प्राप्त होते है, जिसके रचनाकार मत्रदृष्टा ऋषि होते थे।

यजुर्वेद मे यज्ञादि क्रियाओं के संपादन मे गाये जाने वाले मत्र - सागीतिक रचनाओं का ही एक रूप कहे जा सकते है, जिन्हे क्रमश होता, अध्र्वयु, उद्गाता तथा ब्रह्मा कहा गया है। अथर्व मे सामवेद का पूर्ण गौरव-गान किया गया है इसके साथ ही 'गाथा', 'नाराशसी', 'रैभी' आदि लौकिक गीत प्रकारों-रचनाओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

सामवेद तो पूर्णतया सगीतमय ही है जो भारतीय सगीत के विकास का प्रमुख स्रोत है। ऋचा सामगान का आधार है - ऋचि अध्यूढ साम गीयते ।"[1] वस्तुत सामगाम का सम्बन्ध वेदाध्यायी वर्ग से रहा है।

1- छादोग्य उपनिषद।

पौराणिक रचनाओ - हरिवश, मार्कण्डेय, वायु तथा विष्णुपुराण इत्यादि मे भी सगीत का वर्णन मिलता है, जिनके रचनाकार ऋषिगण थे। इसके साथ ही याज्ञ 'वल्क्य', वर्ण-रत्न प्रदीपिका, प्रातिभा 'प्रदीपकी' तथा 'नारदी' इत्यादि ग्रन्थो म भी सगीत का परिचय मिलता है। इसी प्रकार रामायण एव महाभारत जैसी मूर्धन्य रचनाओ अथवा महाकाव्यों मे भी प्राचीन कालीन सगीत वाड्मय के अन्तर्गत गणनीय है जिनके प्रणेता महर्षिद्वय बाल्मीकि एव वेदव्यास जी है।

महाभारत काल मे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अर्जुन भी महान् सगीतज्ञ थे, जिन्हे गाधर्व विशारद कहा गया है। उन्होंने विराट की पुत्री उत्तरा को नृत्य व सगीत की शिक्षा दी थी।[1]

जानपद युग मे वत्सराज 'उदयन' नामक सगीतज्ञ का उल्लेख प्राप्त होता है, जिन्होंने सगीत के प्रचार-प्रसार के लिए बहुविध प्रयत्न किया। 'भास' कवि का 'स्वप्नवासवदत्ता एक सगीतप्रधान रचना है।

पतजलि के महाभाष्य मे सगीत और वाद्य के साथ-साथ नृत्य के विषय मे भी सकेत मिलते है।

प्राचीनकाल मे हम अश्वघोष जैसे महान सगीतज्ञ अथवा वाग्गेयकार का उल्लेख कर सकते है जिन्होंने 'बुद्ध चरित' नामक महाकाव्य की रचना की थी।

सगीत के मुख्यतम पुरूष आचार्य भरत नागयुगीन वाग्गेयकार, नाट्यकार थे जिन्होंने नाट्यशास्त्र' जैसी अमर कृति की रचना की। (300 ई0)

1- गीत नृत्य विचित्र च वादित्र विविध तथा।
शिक्षयिपधाम्यह राजन् विराटस्थ पुरस्त्रिय्।"
- महाभारत

भरत कृत नाट्यशास्त्र भारतीय सगीत की अनुपम एव अद्वितीय देन है। वस्तुत यह एक सवागपूर्ण रचना है, जिसके विषय मे उल्लिखित है -

न तद्ज्ञान न तच्छ्ल्यि न सा विद्या न सा
कला।
न स योगो न तत्कर्म, नाट्येऽस्मिन यत्र
दृश्यते।।"[1]

इसके सैतीस अध्यायो मे भारतीय सस्कृति के स्वर्णिम इतिहास के तत्व निहित है।

भरत से पूर्व सगीत पर कोई प्रामाणिक रचना नहीं मिलती है। वस्तुत यह ग्रन्थ समूची भारतीय सगीत का आधार है। भारतीय इतिहास को दृष्टि मे रखते हुए यह ज्ञात होता है कि गुप्त काल मे सागीतिक रचनाओं का सम्राटों द्वारा सम्मान किया गया। स्वय समुद्र गुप्त एक कवि, सगीतज्ञ, वाद्यकला मे निपुण सम्राट था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबार मे नवरत्नो मे कालिदास का प्रमुख स्थान माना जाता था उनके द। गीतिकाव्य 'मेघदूत' और ऋतुसहार महत्वपूर्ण सागीतिक रचनाएँ है। सुप्रसिद्ध नाटकार भास के नाटक भी सगीतमयता से प्रोत है। इसी प्रकार विशाखदत्त मुद्रा राक्षस, शूद्रक (मृच्छकटिक) नाट्य रचनाये भी सगीत प्रधान है। इनमें सगीत के मूलभूत तत्वों के बारे मे जानकारी मिलती है। उस समय के ग्रन्थो से यह स्पष्ट है कि वीणा तत्युगीन महत्वपूर्ण लोकप्रिय वाद्य था।

1- भारतीय सगीत का इतिहास, पृ0 43

वीणा के विविध प्रकारों-विवची, परिवादिनी, किन्नरी आदि का उल्लेख तत्कालीन रचनाओं मे प्राप्त होता है। भरत पुत्र दत्तिल ने 'दत्तिलम' की रचना की थी, जो भारतीय सगीत की श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। दरअसल गुप्त काल सगीत प्रिय सम्राटो का स्वर्णकाल था।

वाण भट्ट ने शिवलिंग की अवटपुष्पिका पूजा प्रसग मे 'धुवागीति' के गायन का उल्लेख किया है। पचतत्र नामक प्राचीन रचनाओं में सप्तस्वर तीनग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाओं तथा छत्तीस रागों का उल्लेख भरत के मतानुरूप ही प्राप्त होता है। गुप्तयुग मे छलित, ताडव, आरभटी, नामक नृत्य प्रचलित थे।

सम्राट हर्ष का सगीत ज्ञान उच्चकोटिक था, जहाँ वह एक उच्च कवि रचनाकार व वही एक कुशल गायक भी था, इस प्रकार हम उसे प्राचीन वाग्गेयकार की श्रेणी मे परिगणित कर सकते है।

हर्ष की नाट्यरचनाओं (नागानद, प्रियदर्शिका) से ज्ञात होता है कि उसे सगीत के शास्त्रीय पक्ष, राग, रागिनियों का सम्यक ज्ञान था। वाणभट्ट[1] की कविता पूर्णत संगीतमयी हुआ करती थी, जिनके रचित गीतों को महिलाये मनोविनोदार्थ गाया करती थीं। स्वय वाणभट्ट एक श्रेष्ठ गायक भी वे। वाद्यों मे परिवादिनी, विपची, बल्लश्री ग्रीषवती इत्यादि का उल्लेख मिलता है।

हर्ष के ही काल (606-647) मे महान सगीतज्ञ, वाग्गेयकार मत्तग (6ठी शता0) हुए जिन्होने 'वृहद्देशीय' जैसे मूर्धन्य सागीतिक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ मे सर्वप्रथम देशी सगीत का निरूपण किया गया है और रागों का विस्तारश वर्णन किया

---

1 - हर्षचरित

गया है। मतग को चित्रा, किन्नरी प्रभृति वीणाओ के आविष्कार का भी श्रेय दिया गया है। वीणा पर परदे लगाने की योजना प्रथमत मत्तग ने ही की थी। उनकी रचना वृहद्देशीय मे आठ अध्याय है। जिनमे राग, स्वर और प्रबन्धाध्याय ही प्राप्त है। आज भी मतग का यह ग्रन्थ भारतीय सगीत की अनुपम निधि के रूप मे मान्य है। जाति गायन के स्थान पर 'राग गायन' का आरभ इन्हीं के समय से हुआ माना जाता है।

मतग के 'वृहद्देशीय' के अतिरिक्त सातवीं और आठवीं शताब्दियों मे नारदकृत नारदीय शिक्षा' और सगीत मकरद, विशेषत उल्लेखनीय है। सामवेद की उत्तम शिक्षा के लिए नारद ने 'नारदीय शिक्षा' नामक ग्रन्थ की रचना की 'जिसका मुख्य विषय सामगान' है। यह ग्रथ दो भागों मे विभक्त है। प्रत्येक भाग मे आठ कणिकाये है। वस्तुत सागीतिक इतिहास मे 'नारदीय शिक्षा' का महत्वपूर्ण स्थान है।

नारद का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है 'सगीतमकरन्' (7वीं शता0) जिसके प्रारम्भ मे सगीत की परिभाषा दी गयी है।[1] यह ग्रथ चार प्रकारों मे विभक्त है ⟬1⟭ प्रकार ⟬2⟭ कम्पन ⟬3⟭ जाति और ⟬4⟭ समय। सगीतमकरद मे वर्णित रागों के वर्ग 'रागरागिनी' पद्धति का आधार बने।

नाटककार भवभूति का काल राजपूतों का शासन समय था। इन्होने 'महावीर चरित' तथा 'मालतीमाधव' आदि ग्रथ लिखे थे। ये नाटक भी पूर्णतया सगीतमय थे।

दशवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के प्रमुख आचार्य सगीत एव नाट्य, अलकार शास्त्र के प्रणेता अभिनवगुप्त ने 'अभिनव भारतीय' नामक ग्रथ की रचना की थी।

1- गीत वाद्य च नृत्य च त्रय सगीतमुच्यते ।"

नवीं शता0 के लगभग 'सुधाकलश' की रचना 'सगोतोपनिषत्सार' भी उल्लेखनीय रही है।

सुप्रसिद्ध सगीतज्ञ, वाग्गेयकार जयदवे (12वीं शता0) उत्तर भारत के उल्लेखनीय कवि-गायक थे। आपकी रचना 'गीतगोविन्द' आज भी जन-जन के मन को आह्लादित करती रहती है। इस रचना मे राधा कृष्ण विषयक प्रबन्ध गीत है, जिन्हे आज भी प्रत्येक गायक ताल स्वो में आबद्ध कर गाते है। दक्षिण भारत के कतिपय देवालयों मे नृत्य के साथ इनकी अष्टपदियों का अभिनय भी किया जाता है, जिनमे ताल और लय के साथ भाव-प्रदर्शन भी होता है।

जयदेव कृत कतिपय ध्रुवद भी प्राप्त होते है। परवर्ती प्रबन्धो, इसके प्रभाव को दो रूपों मे व्याख्याति किया जाता है - (1) ध्रुपदों और वैष्णव पद-साहित्य मे पदशैली के रूप मे और (2) दूसरे गीत-गोविन्द के आधार पर रचित 'गीत गिरीश', सगीत गगा धरम, कृष्णलीला तरंगिणी, आदि प्रबन्ध रचनाओं के रूप मे। इस प्रकार गीतकार, सगीतज्ञ जयदेव एक महान वाग्गेयकार भी सिद्ध होते है। इसके साथ ही अन्य प्राचीन कालीन वाग्गेय कारों, शास्त्रकारों मे कोहल, दत्तिल, विशाखिल, शार्दूल (हस्ताभिनय) मत्तग इत्यादि भी उल्लेखनीय रहे है।

2 माध्यकालीन वाग्गेयकार एव उनकी रचनाए -

मध्यकाल का आरभ ग्यारहवीं शती के लगभग से माना जाता है। इस काल के शुरूआती दौर मे उत्तर तथा दक्षिण की सगीत-पद्धतियों मे पृथकत्व दृष्टिगत होने लगता है। भारत मे 13वीं शती0 तक मुस्लिम सत्ता सुदृढ़ रूपेण स्थापित हो गयी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तरी भारतीय सगीत पर फारसी सभ्यता, कला, सगीत इत्यादि का प्रभाव पडे बिना नहीं रह सका। जैसा कि हम देखते है पूर्वमध्यकाल तक ग्राम राग और जातियों का प्रचलन था जबकि विवेच्य काल मे राग गायन का प्रचलन होता गया। ध्रुप और ख्याल इसी समय विशेष रूपेण प्रचलित हुए।

मुसलमानों के साथ ही साथ भारत मे अनेकानेक सूफी मुस्लिम संतों का भी योगदान इस सदर्भ मे रहा है। सूफी सत सगीत को आराधना का एक प्रमुख माध्यम बनाते थे। कतिपय विद्वानों ने मुस्लिम प्रभाव की आलोचना भी की है। उनके अनुसार मुसलमान शासकों के दरबार मे भी परिस्थिति ऐसी नहीं थी कि विशुद्ध भारतीय भावनाएँ तथा भारतीय कलाये उभर सके।"[1] दरअसल इन मुस्लिम शासकों ने प्राय अपने ही सहधर्मियों का दरबार मे सगीतज्ञों के पद पर नियुक्त कर रखा था। वे प्राचीन भारतीय ग्रन्थों, रचनाओं को भलीभाँति न समझ सके फलत उनके प्रति उपेक्षित भाव ही अपनाया गया। कालान्तर मे लगभग 13वीं-14वीं शताब्दी मे जब अलाउद्दीन खिलजी का शासनकाल आरभ हुआ तो सगीत का फिर से उत्थान आरम्भ हो गया। अलाउद्दीन खिलजी स्वय एक सगीत प्रेमी सुल्तान था।

1- आचार्य वृहस्पति।

खिलजी के दरबार मे अमीर खुसरो जैसे उल्लेखनीय सगीतज्ञ की महत्वपूर्ण स्थिति थी जिसने भारतीय सगीत के क्षेत्र मे हलचल मचा दी। अमीर खुसरो को श्रेष्ठ वाग्गेयकारों की श्रेणी मे परिमाणित किया जा सकता है। अमीर ने सर्वप्रथम भारतीय सगीत मे कव्वाली पद्धति को अपनाया। अनेक प्रकार की आधुनिक रागो के प्रचलन का श्रेय भी खुसरो को दिया जाता है पछा राग 'लिलफ' साज गिरी, 'सरपरदा' इत्यादि। खुसरो द्वारा भारतीय सगीत को जो अमूल्य निधियाँ प्रदान की गयीं वे है- विभिन्न गायन शैलियों का प्रचलन प्रसार यथा - ख्याल तराना, चतुरंग, त्रिवट इत्यादि तालों के अन्तर्गत झूमरा, सूल, आडा, चारताल आदि आते है। वाद्यों मे तबला, सितार इत्यादि उ‹ ।खनीय है।

दक्षिण का सगीतज्ञ गोपाल नायक अमीर खुसरो का समकालीन था। दोनों के मध्य सागीतिक प्रतियोगिता के अनेक उदाहरण प्राप्त होते है।

मध्यकालीन दक्षिण भारतीय वाग्गेयकारों मे प0 शारगदेव का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि ।3वीं-।4वीं शताब्दी के मध्य एक महत्वपूर्ण कडी के रूप मे शारगदेव हमारे समक्ष आते हैं। 'सगीत रत्नाकर' आपकी उल्लेखनीय सागीतिक रचना है। यह महत्वपूर्ण सागीतिक कृति छ सौ वर्षो से भारतीय सगीत का मार्गदर्शन करता रहा है। गाधर्व तथा उसके परवर्ती विकास की जानकारी के लिए सगीतरत्नाकर ही एक आधार ग्रन्थ है। ऐसा माना जाता है कि 'सगीतरत्नाकर' पर प्राय सात टीकाये लिखी गयी है जिनमे सम्प्रति दो सस्कृत टीकाये प्राप्त होती हैं - एक सिह भूपाल की टीका और दूसरी कल्लिनाथ की टीका। उक्त दोनों ही विद्वानो ने 'सगीतरत्नाकर' की महत्ता को श्रद्धा के साथ स्वीकार किया है।

सगीत रत्नाकर के आरंभ मे सगीत की परिभाषा का उल्लेख किया गया है।[1]

इस ग्रन्थ से विदित होता है कि मार्ग का उपयोग देवपूजा मे होता है। देशी सगीत की तुलना मे मार्गी सगीत कहीं ज्यादा नियमबद्ध है। जहाँ एक ओर वह धार्मिक उद्देश्य से युक्त है वहीं दूसरी ओर देशी सगीत लोकरज्जनार्थ होता है।

प्राचीन सगीत मे जो स्थान नाट्यशास्त्र को मिला था वही स्थान मध्यकालीन सगीत मे 'सगीत रत्नाकर' का था। इस श्रेष्ठ ग्रथ के सात अध्याय है स्वराध्याय, नादाध्याय, रागविवेकाध्याय, प्रकीर्णाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय एव नर्तनाध्याय। ग्रन्थारंभ मे लेखक ने आत्मपरिचय कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है - मेरा वश काश्मीर का है और उसके मूलपुरूष है - वृषगण। उसी वश के भारन्कर नामक एक पुरूष काश्मीर से दक्षिण भारत मे चले आये थे। उनके पुत्र श्री सोढल राजा सिहल थे।

आचार्य शारगदेव ने भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' और मतग के वृहद्देशीय ग्रन्थो को आधार मानकर अपने उक्त महत्वपूर्ण कृति की रचना की थी। उनके काल मे जातियाँ लुप्तप्राय हो गयी थीं, उनका स्थान रागों ने ले लिया था। हुसैनशाह शर्की सूबेदार के पत्र से लेकर मुगल सम्राट पर्यन्त सभी ने 'सगीतरत्नाकर' की प्रशस्ति स्वीकारी है। तानसेन से लेकर सदारग और अदारग तक के मिलने वाले ध्रुपदों से यह सिद्ध होता है 'रत्नाकर' एक विशाल श्रेष्ठ सागीतिक रचना है।

लोदियों के काल (1414 ई0 - 1526 ई0) तक पूरे देश मे अनेक नवीन गायन शैलियाँ विकसित हुईं, कव्वाली, गजल, ख्याल, ठुमरी के साथ ही 'समूह गान' और नृत्यकला का भी प्रभूत विकास हुआ। इस काल मे अनेक सगीतज्ञ हुए और उन्होंने कई पुस्तकों का भी सृजन किया।

1- गीत वाद्य तथा नृत्य त्रय सगीतमुच्यते।" 'सगीतरत्नाकर'

इनमे लोचवन की 'रामतरंगिणी' एक महत्वपूर्ण सगीतशास्त्र है। लोचन पडित का ग्रथ 15वीं शताब्दी के आसपास लिखा गया। सर्व प्रथम इसी ग्रन्थ मे घाट राग के वर्गीकरण का स्तुत्य प्रयास किया गया। उन्होंने 'रागतरंगिणी' मे प्राचीन राग-रागिनी पद्धति के स्थान पर थाट पद्धति अपनायी गयी है। लोचन ने अपने ग्रथ मे गायन के दो रूपों का उल्लेख किया है-

(1) निबद्ध गान

(2) अनिबद्ध गान।

पूर्व ग्रन्थकारो के समान उन्होंने भी एक सप्तक मे 22 श्रुतियों को मान्यता दी है। उन्होने श्रुति-विभाजन भी सप्तस्वरों के बीच मे 'चतुश्चतुरश्चैव षड्ज, मध्यम, पचम, ही माना है। स्वर भी अन्तिम श्रुति पर प्रकट होता है। लोचन ने अपना शुद्ध थाट वर्तमान काफी थाट के समान माना है। उनके शुद्ध 'ग' और शुद्ध 'नि' हिन्दुस्तानी पद्धति के कोमल 'ग' और कोमल 'नि' है। रागतरंगिणी मे बारह थाटों का उल्लेख किया है और 75 अन्य रागों का वर्गीकरण भी इनके अन्तर्गत किया है। भैरवी, तोडी, गौरी, कर्णाट, केदार, ईमन, सारग, मेघ, घनाश्री, पूर्वी, मुखारी, और दीपक। भैरवी का वर्णन इस प्रकार है -

"शुद्धा सप्तस्वरा रम्या, वादनीया प्रयत्नत ।

तेन वादनमात्रैण, भैरवी जायते शुभा ।"

रागतरंगिणी मे विद्यापति के गीतों पर भी विवेचन किया गया है।

मुगलकाल मे सगीत का प्रचार-प्रसार बहुतायत से हुआ क्योंकि मुगल सम्राटों की सगीत के प्रति काफी रुचि थी। बाबर स्वय एक कुशल सगीतज्ञ था। वह कविता भी लिखा करता था।

उसके दरबार मे शाह कुली और गुलाम गदी श्रेष्ठ कलाकार रहते थे। उन्होने अनेक नवीन रागों की और धुनों की रचना की थी। बाबर के काल मे ख्याल, कव्वाली इत्यादि का प्रचुरश प्रयोग किया जाता था। श्रृगारिक रचनाये तो अनेक लिखी गयीं पर इसके साथ ही साथ भारतीय सगीत के प्राचीन स्वरूप को भी विकृत नहीं किया गया।[1]

प0 कल्लिनाथ की टीका भी इस युग की महत्वपूर्ण रचना है। यह टीका 'सगीतरत्नाकर' के शास्त्रीय स्वरूप को निखार देती है। जौनपुर के शर्कियों का योगदान भी उल्लेखीन है। इस युग मे एक ओर मुस्लिम शासकों द्वारा सगीतज्ञों को राज्याश्रय प्रदान किया जा रहा था। सगीत के श्रृगारिक स्वरूप के साथ ही भारतीय वैष्णव एव भक्त सगीतज्ञों की भजन कीर्तन शैली ने चार चाँद लगाया।

इस काल मे अनेक सगतज्ञों ने अनेक सुदर रचनाये भी कीं। उन्होंने संगीत के शास्त्रीय स्वरूप को उभारा।

इसी प्रसग मे 16वीं शताब्दी के लगभग कर्नाटकी सगीत का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा गया, जिसकी रचना दक्षिण के सुप्रसिद्ध वाग्गेयकार श्री रामामात्य ने की थी। रामामात्य का 'स्वरमेलकलानिधि' वस्तुत एक महत्वपूर्ण रचना कही जा सकती है। इस कृति मे अनेकानेक रागों की चर्चा की गयी है। इसमे पाँच प्रकरण प्राप्त होते है - (1) उपोद्घात - प्रकरण, (2) स्वर-प्रकरण, (3) वीणा-प्रकरण, (4) मेल-प्रकरण, (5) राग-प्रकरण। स्वर प्रकरण मे सगीतज्ञ महोदय ने सगीत को 'गधर्व' और 'गान' नामक दो भागों मे बाँटा है, उनके अनुसार, गधर्व वह सगीत है जो हमारे यहाँ अति प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। इसका उद्देश्य केवल मानव को मुक्त कराना है।

यह गान्धर्वो द्वारा गाया-बजाया जाता है।" रामामात्य जी ने बाइस श्रुति और सात शुद्ध स्वरों का वर्णन किया है। इसका आधार उन्होंने प्राचीन विभाजन को ही माना है। आपने सात शुद्ध और सात विकृत स्वरो को मान्यता दी है। रामामात्य के चौदह स्वर है - (1) शुद्ध षड्ज, (2) शुद्ध ऋषभ, (3) शुद्ध गधार या पचश्रुति ऋषभ, (4) साधारण गधार या षट्श्रुति ऋषभ, (5) अतरगंधार, (6) च्युत मध्यम गधार, (7) शुद्ध मध्यम (8) च्युत पचम मध्यम, (9) शुद्ध पचम, (10) शुद्ध धैवत, (11) शुद्ध निषाद या षट्श्रुति धैवत, (12) कौशिक निषाद या षट्श्रुति धैवत, (13) काकली निषाद और (14) च्युत षड्ज निषाद।

वीणा प्रकरण के अन्तर्गत रामामात्य जी ने शुद्ध एव विकृत स्वरों की विवेचना की है, इसके वीणा के तारों को मिलाने तथा पर्दों को बाँधने की विधि का भी उल्लेख किया है।

'मेलाप्रकरण' मे रागवर्गीकरण हेतु बीस घाटों का उल्लेख भी किया गया है यथा - मुखारी, मालव, गौल, श्री, सारग, नट, टिन्शेल, शुद्ध राम क्रिया, देशाक्षी कनल गौल, शुद्ध नाट, आहीरी, नादरामकी, शुद्ध बराली, रीति गोड, बसत भैरवी, केदार गौड, हिज्जुजी सामवराली, रेवगुप्त, सामत काभोजी।

राग प्रकरण के अन्तर्गत रामामात्य जी ने 63 रागों का वर्गीकरण किया है।

मुगल सम्राट अकबर एक महान कला एव सगीतप्रिय शासक था जिसने अपने दरबार मे अनेक सुयोग्य सगीतकारो को आश्रय प्रदान किया। अकबर के नवरत्नों मे 'तानसेन' का सर्वोपरि है, जिन्हे 'कण्ठाभरण वाणी विलास' की उपाधि से विभूषित किया गया था। अन्य कलाकारों मे उल्लेखनीय है - रामदास, शुबहान खाँ, मियाचाँद, वीरमण्डल खाँ, सरोद खाँ, मियालाला चाँद खाँ, वीणा वादक साहब खाँ इत्यादि। अनेक कलाकार

मुस्लिम सगीत मे भी पारगत थे। अकबर के दरबार मे दक्षिणी सगीतज्ञ भी सम्मान पाते थे, जिनमे पुण्डरीक विट्ठल का नाम उल्लेखनीय है।

इसी समय का रचित 'राग सागर' नामक ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है जिसमे मेलपद्धति की व्याख्या की गयी है।

अकबर के नौ-रत्न-शिरोमणि तानसेन ने भारतीय सगीत के लिए स्तुत्य योगदान किया और सगीत-सम्राट कहलाये। तानसेन की प्रमुख रचनाये ध्रुपद के रूप मे है जिनका सकलन 'रागकल्पद्रुम" जैसे ग्रन्थों मे प्राप्त होता है।

संगीत सम्राट की तीन रचनाएँ है - सगीत सार, रागमाला तथा गणेश स्रोत। तानसेन के प्रचलित राग, दरबारी कान्हड़ा, मियाँ की मल्हार, मेघ आदि अत्यन्त प्रसिद्ध है। तानसेन का कठ स्वर अत्यन्त पुष्ट और पाटदार था।"[1] सम्राट अकबर द्वारा कण्ठाभरण बाजी विलास' की उपाधि से विभूषित करना स्वाभाविक ही था। तानसेन जहाँ एक ओर मूर्च्छना पद्धति मे प्रवीण थे वहीं दूसरी ओर मुकाम पद्धति के भी ज्ञाता थे। इस प्रकार मध्यकालीन वाग्गेयकारों मे तानसेन निसंदेह अग्रगण्य ठहरते है।

16वीं शताब्दी का काल कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण रहा है। इस समय एक ओर तो शास्त्रीय सगीत का स्वरूप मुस्लिम दरबारों मे सवरा तो दूसरी ओर भक्त कवियों ने अपने काव्य या पदों से भक्तिमय सगीत का वातावरण तैयार किया, इन भक्तिधारा के कवियों मे मीरा, सूर, तुलसी, कबीर, परमानद दास तथा कुभनदास आदि उल्लेखनीय रहे है।

---

1 - 'सहसरस'

भक्त कवि सूरदास महान सगीतज्ञ के रूप मे भी प्रसिद्ध थे। उन्होंने अपने समय प्राय सभी प्रचलित राज-रागनियों को अपने काव्य मे स्थान दिया। इतना ही नहीं आपने गायन-वादन और नृत्य तीनों सागीतिक शैलियों को अपनाया। सूरदास का 'सूरसागर' तो सचमुच ही साहित्य-सगीत का अगाध सागर है। इनके समय ध्रुवद प्राचीनतम शैली थी जबकि ख्याल आधुनिकतम, इसी के साथ एक अति प्राचीन काल से चली आ रही पारस्परिक लोकसगीत की शैली भी थी। महाकवि सूरदास इन सभी शैलियो से परिचित थे और इनका उपयोग इन्होंने अपने काव्य मे किया था। ख्याल गायन की दृष्टि से इनके पद बडे अच्छे बन पडे है।"[1]

महाकवि सूर के काव्य मे अनेकानेक विविध तालों का प्रयोग हुआ है, जैसे एकताल, झपताल, चचरीताल, ध्रुवताल, धमारताल आदि विशेष है। अनेक वाद्ययन्त्रों का भी उल्लेख प्रसगत हुआ है।

'सूरसागर' मे 87 राग-रागनियों का प्रयोग किया गया है जैसे- आसावरी, सारग विलावल, कान्हरा, घनाश्री, मारम, रामकली, केदार मल्हार इत्यादि, सूरदास जी स्वयमेव एक श्रेष्ठ गायक थे, जो इन पदों को बडी तल्लीनता के साथ गाया करते थे। मुगल काल मे भारतीय सगीत के पावन सौन्दर्य की रक्षा सूरदास के पदों के माध्यम से हुई। यह कहना सर्वथा उपयुक्त ही होगा। सूरदास के पदों मे सभी आवश्यक सागीतिक तत्वों का समावेश हुआ है।

सूरदास के उपरान्त सुप्रसिद्ध भक्त कवयित्री, साध्वी मीरा की गणना भी श्रेष्ठ संगीतज्ञों मे की जाती है, जो सर्वथा तर्कसंगत ही है। मीराबाई, गायन, वादन तथा नृत्य

1- भारतीय सगीत का इतिहास - डॉ0 स्वतत्र शर्मा, पृ0 110.

मे पारगत नारी सगीतज्ञा थीं जिन्होंने सगीत साधना से भारतीयता की अलख जगायी। बाल्यावस्था ही मीरा श्रीकृष्ण अन्यन्य आराधिका हो गयी थीं।

उनका समग्र ससार ही कृष्णमय था। वस्तुत मीरा का एक ही उद्देश्य था, ध्येय था - अपने प्रियतम कृष्ण का रजन, मनरजन, वे सर्वात्मभावेन उन्हीं मे रमी थी, बसी थीं। मीरा की साधना मे साज, करताल, एकतारी, इत्यादि वाद्य तथा नृत्य के समय गायन - इनका सम्मिलन-प्राप्त होता है। मीरा की दृष्टि में 'गीत-काव्य' का प्रमुख आदर्श था - 'गीत गोविन्द' वृन्दावन के पश्चात मीराबाई ने गुजरात की ओर गमन किया जहाँ उन्होंने लोकगीतों को शास्त्रीय स्वरूप प्रदान किया। यही कारण है कि उनके गीतो मे लगभग साठ राग-रागनियों का वर्णन मिलता है। मीराबाई के अनेक राग माड जैसे राजसथान, व्रज तथा गुजरात मे प्रचलित है।

इस प्रकार मध्यकालीन सगीतकारों अथवा वाग्गेयकारों मे मीरा निसदेह भारतीय संगीताकारा की एक चमचमाती हुई, अक्षय कीर्ति सयुक्ता सितारिका सिद्ध होती है। मध्यकालीन वाग्गेयकारों, सगीतज्ञों मे हम भक्त कवि कुल चूडामणि तुलसीदास का भी उल्लेख कर सकते है। आपका विश्वाद्य महाकाव्य 'रामचरितमानस' पूण रूपेण सांगातिक रचना है। आपकी दृष्टि मे सगीत और काव्य का रूप एक ही था, दोनों को साथ लेकर ही वे विकास के पथ पर प्रवृत्त होते चले है।

वस्तुत साहित्य के साथ-साथ भारतीय संगीत के क्षेत्र मे भी तुलसीदास जी का स्थान सर्वथा समादरणीय है। तुलसी की रचनाओं में रामचरित के साथ ही कवितावली, गीतावली, श्रीकृष्णगीतावती आदि उल्लेखनीय है जिनमे अनेकानेक राग-रागनियों का सविम्नार वर्णन हुआ है। उनके पद शास्त्रीयता से भी ओत-प्रोत है। आसावरी, कान्हणा, केदार,

भैरव, बसत तथा रामकली आदि विशेष उल्लेखनीय है। इसी तरह कबीर, रैदास, दादू, मलूकदास, इत्यादि सन्तो की सार्वजनीन भाषा मे पदावलियों मे सर्वत्र सगीतमयता के दर्शन हो जाते है। सूफी गायकों, पीरों ने सगीत के माध्यम से आध्यात्मिक दर्शन को सरलता से लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया। 'कव्वाली शैली' का वास्तविक निखार इन्हीं लोगों के द्वारा हुआ।

सूरदास जी की 'सूरसारावली' जैसे ग्रन्थों मे सगीत के अनेक शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख मिलता है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द है - अग, नाद, ग्राम, 22 श्रुतियाँ, इक्कीस मूर्च्छनाएँ, सप्त-स्वर, आरोही, अवरोही इत्यादि।

पडित पुण्डरीक विट्ठल कर्नाटक पद्धति के एक स्वनामधन्य सगीतज्ञ थे जिन्होंने सद्राग चन्द्रोदय, रागमजरी, राग माला, तथा नर्तन निणय, जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचना की। उनकी रचनाएँ पूर्णत स्पष्ट है उनका सप्तक है - 'स रे रे म प ध ध सा' - जो आधुनिक दाक्षिणात्य सगीत का भी शुद्ध सप्तक है।

सद्राग चन्द्रोदय मे उन्होने 22 श्रुतियों को मान्यता दी है, ध्वनि के तीन स्थान मन्द्र, मध्य और तार माने है। उनकी यह रचना उत्तरी सगीत हेतु एक आदर्श रचना है। 'रागमाला' मे परम्परागत शैली मे भारतीय रागों का 'रागरागिनी' और पुत्र रागों मे वर्गीकरण किया है। उनके 6 राग इस प्रकार है -

शुद्ध भैरव व हिदोलों
देशिकारस्तत परम् ।
श्री राग शुरू नाटस्य
नह नारायणेव च ।।[1]

---

1 - भारतीय सगीत का इतिहास से उद्धृत, पृ0 115

1610 ई0 मे विरचित 'रागविबोध' सोमनाथ की सुप्रसिद्ध सांगीतिक रचना है। इसमे उत्तर और दक्षिण दोनों पद्धतियों के स्वर नामों का उल्लेख प्राप्त होता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से सोमनाथ जी का 'राग विबोध' उत्तरी सगीतज्ञों के लिए महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

1625 ई0 मे प0 दामोदर ने भी एक महत्वपूर्ण रचना भारतीय सगीत को प्रदान की जिसका नाम 'सगीत दर्पण' है। इसमे 'राग-रागनियों' के ध्यान अत्यन्त आकर्षक एव मनोरजक है। इस ग्रन्थ के दो अध्याय स्वर एव राग शीर्षक से है।

मुगल सम्राट शाहजहाँ के समय मे भी अनेक सगीतज्ञ व वाग्गेयकार हुए। हैदर खाँ, लाल खाँ, रामदास, भट्टाहरे, जगन्नाथ पडित इत्यादि उसके दरबारी सगीतज्ञ थे।

उत्तर भारत की सर्वाधिक लोकप्रिय महत्वपूर्ण रचना 'सगीत पारिजात' का उल्लेख करना अति आवश्यक हो जाता है, जिसके रचनाकार प0 अहोबल' जी है।

सर्वप्रथम वीणा मे स्वरस्थान निर्धारण की नवीन पद्धति अपनायी इनके द्वारा ही अपनायी गयी। अहोबल का शुद्ध घाट पर आधुनिक प्रचलित काफी थाट के समान है। सस्कृत भाषा मे रचित यह ग्रन्थ पचाध्यायों मे विभक्त है - ⟨1⟩ स्वरप्रकरण, ⟨2⟩ मूर्च्छना प्रकरण, ⟨3⟩ स्वररविस्तार प्रकरण, ⟨4⟩ गमक प्रकरण और ⟨5⟩ समय प्रकरण। रचनाकार ने नाद ब्रह्म या स्वर से ईश्वर की समानता बतायी है। अहोबल के विचार से जो व्यक्ति वीणावादन के महत्व को समझता है। श्रुति और स्वरों के जातिभेद का ज्ञाता है तथा लयताल का जानकार है, वही पुरूष बिना योगसाधना के मोक्ष पद की प्राप्ति करता है। आपकी दृष्टि मे सगीत के 'मार्गी' तथा 'देशी' दो प्रकार है। प0 अहोबल जी ने अपनी रचना मे 122 रागों का वर्णन किया है।

प0 हृदयनारायण देव की दो रचनाएँ हृदय कौतुक तथा हृदय प्रकाश भी मध्यकालीन रचनाओं के अन्तर्गत गिनी जाती है। 'हृदय कौतुक' मे शुद्ध और विकृत स्वरों के स्थान बतलाये गये है। इन्होंने 'हृदयरामा' नामक नवीन राग की भी रचना की है।

मध्ययुगीन अन्य सागीतिक रचनाओं मे 'भावभट्ट' जी के 'अनूप विलास' 'अनूपसगीत रत्नाकर' अनूपाकुश (1674-1709) भाव भट्ट का शुद्ध थाट भुखारी पुण्डरीक से मेल खाता है। रागाध्याय मे भावभट्ट ने 'सगीत रत्नाकर' के 234 रागों के नामों का उल्लेख किया है।

भावभट्ट ने अनूप सगीत रत्नाकर ने भिन्न-भिन्न रागों के सैकडों प्राचीन ध्रुपदों का भी उल्लेख किया है। अश्वाकुश मे श्रुति की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है -

स्वरूप मात्र श्रवणाभादोऽनुचर्नबिना।

श्रुतित्यिच्यते भेदास्तया द्वाविशतिर्यता ।।

इसी काल मे प्रसिद्ध सगीतज्ञ 'व्यकटमुख' पडित जी ने 'चर्तुदण्डि-प्रकाशिका' की रचना की, जिन्होंने 72 मेलकर्ता का आविष्कार भी किया है। वस्तुत दक्षिण की यह एक सुप्रसिद्ध सागीतिक रचना है। उन्होंने 'सिहरवमेल' को नवीन माना है। 'मेल - सिहरवेरागे वेकटाज्वरिकल्पते।' इस ग्रन्थ मे वर्णित 72 थाटों को भातखंडे जी ने थाट वर्गीकरण के लिए आधार माना है।

प0 श्रीनिवास जी की रचना 'राग-तत्व विवोध' भी एक महत्वपूर्ण सागीतिक कृति है।

3. **आधुनिक वाग्गेयकार तथा उनकी रचनाएं -**

मुहम्मद शाह रगीला का शासन काल सागीतिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। इसी समय ध्रुवद धमार, गायकी की जगह ख्याल ठुमरी दादरा-कव्वाली जसी नवीन विधाओं का विकास हुआ। रगीले के दरबार मे सदारग और अदारग जैसे सगीतज्ञ हुए जिन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

सदारग का पूरा नाम उस्ताद नेमत खाँ 'सदारग' था। इन्होंने बहादुरशाह का शासनाकाल भी देखा था। वस्तुत ये सगीत रसिक सम्राट थे। सदारंग ने रगीले की प्रसन्नता मे हजारों ख्यालों की रचना की और उसे सुर-भाषा तथा लय से सँवारा भी। उनकी रचनाएँ कविता व भाषा की दृष्टि से काफी प्रभाव डालने वाली थी।

सदारंग के भाई खुसरो खाँ 'अदारग' भी महत्वपूर्ण कलाकार थे जिन्होंने अनेक ख्याल रचनाएँ की थी जो आज भी चर्चित है।

ये ध्रुवर गायक और वीणा वादक भी थे। उन्होंने सितार वाद्य का आविष्कार तथा अनेक नवीन रचनाएँ भी प्रस्तुत कीं।

इसी समय पजाब निवासी गुलामनवी शोरी ने तथा शैली का आविष्कार किया ये एक अच्छे गायक भी थे।

सदारग परपरा के अधिकाश कलाकार दिल्ली केन्द्र की अस्थिरता के कारण अवध और रामपुर रियासतों मे जा बसे। इन्होंने अनेक रचनाओं के माध्यम से सगीत का विकास किया। इनमे उल्लेखनीय है - बहादुर हुसैन खाँ, अमीर खाँ, वीनकार और ध्रुवद गायक, नवाब हैदर अली खाँ, छम्मन साहब आदि। नवाब आसफउद्दौला के शासनकाल मे फारसी भाषा मे उसूलउलनगमात-उल-आसाफिया' नामक पुस्तक की रचना सगीत पर की गयी थी।

इसी सन्दर्भ मे 1852 मे लिखा गया सैय्यद आगा हसन 'अमानत' का नाटक 'इदर सभा' भी उल्लेखनीय है।

नवाब वाजिद अली शाह स्वय एक श्रेष्ठ गायक तथा वाग्गेयकार थे, जिन्होंने 'अख्तर' के नाम से अनेक सादरां, ख्यालों, ठुमरियों तथा गजलों की रचना की। उदाहरण के लिए खमाज का सादरा, सुध बिसर गयी आज, अपने गुनन की, और बहार का प्रसिद्ध ख्याल, फूल वाले, कत मैका गडुवा मोल ले दे रे।" आदि प्रसिद्ध रचनाएँ उल्लेखनीय है। राग भैरवी की प्रसिद्ध ठुमरी, बाबुल मोरा, नेहर छूटो ही जाये, भी उल्लेखनीय है।

आधुनिक युगीन वाग्गेयकारों मे मुहम्मद रजा (1883) का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने 'नगमाते-आसफी' की रचना की थी। इसी रचना मे प्रथमत शुद्ध सप्तक के रूप में विलावल का उपयोग किया गया।

'संगीतसार' नामक रचना मे राजा प्रतापसिह ने विलावल को शुद्ध सप्तक माना है और अपने काल के सगीतज्ञों का सन्दर्भ भी दिया है। इस ग्रन्थ मे 'रत्नाकर', दर्पण रागमाला, अनूप विलास तथा 'पारिजात' आदि प्रामाणिक ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है।

19वीं शताब्दी मे महत्वपूर्ण रचनाओं में 'रागकल्पद्रुम' उल्लेखनीय है, जिसके रचनाकार है - कृष्णानद व्यास मूलगीतों की शाब्दिक शुद्धता की दृष्टि से यह रचना काफी महत्व की है। इसके साथ ही सुरेन्द्र मोहन टेगोर का 'यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ म्यूजिक' भी महत्वपूर्ण है। इन्होंने 'कण्ठकौमुदी, सगीतसार, यत्रक्षेत्र दीपिका' आदि का भी प्रकाशन किया।

कृष्णधन बनर्जी का गीत सूत्रसागर (बंगला) भी उल्लेखनीय रचना है जिसमे ध्रुपद व ख्याल का सर्जन है।

19वीं शती के उत्तरार्द्ध मे अनेक महत्वपूर्ण वाग्गेयकार हुए है जिन्होंने समयानुसार सगीत का पुनरावर्तन किया। इस सन्दर्भ में प0 विष्णुनारायण भातखडे जी का नाम भारतीय सगीत के इतिहास स्वर्णांकित रहेगा, जिन्होंने सगीत कलाकारों से सम्पर्क साधा और दुष्प्राप्य रचनाओं को सकलित किया।

आपने आधुनिक सागीतिक सिद्धान्तों के शास्त्रीय विवेचन तथा क्रियात्मक सगीत की स्वर ताल बद्ध रचनाओं के एक सुविशाल सगीत स्वरूप को प्रस्तुत किया।

आपने 'स्वरमालिका' नामक तालबद्ध सरगमों से युक्त पुस्तक की रचना गुजराती मे की थी। 'हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति' मराठी मे 1909 मे प्रकाशित हुई। उनका 'लक्षण गीत सग्रह' रचना भी उल्लेखनीय है जिसमे तीन भाग है। 'अभिनव राग मञ्जरी तथा 'अभिनव ताल मजरी' उनकी मासिक पत्रिकाये भी सगीतिक उपायोगिता को दर्शाती है। पडित जी ने 'हिन्दुस्तानी सगीत पद्धति' क्रमिक पुस्तकमालिका' नामक ग्रन्थ की भी रचना की।

इस ग्रन्थ के चार भागों मे उत्तर भारत के सगीत के 45 लोकप्रिय रागों के ध्रुपद, धमार, विलम्बित एवं द्रुत ख्याल तराने, तालबद्ध सरगमे तथा लक्षणगीतों को स्वरलिपि प्रदान की गयी है। पाँचवे और छठे भाग मे 'लगभग 150 अप्रचलित रागों का संग्रह है। निसदेह पडित जी गौरवमयी अनवद्य कीर्ति कौमुदी चिरस्मरणीय रहेगी।

आधुनिक वाग्गेयकारों मे प0 विष्णुदिगम्बर पलुस्कर जी का स्थान अग्रगण्य है। ग्वालियर घराने से आप सम्बद्ध थे। इसके साथ ही ध्रुपद के भी अद्वितीय गायक थे। उनका गाया हुआ धमार 'या ब्रज मे धूम मचाई' आज भी अनुगुंजित होता रहता है। सागीतिक पथ को प्रशस्त करने हेतु उन्होंने गीतों मे श्रृगार रस के अश्लील शब्दों को बदलकर उनके स्थान पर भक्ति रसाप्लावित शब्दों को प्रधानता दी।

आपका विचार था - सगीत कला - जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। समस्त जीवन मे, ससार मे एक ही सत्य है, उसी मे आनन्द है, उसी मे मुक्ति है।" पलुस्कर की प्रमुख सागीतिक रचनाए है - सगीत बाल बोध, भारतीय सगीत लेखन पद्धति, सगीत तत्वदर्शक, अकित-अलकार, राग प्रवेश, नारदीय शिक्षा, सटीक, टप्पा गायन तथा अन्य।

प0 बालकृष्ण दुवा एक उत्कृष्ट गायक थे। अपने सतत श्रम के फलस्वरूप आप एक श्रेष्ठ गायनाचार्य सिद्ध हुए। बम्बई मे इन्होंने गायन समाज की स्थापना की तथा 'सगीत-दर्पण' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला।

राजा नवाब अली -

इन्होंने उर्दू भाषा मे सगीत की एक पुस्तक 'मुआरिफन्नगमात' की रचना की जिसके प्रथम खड मे रागों के लक्षण गीत है, द्वितीय व तृतीय खडों मे ध्रुवद व तोरी के गीतों का सकलन है। इस रचना का हिन्दी रूपान्तर भी हो चुका है।

राजा नवाब अली ने भातखंडे जी की संगीत पद्धति को ही मान्यता दी है। आपके इस ग्रन्थ मे रामपुर सदारग परम्परा मे पाये जाने वाली बहुत सी बंदिशें मिलती हैं।

1874 मे स्थापित पूना की प्रसिद्ध सगीत सस्था 'गायन समाज' से अनेक भारतीय एव विदेशी कलाकार जुडे रहते थे।

'राधागोविन्द सगीत सार' जैसी पत्रिकाओं द्वारा सगीत मे व्याप्त भ्रान्तिया दूर की गयीं।

मिस्टर डेनेसू, मिस्टर क्लीमेट के समान ही भारतीय सगीत के अनन्य प्रेमी के आपके द्वारा लिखी गयी पुस्तक हे 'एन ईंट्रोडक्सन आफ द स्टडी आफ म्यूजिकल स्केल्स'। इसके साथ ही साथ 'उत्तर भारतीय सगीत' की भी रचना की। इनके एत्प्रयासों से यूरोपीय देशों मे भारतीय सगीत की प्रतिष्ठा मे वृद्धि हुई।

प0 भोलानाथ भट्ट जी ने देश के अनेक स्थानों मे भ्रमण किया और अनेक सुदर वदिशों का सग्रह किया।

श्री कृष्णरातनजकर ने मैरिस कालेज लखनऊ मे बत्तीस वर्ष तक सेवारत रहे। इन्होंने भातखडे जी के विचारों को और रामपुर परपरा से मिली उनकी रचनाओं के सग्रह को वर्षो तक प्रचारित-प्रकाशित भी किया।

रामपुर दरबार से सम्बन्धित महान वाग्येयकार आचार्य वृहस्पति सुप्रसिद्ध सगीतशास्त्री थे। इन्होने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र और उस पर अभिनव गुहापादाचार्य की टीका, मतग टप्पा शारगदेव के ग्रन्थों का अध्ययन किया। सिद्धान्तों के प्रयोगिक रूप को स्पष्ट करने के लिए 'वृहस्पति वीणा, श्रुति दर्पण और वृहस्पति किन्नरी', का निर्माण आपके द्वारा किया गया।

वृहस्पति आचार्य जी की रचना 'भरत का सगीत सिद्धान्त' उल्लेखनीय कृति है। आपने ध्रुपद और उसके विकास पर पी0एच0डी0 का शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया।

सन् 1955 मे आचार्य वृहस्पति मे 'सगीत रत्नाकर' की स्वर विधि को स्पष्ट कर लिया था। 1966 मे आचार्य वृहस्पति का दूसरा ग्रन्थ 'संगीत चिन्तामणि" प्रकाशित हुआ।

बीसवीं शताब्दी के महान सगीतज्ञों मे प0 ओंकारनाथ ठाकुर का नाम अग्रगण्य है जिन्होंने संगीत मे अनेक नवीन प्रयोग किये। इनकी 'सगीताजलि' के छ भाग प्रकाशित हो चुके है। 'प्रणवभारती' नामक इनकी सागीतिक रचना मे शास्त्र की गुत्थियों को सुलझाया गया है।

अब्दुल करीम खाँ साहब किराना घराने से सम्बन्ध रखते है। आपने अनेक ठुमरियाँ, गायन प्रस्तुत किये।

'सुमतिमुटाटकर' एक सफल आधुनिक गायिका एव सगीत विशषज्ञा के रूप मे स्मरणीय है। आपने नागपुर विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर "भारतीय सगीत के सास्कृतिक दृष्टिकोण' पर पूर्ण निबन्ध रचना की। आपने लोकगीत, लोक संगीत तथा साहित्य का गहरा अध्ययन किया है।

भारत के सगीतज्ञों मे उस्ताद बडे गुलाम अली भी कम नहीं, जिनके गायन मे सागर सी गहराई थी। आपने अपने अनेक रिकार्डस तथा टेप प्रस्तुत किये हैं।

विनायक राव पटवर्धन जी महाराष्ट्र के श्रेष्ठ कलाकार थे, जिनका गायन सुमधुर कर्णप्रिय था। सगीत-साहित्य की वृद्धि के लिए आपने, सात भागों मे 'राग विज्ञान' की रचना की है। आपके बहुत से आकाशवाणी और व्यावसायिक रिकार्डस भी तैयार हो चुके है।

प0 रामाश्रय झा 'रामरग' जी 1954 से प्रयाग में रहकर सगीत साधना एव शिक्षण कार्य मे सर्वात्मभावेन सलग्न है। प्रयाग सगीत समिति में प्रवीण की कक्षाओं का अनुभव और फिर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सगीत विभाग मे शिक्षण प्रारम्भ किया और अध्यक्ष सगीत विभाग के पद पर वर्ष 1989 तक प्रतिष्ठित रहे। आपके अनेक शिष्य-प्रशिष्य श्रेष्ठ सागीतिक कलाकार के रूप मे संगीत की दुनिया का नाम

रोशन कर रहे है। डा0 कु0 गीता बनर्जी, श्री रोबिन चटर्जी, श्रीमती कमला बोस, श्रीमती शुभा मुदगल इत्यादि। प0 रामाश्रय जी ने सगीत शास्त्र पर अनेक श्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत की है, जिनमे 'अभिनव सगीताञ्जलि' विशेषोल्लेखनीय है। आपने ध्रुवद, धमार, ख्याल, ठुमरी, दादरा, टप्पा एव लक्षण गीत एव तराना, तिखट, चतुरंग तथा रागमाला के रागों मे लगभग 1500 बंदिशों की रचना की है। रामाश्रय जी की सभी बदिशें साहित्य व सगत की दृष्टि से अतीव उपयोगी व महत्वपूर्ण है। सम्पूर्ण उत्तर भारत आपकी रचनाएँ ख्याल है।

आपने मगल, गूजरी, वैदेही भैरव, वैरागी तोडी, भखारी, सरस्वती सारग, नट नागरी, चन्द्रमल्हार, महेन्द्र मल्हार, अजनी मल्हार, अजनी कल्याण तथा केसरी कल्याण इत्यादि नवीन रागों की भी रचना की है। आप आकाशवाणी व मच के सफल कलाकार भी है। आप अनेक विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके है।

कुल मिलाकर प0 रामाश्रय जी एक श्रेष्ठ आधुनिक वाग्गेयकार के रूप मे महत्वपूर्ण स्थान रखते है।

उत्तर प्रदेश की आधुनिक ठुमरी व ख्याल गायिकाओं मे डा0 गीता बनर्जी भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आपकी शोध ग्रन्थ "मल्हार अंग के रागों का तुलनात्मक विवेचन' महत्वपूर्ण है। आप 1958 उत्कृष्ट गायन के लिए राष्ट्रपति स्वर्ण पदक से भी सम्मानित हुई है। कृष्णराव शकर पडित जी भी एक प्रमुख वाग्गेयकार के रूप मे सागीतिक ससार मे प्रसिद्ध रहे हैं। आपने गायन, सितार, तबला तथा जलतरग पर भी पुस्तके लिखी थीं, इससे उनके गायन कला के ज्ञान के साथ ही साथ सहायक वाद्यों के ज्ञान का भी स्पष्ट परिचय प्राप्त हो जाता है। आपकी प्रमुख रचनाएँ है 'सगीतसरगमसार', 'सगीत-प्रवेश', तथा सगीत आलाप सचारी' इत्यादि।

प0 विष्णुदिगम्बर जी के सुयोग्य शिष्य बी0आर0 देवधर जी न 'राग बोध' के तीन भागों की रचना की हे, जिनमे बहुत सी अच्छी बंदिशें सकलित है।

आधुनिक सगीतज्ञो मे 'राजा भैया', 'पूछ वाले', के स्तुत्य योगदान को विस्मित कर देना सभव नहीं है, आप एक सर्वश्रेष्ठ गायक क साथ ही महत्वपूर्ण रचनाकार भी रहे, उदाहरणार्थ आपकी रचनाएँ है - तानमालिका भाग एक, दो व तीन (पूर्वार्द्ध) भाग तीन (उत्तरार्द्ध), सगीतोपासना, ठुमरी-तरंगिणी और ध्रुपद धमार गायन आदि।

प0 विष्णु नरायण भातखंडे जी के समकालीन सगीत शास्त्री स्व0 प0 फिरोज फ़ाम जी का भी उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है, जिन्होंने संगीत शास्त्र पर अनेक रचनाओ का प्रणयन किया। उन्होंने लगभग 36 पुस्तके लिखीं जिससे सारा सगीत-ससार लाभान्वित हुआ। कतिपय प्रमुख रचनाएँ है "सितारगत तोडे सग्रह, ख्याल गायिकी, दिलखुश उस्ताद गायिकी, एनसाइक्लोपीडिया, तानप्रवेश, भारतीय श्रुतिस्वर शिक्षा, रागशास्त्र, सगीत श्रुतिस्वर शिक्षा, राग-शिक्षक तथा संगीत लहरी इत्यादि।

इसी प्रकार अनेकानेक सागीतिक महाविभूतियाँ वाग्गेयकार व शास्त्रज्ञ के रूप मे सगीत के इतिहास को आज भी अपने व्यक्ति एव कृतित्व से तरोताजा किये हुए है। अनेक ऐसे भी वाग्गेयकार है, जिनकी रचनाएँ तो स्पष्टत नहीं प्राप्त होती तथापि उनके नाम अवश्यमेव उल्लेखनीय है, यथा- ए कानन, कुमार गन्धर्व, केसरबाई केरकर, बडे गुलाम अली खॉं, बडे रामदास जी, फैयाज खॉं, डागर बन्धु, अल्लादिया खॉं, गगू बाई हगल, गिरिजादेवी, निसार हुसैन खॉं, नारायणराव व्यास, मुश्ताक हुसैन खॉं, माणिकवर्मा, रसूलन बाई, विलायत हुसैन खॉं, बी0ए0 कशालकर, वासवराज राजगुरू, वामननारायण ठकार, सवाई गन्धर्व, सिद्धेश्वरी देवी इत्यादि।

4. प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक वाग्गेयकारों की रचनाओं में परस्पर भेद तथा उनकी तुलना -

जहाँ तक प्राचीन कालीन, मध्यकालीन एव आधुनिक वाग्गेयकारों की रचनाओ मे उल्लिखित अथवा वर्णित सागीतिक लक्षणों, राग-रागनियों का प्रश्न है, इस सदर्भ मे यह स्पष्ट रूपेण कहा जा सकता है कि प्रत्येक वाग्गेयकार एव उसकी रचना पर उसके समय की विभिन्न स्थितियों-परिस्थितियों का यथोचित प्रभाव पडे बिना नहीं रह सकता। सत्य ही कहा गया है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, ठीक यही बात प्राचीन, मध्य एव आधुनिक वाग्गेयकारों की रचनाओं के परिप्रेक्ष्य मे भी लागू होती है, फलत दोनों मे तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से विचार करने पर अन्तर सुस्पष्ट होता चला जाता है। तथापि इस तथ्य से हम कतई इन्कार नहीं कर सकते कि सगीत लक्ष्य जीवन को आनदमय रसाप्लावित कर देना ही है। भले ही उसके रूपों-स्वरूपो मे कालक्रमानुसार (परिवर्तन सापेक्षता वश) साम्य-वैषम्य क्यों ही नहीं हो ?

जहाँ तक प्राचीन रचनाओं मे सागीतिक तत्वों की बात है, हम कह सकते है कि जैसे-जेसे सभ्यता व सस्कृति का विकास होता गया मानव आध्यात्मिकता की ओर बढता गया, त्यों-त्यों सगीत कला मे उत्तरोत्तर बृद्धि होती गयी। इस प्रकार प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक युग तक एक सुदीर्घ परपरा चली आयी है, जिस दौरान अनेक प्रकार के प्रभाव व दुष्प्रभाव भी देखे गये है। उत्थान पतन के विभिन्न सोपानों से भारतीय संगीत कला भी अप्रभावित नहीं रही। इतिहास इस बात का गवाह है कि कलाकारों ने युगों से जो कुछ भी पाया है, उसे अपनी कलाकृति, रचना मे पिरोया है और फिर समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है।

स्थान भेद के कारण भारतीय सगीत रचनाओं मे उत्तरी एव दक्षिणी जैसा विभेद दृष्टिगत होता है, तथापि उसकी मूलभूत एकता सर्वत्र ही विद्यमान है। तात्पर्य यह कि आत्मा वही है, शरीर भले ही पृथक हो। यही बात प्राचीन, मध्य एव आधुनिक वाग्गेयकारों की रचनाओं मे लागू होती है।

प्लेटो का कथन है कि "किसी भी देश की सस्कृति और सभ्यता का अनुमान उस देश की सगीत कला की अवस्था से लगाया जाता है, भारत की सस्कृति और सभ्यता विश्व मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है।" दूसरे शब्दों मे प्रत्येक देश की सगीत पर उस देश की अपनी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और सास्कृतिक गतिविधियों का प्रभाव पडता है।

भारतीय सगीत का विकास भी विभिन्न स्थितियों का सामना करते हुए विकास की चरमसीमा पर पहुँचा।

उद्देश्य की दृष्टि से प्राचीन वाग्गेयकार एव उनकी रचनाओं मे स्पष्ट वर्णित है कि स्वर, जाति, प्रमाणज्ञ, वीणा वादन मे तत्पर रहने वाला और साधनारत व्यक्ति अनायास ही मोक्ष पद प्राप्ति का अधिकारी होता है।[1]

आचार्य शारगदेव की दृष्टि मे 'गीत, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों का वास्तविक एव सटीक माध्यम है। उस 'गीत' की महिमा अद्वितीय है। तात्पर्य यह कि सगीत साधक की रुचि के अनुसार विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति कराने मे सक्षम है। लक्ष्यों की विभिन्नता साधकों के दृष्टि भेद को प्रकट करती है। फलत महत्व की दृष्टि से धर्मार्थी, कर्म की इच्छा करने वाले, अर्थ की अभिलाषा रखने वाले तथा चरम लक्ष्य मोक्ष की अभिलाषा करने वाले सगीत साधक होंगे, उनकी दृष्टि मे भी सगीत का मूल्य

1- महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन उद्धृत सगीत चिन्तामणि 332

तथा उसका स्तर पृथक-पृथक होगा। इस प्रकार उनकी रचनाओं मे भी पारस्परिक भेद हो जायेगा।

प्राचीन वाग्गेयकारों मे विभिन्न ऋषि-मुनि तथा आचार्यो का समूह परिगणित होता है, अत उनकी सागीतिक रचनाओं मे प्राय अथवा अधिकाशत धार्मिक एव मोक्ष की प्राप्ति सम्बन्धी बातें ही मूलत मिलती है। क्योंकि तत्कालीन स्थिति ही उस प्रकार की थी। आध्यात्मिक दृष्टिकोण की ही प्रमुखता थी, फलत सगीत शास्त्र भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। वस्तुत धर्मार्थी व्यक्ति सगीत को पवित्रतम साधन समझते हुए उसकी पवित्रता को ही अक्षुण्ण बनाये रखने की चेष्टा करेगा, जबकि मोक्षार्थी (मुमुक्ष) व्यक्ति सगीत के द्वारा एकाग्रता प्राप्त करते हुए ब्रह्म मे लीन होने का सद् प्रयत्न करेगा। वहीं जहाँ एक ओर कमार्थी व्यक्ति सगीत साधना के माध्यम से अपनी ओर से अपने प्रिय पात्र की कामनाओं को जागृत करने का प्रयत्न करेगा अथवा दूसरे शब्दों मे अर्थ-वेभव विलासिता की कामना अपने गायन के माध्यम से करेगा, वहीं दसरी ओर अर्थार्थी व्यक्ति उसे उसी रूप मे ढालने की चेष्टा करेगा, जिससे उसका मूल्य बाजार मे अधिकाधिक प्राप्त हो सके।

धर्म एव आध्यात्मिकता प्रधान रचनाओं मे सत्वगुण की प्रधानता दृष्टिगत होती है तथा काम एव अर्थप्रधान रचनाओं मे अपेक्षाकृत रजोगुण का बाहुल्य होगा ही। अत स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही वर्गों के उद्देश्य अलग-अलग हैं, फलत इन रचनाओं मे भी भेद दृष्टिगत होता है।

उदाहरण के लिए प्रथम वर्ग नाद को साधन मात्र ही नहीं अपितु साध्य भी मानता है, उसकी दृष्टि मे नाद ही ब्रह्म है, जिसकी उपासना करने से समस्त देवताओं की उपासना-अर्चना हो जाती है। इसके विपरीत द्वितीय वर्ग की दृष्टि मे सगीत क्षणिक

दरअसल द्वितीय कोटि के वाग्गेयकारों की रचनाओं से ज्ञात होता है कि सगीत किसी भी रूप मे बदली जा सकती है, उससे कामनाओं की पूर्ति होती है। सुख-तृप्ति हो जाती है।

प्राचीन कालीन रचनाओं मे हम वाग्गेयकारों के आध्यात्मिक, धार्मिक एव शिखत्व से परिपूरित सागीतिक स्वरूप को पाते है। वैदिक वाङमय मे सर्वत्र आत्मकल्याण के साथ ही दूसरे के कल्याण की भावना निहित है -

आ नो भद्रा कृतव ऽयन्तु ।"

अथवा स्वस्ति न इन्द्र , वृधश्रव ।

स्वस्ति न पूषा विश्वेदेवा

स्वस्ति नस्ताक्षोऽरिष्ट नेमि ,

स्वति न वृहस्पतिर्दधातु ।।'

जगह-जगह पर लौकिक सुख समृद्धि की कामनाओं के साथ ही पारलौकिक परमात्मानदी दृष्टिकोण सर्वत्र झलकता है।

दरअसल प्राचीन वाग्गेयकार अपनी रचनाओं के माध्यम से ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेना चाहते है। यही कारण है कि उन्होंने 'नाद' को ब्रह्म का स्वरूप कहा है, वह शिव की उपासना से स्वय शिवमय हो जाना चाहता है।

आदिकवि बाल्मीकि की 'रामायण महर्षि वदव्यास के 'महाभारत' मे भी संगीत का प्रमुख ध्येय सासारिकता का निर्वहन करते हुए अन्तत स्वर्गिक पद की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष ही रहा है।

विभिन्न पौराणिक रचनाओं मे भी सगीत मे आध्यात्मिकता का पुट ही झलकता है।

हालांकि ऐसा भी नहीं है कि इन रचनाओं मे लौकिकता की लोकरञ्जन की उपेक्षा की गयी हो। लोकरञ्जन के साथ ही साथ दिव्य आनद की सप्राप्ति भी उक्त रचनाओं का उद्देश्य था, ऐसा कह सकते है।

आचार्य भरत से लेकर जयदेव - गीतगोविन्दम् तक जितने भी ज्ञात-अज्ञात वाग्गेयकार एव उनकी रचनाएँ मिलती है, उनसे यही द्योतित होता है कि सगीत का प्रमुख कार्य चित्त को आहलादित कर देना, परमात्मानद की सम्प्राप्ति करा देना ही होता है।

किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है युगीन स्थितियों-परिस्थितियों का असर प्रत्येक वाग्गेयकार एव रचनाकार मे अवश्यमेव पडता है। अत इस दृष्टि से जब हम मध्य एव आधुनिक वाग्गेयकारों की रचनाओ पर दृष्टि डालते है तो यही प्रतीत होता है कि प्राचीन युगीन वाग्गेयकारों की रचनाओं एव तत्युगीन रचनाओं मे अनेक बातों की समानता होते हुए भी पार्थक्य अधिक दृष्टिगत होता है।

इतिहास-ग्रन्थों से ज्ञात होता है, कि उत्तर भारत मे राजनीतिक कारणों से महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ जिसके परिणाम स्वरूप सर्वत्र अराजकता का माहौल व्याप्त होता गया।

अलाउद्दीन खिलजी के काल मे दिल्ली-सल्तनत का ध्यान सगीत की ओर आकृष्ट हुआ।

अमीर खुसरो एव गोपालनायक जैसे मध्ययुगीन वाग्गेयकारों से सम्बद्ध जनश्रुति यही बताती है कि दिल्ली दरबार अपने आतक से भारतीय सगीत को जितना प्रभावित करना चाहता था, दरअसल भारतीय सगीत के तत्वों से सुपरिचित होने के लिए उसका उतना आग्रह नहीं था।[1]

मध्यकाल के आरभ मे उत्तरी तथा दक्षिणी सगीत पद्धतियॉ पृथक होने लगी थीं। 1300 ई0 तक मुस्लिम सत्ता भारत मे काबिज हो गयी थी। फारसी सभ्यता, कला एव सगीत का प्रभाव उत्तरी भारत मे सगीत पर पडा। मध्यकाल से पहले की रचनाओं मे यदि तुलनात्मक दृष्टि से अवलोकन करे तो स्पष्ट होता है कि मध्ययुग के पूर्व तक ग्राम राग व जातियॉ प्रचलित थीं, किन्तु मध्यकाल मे रागगायन का प्रचलन हो गया।

ध्रुवद और ख्याल भी प्रचलन मे आये। आक्रान्ताओं के श्रृगारिक और भोग-विलासपूर्ण वातावरण का समावेश भारतीय सगीत मे होने लगा था, जैसा कि हम मध्ययुगीन वाग्गेयकारों की रचनाओं मे पाते है।

मुस्लिम शास्त्रों द्वारा बडे-बडे प्रलोभन देकर भारतीय विद्वानों से ऐसी रचनाऍ लिखवायी गयीं जिनमे मुस्लिम सस्कृति एव सभ्यता की प्रशस्ति ही भरी पडी थी।

हमारे देश मे सर्वत्र वैमनस्य व वैषम्य फैल गया था, राजपूत एव अन्य क्षेत्रीय शक्तियॉ परस्पर भेदभाव से त्रस्त हो चुकी थीं, धर्मान्तरण की घटनाऍ दबाववश प्रबल हो गयी थीं, फलस्वरूप तत्युगीन सगीत भी पतनोमुखी होता जा रहा था। तत्कालीन रचनाओं मे श्रृगारिक वातावरण एव श्रृंगारिक पदों का समावेश किया जाने लगा। भारतीय सगीत पर भी इसका प्रभाव पडना स्वाभाविक था, जो मध्य आधुनिक युगीन रचनाओं पर स्पष्टत दृष्टिगोचर होता है और इसी से तीनों युगों की सागीतिक रचनाओं मे परस्पर भेद व वैषम्य स्पष्ट हो जाता है।

प्राचीनकालीन रचनाओं की तुलना मे आध्यात्मिकता का स्वरूप मध्ययुगीन रचनाओं मे मलिन सा होने लगा था, जिससे आधुनिक रचनाऍ भी काफी हद तक प्रभावित हुई। अज्ञानतावश भारतीय सगीतज्ञ, वाग्गेयकार भी उक्त स्थिति से बचे न रह सके।

मुस्लिम शासकों का दृष्टिकोण भारतीय साहित्य एव सगीत क प्रति ठीक नहीं था। उनमे घोर पूर्वाग्रह की भावना भरी हुई थी। वे भारतीय सगीत और साहित्य के प्रति सकीर्ण एव निम्न विचार रखते थे।

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि सगीत का जो चरम परम आध्यात्मिक पक्ष था वह तिरोहित होता गया और उसमे श्रगारिक, विलासिता पूर्ण तत्वों का दबदबा कायम हो गया।

मुस्लिम शासन के साथ-साथ भारतवर्ष मे मुसलमान सन्तों का ऐसा वर्ग उदित हुआ, जो 'सूफी' के नाम से जाना जाता है, इन सूफी सन्तों ने धर्म के प्रचार-प्रसार मे काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनकी विचारधाराओं का भारत के दीन-दलित, शोषित हिन्दू समाज मे काफी गहरा प्रभाव पडा था। सूफी संत सगीत के प्रेमी होते थे, किन्तु जैसा कि आचार्य वृहस्पति ने कहा है - "सूफी परपरा मे सगीत ग्राह्य अवश्य था, परन्तु उसकी शैली पर एक विदेशी आवरण छाया हुआ था। इस काल मे भारतीय एव अभारतीय रागों का सकट हुआ और भावी पीढ़ियों के लिए यह प्रवृत्ति एक संक्रामक रोग बन गयी। पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध मे जौनपुर के सुल्तान हुसैनशाह शर्की के दरबार मे यह रोग और उभरा तथा इस रोग का तीसरा आक्रमण अकबरी दरबार के सगीतज्ञों पर हुआ। आचार्य वृहस्पति आगे लिखते है कि प्रयत्न पूर्वक किये गये इन राग सकटो का लक्ष्य अपने अनन्दाताओं को चमत्कृत करके उनसे पुरस्कार और पदवियॉं प्राप्त करना था। यह चमत्कार प्रयत्नजन्य थे। कलाकारों की आत्मा इनमे मुखरित नहीं हुई थी। फलत इनमे से अनेक प्रयत्नपूर्वक पोषित किये जाने पर भी काल-कवलित हो गये। जो कुछ बचे भी है, उनके विषय मे भी निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता है कि उनमे उनका आरंभिक रूप कहा तक अपशिष्ट है।"[1]

राजा मानसिह तोमर के ग्वालियर राज सिहासनारूढ होने के साथ ही अनेक कलाकारों का नवीन मार्ग प्रशस्त हुआ, वे अपने रागों मे देवी-देवताओं की स्तुति कर सकते थे, उनकी स्वर-लहरी मे वीरों की प्रशस्तियाँ अनुगञ्जित होने लगी थी। भारतीय दाम्पत्य जीवन के विभिन्न पक्षों का वर्णन हो सकता था। मानसिह के समय मे गायन-वादन शैली मे भी सगीत के प्राचीन रूप को पुन उभारने का प्रयास किया गया।

लोदियो के काल मे हिन्दू वाग्येयकारों की कोशिश थी कि भारतीय सगीत के प्राचीन सौन्दर्य को विकृत न किया जाय, उसमे धार्मिकता का पुट विद्यमान रहे। दूसरी ओर मुसलमान सगीतज्ञ अरबी सगीत का भारतीय सगीत मे मिश्रण किये जा रहे थे। जैसा कि अनेक मध्ययुगीन वाग्येयकारों की रचनाओं मे पहले देखा जा चुका है। वे भारतीय सगीत पद्धति को अपनी सगीत पद्धति मे ढालने को आतुर थे।

मध्यकाल मे सगीत के क्षेत्र मे खुसरों के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता, जिसने अनेक प्रकारों से भारतीय सगीत को समृद्ध बनाने का सफल प्रयास किया।

मध्ययुगीन रचनाओं मे विशेषकर मुगलो के समकालीन भक्तों, सन्तों ने एक नवीन आध्यात्मिक भक्ति रस की सरिता अवश्य बहानी शुरू कर दी थी, जिसका निदर्शन हम सूर, तुलसी, मीरा, रहीम, रसखान इत्यादि की रचनाओं मे पाते है।

आधुनिक काल के वाग्येयकारों की रचनाओं मे हमें मिश्रित स्वरूप के ही दर्शन मिलते हैं। इस युग मे नवीन रागों व शैलियो का प्रयोग किया गया। ख्याल, ठुमरी, दादरा, कव्वाली, टप्पा आदि के रूप मे सगीत का विकास होता गया। अनुक ध्रुपदों, धमार आदि को भी रचनाओं में स्थान दिया जाता रहा है। घरानों का प्रभाव भी स्पष्टत परिलक्षित होता है और उनके अनुसार अनेक घरानों की परपरा कायम हुई। आज भी ग्वालियर, बनारस, आगरा, किराना जैसे घरानों से सम्बन्धित वाग्गेयकारों

पर पर्या... प्रकाश डाला गया है। भातखण्डे, पलुस्कर इत्यादि वाग्गेयकारों की रचनाओं मे सर्वथा नवीन दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। अनेक दक्षिण भारतीय वाग्गेयकारों ने भी महत्वपूर्ण योगदान किया है। फलत हम कह सकते है कि आधुनिक रचनाओं मे स्वातन्त्र्यतोत्तर युगीन परिवेश का प्रभाव दिखायी देता है। इनमे लौकिकता के साथ ही जहाँ-तहाँ आध्यात्मिकता को भी महत्व दिया गया है। अनेक ईश्वर स्तुति परक रचनाएँ प्रस्तुत की गयी है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन मध्य ए... आधुनिक वाग्गेयकारों की रचनाओ मे अनेकानेक भेद दृष्टिगत होते है, जो समय एव समाजिक परिस्थिति के प्रभाव से अछूते नहीं है। इस सन्दर्भ मे सगीतचिन्तामणि के मूर्धन्य प्रणेता आचार्य वृहस्पति का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कह जा सकता है कि 'लक्ष्य के भेद से (पूर्वोक्त) दोनो वर्गों मे जो स्वाभाविक अतर है' वह स्पष्ट है। इसीलिए इन दो विभिन्न वर्गो से सम्बद्ध सगीतज्ञों की तुलना न तो उचित है और न सभव। हमारा यह तात्पर्य नहीं कि सगीत मे नवीन रागों, तालों, शैलियों की उद्भावना अनुचित या असभव है, परन्तु यह उद्भावना साधक के हृदय मे स्वय होनी चाहिए। यदि ग्राहकों को प्रसन्न करने के लिए प्रयत्न पूर्वक बनाये हुए, भाँति-भाँति के गोरख-धधों को भी सहज उद्भावना की कोटि मे रखा जायेगा तो आदि कवि बाल्मीकि और पद्याकर भट्ट मे कोई अन्तर न रहेगा। सगीत हो, काव्य हो, चित्रकला हो, मूर्तिकला हो या स्थापत्य कला, सभी क्षेत्रों मे यह तथ्य पूर्णतया चरितार्थ होता है।'[1]

1- वही सगीत चिन्तामणि, प्रथम खड 35

5- **ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी तथा टप्पा शैली के वाग्गेयकारों की रचनाओं में शैली के अनुरूप स्वर, शब्द एवं काव्य का प्रयोग -**

भरताचार्य के 'नाट्यशास्त्र मे स्वर सवाद, विवाद-अनुवाद, ग्राम, मूर्च्छना श्रुति स्वर-साधारण तान, मूर्च्छना-तान और जाति का प्रतिपादन हुआ है।[1] वस्तुत स्वर शास्त्र ही सगीत शास्त्र का प्रमुख स्तभ कहा जा सकता है। 'सगीतरत्नाकर के स्वराध्याय' शीर्षक के अन्तर्गत वर्ण, अलकार कूटतान और नष्टोद्दिष्ट-विधि जैसे विषयों का उल्लेख हुआ है।

प्राचीन सगीतज्ञों के अनुसार मूर्च्छना का आरभक स्वर ही वादी अश स्थायी या स्वर होता है आज की भाषा मे वह 'की नोट' होता है और उसका मूल नाम अक्षुण्ण रहता है।

आचार्य मतग ने स्वर-लक्षण के सन्दर्भ मे कहा है कि 'षण्णा स्वराणा जनक षड्भिर्ण जन्यते स्वरे '[2] अर्थात् 'षड्ज' का अर्थ अन्य छ स्वरों से जन्म लेने वाला है।

ध्यातव्य हो कि कोई स्वर 'अश' होने पर आश्रित स्वर-समूह की सहायता से रसव का व्यञ्जक होता है, पर अंश न होने की अवस्था मे वह केवल 'भाव' का बोधक होतो है। जिस रस की अभिव्यक्ति करना हो, उसके विरोधी भाव लोप अथवा अत्यन्त अल्प प्रयोज्य मूर्च्छना के राग में होगा और अनुरोधी या पोषक स्वरों का प्रयोग, स्थायी और उसके सवादी स्वर के अनुवादी स्वरों के रूप मे भलीभाँति होगा।[3]

1- 'नाटयशासत्र' अध्याय 28

2- मतग, कल्लिनाथ द्वारा उद्धृत।

3- संगीत चिन्तामणि - पृ0 107

ध्रुपद ख्याल, ठुमरी तथा टप्पा शैली के वाग्गेयकारों की रचनाओं मे शैली के अनुरूप स्वर, शब्द एव काव्यत्व का प्रयोग कहाँ तक सभव हो सका है, इन सारी बातों का अध्ययन हम उक्त स्वर शब्दादि के सम्बन्ध मे विवेचित तथ्यों के आधार पर कर सकते है।

वाग्गेयकारों के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि 'उत्तम गाना, मध्यम बजाना, अधम नाचना, विकट 'बताना', गायन की श्रेष्ठता उसकी प्रमुखता मे होती है जबकि वादन को गायन का अधीन अनुवर्ती एव सहायक रहना होता है। वादकों द्वारा गाने की 'सगति' की जाती है। अत स्पष्ट है कि प्रमुख गायक के 'गीत' की पूर्ण सगति सहायक गायक अथवा गायिका के द्वारा ही सभव है, और यही बात चाहे ध्रुपद, ख्याल रचनाओं के बारे मे हो, चाहे ठुमरी, टप्पा जैसी नवीन रचनाओं के विषय मे हो शतश लागू होती है।

गायक के प्रकृति ने यदि अच्छा कठ नहीं दिया है तो राग की अन्त्येष्टि हो जायेगी, 'जलो कण्ठ बिन राग' की कहावत चरितार्थ होगी, किन्तु इसके साथ ही यदि कठ है और राग की शिक्षा नहीं मिली है तो भी स्थिति सोचने योग्य होगी।

इसी प्रकार उक्त चारों शैलियों मे स्वर, शब्द, काव्य की अनुरूपता के बारे मे कहा जा सकता है कि यदि 'राग' अमृत है, तो 'ताल' उसके लिए 'कुम्भ' है, क्योंकि अमृत का पात्र उपयुक्त न हो तो वह इधर बिखर जायेगा। उचित रूप मे प्रतिष्ठित, सुरक्षित न रह सकेगा।

वास्तव मे केवल बंदिशे रट लेने से कोई अच्छा गायक नहीं माना जा सकता। श्रेष्ठ गायक का प्रगाढ़ परिचय 'गेयराग' से होना चाहिए चाहे वह ध्रुपद, ख्याल, टप्पा या ठुमरी सम्बन्धी कोई भी गवैया क्यों न हो। इसी तरह 'वर्ण-शब्द' की उपयुक्तता

भी अपरिहार्य है। गायन मे अनुभूति का भी बडा ही महत्व है, इसके लिए गेय के अर्थ को समझना अत्यावश्यक है। 'बंदिश' के साहित्य व काव्य का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान होता है।

अनुरूप शब्दों का सामजस्य भी बहुत जरूरी होता है, लेकिन यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि कोरा शब्दजाल ही न हो उसमे काव्यमयता, सरसता हो तभी वह गायन सहृदय को लुभा सकेगा। उसे आनद रस से सराबोर कर सकेगा। यही कारण है कि सगीत के वाणी पक्ष और गेय पक्ष दोनों का 'वाग्येयकार' कहा जाता है।

कुल मिलाकर वाग्गेयकार मे सत्कवि और श्रेष्ठ सगीतज्ञ के उभय गुणों का सामञ्जस्य होता है। ऐसी ही रचनाएँ सम्मान का पात्र बनाती है।

वस्तुतः वाणी अर्थात् साहित्यिक पक्ष तथा 'गेय' अर्थात् सगीत पक्ष पर जिस व्यक्ति का समान अधिकार हो वह प्रबन्ध रचना के योग्य माना जाता है।[1]

अमीर खुसरो के मृत्यु के समयोपरान्त (1324 ई0) वाचनाचार्य सुधाकलश ने अपने ग्रथ 'सगीतोपनिषद' का समापन किया था।[2]

उनके शब्दों मे 'इस युग मे प्रबन्धों की रचना करने वाले दुर्लभ है और उनके गाने वाले भी दुर्लभ है।' इससे स्पष्ट होता है कि चौदहवीं शती के पूर्वार्द्ध मे प्रबन्ध रचनाओं का प्रायः अभाव था।

सोलहवीं शताब्दी मे 'बॅजू बावरा' का उल्लेख मिलता है, जिनके नाम इधर-उधर सग्रहीत गेय साहित्य बिखरा पड़ा है। 'तानसेन' के बारे मे कहा जा सकता है कि

1- आचार्य वृहस्पति - सगीत चिन्तामणि, पृष्ठ 42

2- 'सगीतोपनिषत्सार' गायकवाड-सीरीज, प्रथम सस्करण, भूमिका, पृ0 8

उन्होने अपनी रचनाओं मे स्वर शब्द एव काव्य तीनों ही पक्षों का भली-भाँति प्रयोग किया है। नायिका-भेद से भी वे सर्वथा परिचित थे और रस एव भावों की महत्ता को भी समझते थे जैसा कि उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है।

तानसेन ने अपने एक ध्रुपद मे अर्थज्ञान-शून्य तथा रस एव भाव की उपेक्षा करने वाले एक व्यक्ति की हँसी उडायी है जिसने गुरूहीन व्यक्तियों की रचनाएँ गायी है - ध्रुपद का एक नमूना दृष्टव्य है -

"जो धुरपद ना सुध अछिरनि जुक्त,
जुक्त न सगीत राग गावे ।
जो अज्ञान गुनियन को पचावे,
भिमते निगुरन कौ कियौ गावे ।
नव रस राग जानै ना,
लोक मध बादि ही कवि कहावे ।
साहि अकबर की सौं, मोय तो दुख,
और हाँसी याही ते आवे,
अरघ पूछे ते नाहीं करि आवे।" [1]

तानसेन ने अपने युग मे अनेक बंदिशें की, जो उनके युग मे तो नवीन थीं, किन्तु 'प्रामाणिक' मानी गयी थीं। उस समय सम्राट के सन्निकट रहने वाले कलाकार 'हुजूरी' कहे जाते थे, जो अपनी शिष्य-प्रशिष्य पखरा कायम रखते थे और अनेक ध्रुपद ख्याल आदि मे रचनाए करते थे और बंदिशों का प्रचार किया करते थे।

1- 'रागमाला' पत्र 53 (अ)।

'सदारग' काव्य और सगीत के प्रसिद्ध महाकवि 'देव' के शिष्य माने गये है। साहित्य और सगीत की दृष्टि से इनकी रचनाएँ श्रेष्ठ थी, इनकी टकसाली और मुहरबन्द रचनाएँ समस्त देश मे ख्याति लब्ध हुई। ये अनुपम वीणावादक, श्रेष्ठ ध्रुपद गायक और ध्रुवपदकार तो थे ही इन्होने हजारों ख्यालों की भी रचना की थी, जिनमे शैली की अनुरूपता सर्वत्र दृष्टिगत होती है।

सदारग के युग तक गायकों के दो वर्ग थे 'कलावन्त' और 'कव्वाल', इनमे कव्वाल वर्ग पुराना ख्याल गायक था, यह 'तान', पलटे, जमजमे और तहरीर को ख्याल गायिकी की जान समझता था। कव्वालो ने सदारग के ख्यालों को 'ख्याल' ही न माना अपितु उन्हे 'मुडा या लगडा' ध्रुवपद भी कहा। बावजूद इसके भी उनके ख्याल बहुचर्चित रहे। उनमे रागों की शुद्धता पर ध्यान दिया गया था। उनकी ख्याल रचनाओं को सीधी पट्ली की श्रेणी मे गिना गया।

नवाब वाजिद अली शाह के समय तक ध्रुवपद ख्याल और रागों की काफी दयनीय स्थिति हो चुकी थी।

छम्मन साहब ने भी विभिन्न रागों के हजारो ध्रुपद गाये थे।

स्व0 अलाउद्दीन खाँ को सैकड़ों होरी-ध्रुवपद याद थे। रचनाओं का यह भडार उनके वादन पर अकुश रखता था। एक व्यवस्था बरकरार थी।

भातखंडे जी रामपुर से सीखते हुए भी ख्याल-प्रेमी थे। वे अपने अनुयायी, अपने गुरू ख्याल गायकों मे राग की शुद्धता की दृष्टि से कुछ कमिया देखते थे।

गोपालगायक का एक ध्रुपद सिद्ध करता है कि उन्होंने सम्राट खिलजी की सेवा मे प्रस्तुत होकर उसके प्रताप का वर्णन किया था।

गोपाल गायक और अमीर खुसरो के पारस्परिक सहयोग से 'चतुर्दण्डी सम्प्रदा की स्थापना हुई थी जिसमे आलाप ठाठ, गीत और प्रबन्ध इन चारों दण्डों के आध पर संगीत का वितान तना हुआ है।

व्रज और हिन्दी के भक्त अमीर खुसरो ने चिरितया परपरा को भी व्रज रग मे रंग दिया। 'ए मा रग है', मोहे अपने ही रग मे रग ले निजाम पिया, जै रचनाओं मे व्रज का रग बोल रहा है तो 'बहुत कठिन है डगर पनघट की।" मे पनघ लीला का प्रभाव है। भरब यार तोरौ बसन्त मनाऊँ, बसन्त पञ्चमी को गाया जात है, छाप-तिलक सब छीनी रे, मोसे नैना मिलाय के।' मे वाह्य आचारों का परित्या है तो 'मैं निजमा से नैना लगाय आई रे' मे प्रेमिका की लगन लगी है। उक्त सभी रचनाअ से यही द्योलित होता है कि अमीरखुसरो ने स्वर, शब्द और काव्य का प्रयोग शैल के अनुरूप ही किया है।

ान सिह तोमर के द्वारा ब्रजभाषा ध्रुपद का आविष्कार सर्वसम्मत है। जिन्होन इस क्षेत्र में क्रान्ति ही मचा दी थी।

उक्त तथ्यो के आधार पर कहा जा सकता है कि सालगसूड प्रबन्धों के अन्तर्गत 'ध्रुव' नामक प्रबन्ध के सोलह भेद अक्षर सख्या, ताल और रस के आधार पर होते थे, जिनमे उद्ग्राह, अतर और आभोग नामक तीन धातु होते थे। कालातर मे अक्षर-सख्या नियम, ताल और रस के विषय मे कामाचार के परिणाम स्ववरूप धातुओं से युक्त गीत भी 'ध्रुव' कहलाने लगे और उनमे प्रयोज्य पद-काव्य को 'ध्रुवपद' कहा गया।

मानसिंह तोमर के युग मे यही रूप प्रचलन मे था, जिसमें क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग किया गया था, ध्रुवपद मे प्रत्येक रस से सम्बन्धित काव्य प्रयुक्त हो सकता था।

'ध्रुवपद' गान का प्रचार मानसिह के पश्चात् उच्च मुस्लिम दरबारो मे भी हुआ, जैसा कि हम स्पष्ट कर चुके है। पुरूष भी ध्रुपद गाते थे और नारियों भी। ध्रुपद गाते समय तदनुकूल नृत्य भी सपादित हुआ करता था।

भातखंडे जी का कहना है कि "वर्तमान समय मे गायक तथा पखावजी की सगीत का ध्रुवद सुनने की बजाय प्राय' उनकी विसगति या प्रतियोगिता का ध्रुवपद ही सुनाई देता है। परिणाम मे 'कौन हारा कौन जीता ' इसकी दिल्लगी उडती है और संगीतानद शून्य हो जाता है। इस प्रकार के गान का आदर यदि श्रोताओं द्वारा न हो तो उचित ही है। × × × × आजकल प्रचार मे दुगुना चौगुना और बोलतान ये प्रकार भी ध्रुवपद मे गाये जाते है।[1]

ध्रुवपद रचनाओं मे शैली के अनुरूप स्वर, शब्द एव काव्यत्व का उदाहरण देखिए -

छत्रपति मान राजा, तुम चिरजीव रहो
जौ लो ध्रुव मेरू तारो।'
चहू देस से मुनीजन आवत, तुम पै
धावत, सब को जग उजारो ।।'

अदारग का ध्रुवपद -

होत मधिम, खरज, पचम, रिसब, धैवत,
गधार, निषाद, मधिम पचम सुर।

वाजिद अली शाह से पूर्व की रचनाओं से ज्ञात होता है कि उस समय (18वीं शताब्दी) लोक मे ख्याल' काफी प्रिय था, क्योंकि तत्कालीन ख्याल गायक शब्दों को समझते, उनका ठीक उच्चारण करते थे तथा उन्हे राग तथा लय से भी सजाते सवाँरते थे।

ठुमरी शैली की रचनाओं के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 'ठुमरी' की भाषा-शब्द उसके विषय, उसकी प्रकृति के अनुकूल उस प्रदेश की लोकभाषाओं से है, जहाँ से ठुमरी का आविर्भाव हुआ है। ठुमरी मे 'स्वर' और 'शब्द' परस्पर पूरक है। इसमे एक ही शब्द को नयी-नयी छवियाँ स्वर देते है।

वास्तव मे ठुमरी का क्षेत्र अपन है, निजी है, अत सभी बातों का समावेश सभव न होते हुए भी ठुमरी शैली की रचनाएँ क्षुद्र नहीं कही जा सकती।

पूर्वार्द्ध आधुनिक काल (1800 से 1900) मे ठुमरी का प्रचलन जोरों पर था घर-घर मे ठुमरी गायन होता था। जिन रागों मे 'टप्पे' होते है उन्हीं रागों मे ठुमरी भी गायी जाती है। ठुमरी मे पजाबी, अद्दा, कव्वाली आदि तालों का प्रयोग होता था। लखनऊ आदि क्षेत्र 'ठुमरी' के लिए प्रसिद्ध थे। 'टप्पा शैली' की रचनाओ मे खमाज, झिझौटी, भैरवी, सिधु जेसी स्वरावलि-रागों का प्रयोग किया जाता रहा है। शोरी मियाँ के गाने का तो ढग ही अनोखा था, जो इस शैली के आविष्कर्ता माने जाते है। इन्होंने शैली के अनुरूप शब्दों का प्रयोग तो किया ही है साथ ही उसमे रसात्मकता भी पर्याप्त है, जिससे काव्यत्व का प्रयोग भी बखूबी झलकता है।

'टप्पा' गायन शैली की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि यह शैली अन्य शैलियों से कहीं पृथक है। इस शैली का गायन सक्षिप्त होता है तथा इसकी प्रकृति चचल हुआ करती है, यही नहीं टप्पा शैली मे गायन हेतु गले को तैयार करना भी आवश्यक होता है।

वाजिदअली शाह ने ख्याल के साथ ही अनेक ठुमरियों की भी रचना की थी। उनकी भैरवी राग की प्रसिद्ध ठुमरी' बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाये।' शैली मे स्वर शब्द की अनुकूलता की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

ध्रुवपद, ख्याल ठुमरी, टप्पा, दादरा, गजल, चैती तथा कजरी, होली इत्यादि सभी शैलियो मे स्वर, भाषा, ताल और मार्ग - इन चार तत्वों की भूमिका विशिष्ट हुआ करती है। 'भाषा' से तात्पर्य शब्द और अर्थ से होता है जिसके अन्तर्गत् विषय भी सन्निहित है, जबकि 'स्वर' का आशय है - रागपक्ष या रागात्मकता। 'ताल' विशिष्ट 'गति' और 'यति' के सयोजन को द्योतित करता है जबकि 'मार्ग' से तात्पर्य है, अन्दाज या चलन। भातखण्डे जी ने 'ठुमरी को एक क्षुद्र गीत ही माना है।" उनके अनुसार उच्चकोटि के गायक 'ठुमरी' गान को निम्नकोटि का 'गान' कहते हैं।[1]

ठुमरी के स्थूलत द्विविध रूप दृष्टिगत होते है। एक तो 'बोल-बॉट की 'ठुमरी' और दूसरी 'बोल बनाव की ठुमरी'। पश्चिम उत्तर प्रदेश रामपुर, बरेली इत्यादि स्थानों मे रची गयी बन्दिश की ठुमरियों मे बोलो का बाट लय मे गुँथा होता है, स्वर पक्ष मे बनाव भी लय की बॉट के अधीन होता है। लखनऊ के कत्थक कलाकार इसी तरह की ठुमरियों मे भाव निर्माण करते थे।

बरेली निवासी तवक्कुल हुसैन खॉ उर्फ 'सनद' पिया ठुमरियों के प्रसिद्ध रचनाकार के रूप मे जाने जाते हैं। वास्तव मे 'सनदपिया' की ठुमरियाँ रागों के चलन के विषय में 'सनद अर्थात् प्रमाण थीं।' स्व0 भातखंडे जी द्वारा 'सनद पिया' की ठुमरियों का उल्लेख किया गया है[2] - राग परज त्रिताल मे -

स्थायी - का करूँ, न माने री, सखी री,

मोर मुकुट वारी ढीठ जगर डगर चलत

धनिया भरत, ठठोरी करत।

1- क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग 4, पृष्ठ 50

2- वही, क्र0पु0मा0, पृ0 42। (भाग 4).

अन्तरा - 'सनद पिया' मोरी मानात नाहीं,

बार-बार मोसे वरजोरी करत।

× × × × × × × × × × × ×

स्थायी - पवन चलत आली कियो चद्र खेल,

वलो मितवा बालम बगवा हम तुम मधवा

पिये, करे रंगरलियॉं।

अन्तरा- पकर बैयॉं, परत पैयॉं, बलि जैयॉं,

सनद पिया तोरी, फुलवारी, चटक

रहीं कलियॉं।"

राग और विषय की दृष्टि से भी ये ठुमरिया महत्वपूर्ण है और सही है। विषय की दृष्टि से सयोग एव वियोग श्रृगार के दोनों पक्षों का समन्वय इन ठुमरियों मे है।

आचार्य वृहस्पति के शब्दो मे "राग विषय ओर लय की दृष्टि से तो ठुमरी मे क्षुद्रता सिद्ध नहीं की जा सकती, तो फिर क्षुद्रता कहॉ है ? नारी सुलभ हेलाओं को मूर्त करने वाला नृत्य 'लास्य' भगवती पार्वती द्वारा आविष्कृत होकर जब क्षुद्र नहीं कहलाया, तब नारी के अन्तर को चित्रित करने वाली वाणी भला क्यों क्षुद्र कहलाने लगी।[1]

अजम, उमर, हररग (मुहम्म अली खॉ ध्रुवपद गायक), दरस, प्रेमदास, हैदर चॉद, आलम, सुघर, अख्तर (वाजिद अली शाह) सबरस, अचपल (तानसेन खॉ के उस्ताद)

1- सगीत चिन्तामणि पृ0 209 (द्वितीय खण्ड)।

आदि वाग्गेयकारों की ठुमरियाँ तो क्रमिक पुस्तकमालिका मे उल्लिखित की ही गयी है। इसके साथ ही अन्य अनेक प्रसिद्ध ठुमरियो को भी उल्लिखित किया गया है। यथा- "पी की बोली न बोल', 'दुखवा मै कासे कहूँ मोरी सजनी", "मीर भरन कैसे जाऊँ", आदि।

भातखडे जी के ध्रुवपद गायक गुरू मुहम्मद अली खॉ ने 'हररग' नाम से अनेक ठुमरियॉ व ध्रुवपद रचे है। उनकी चौतुकी ठुमरी का उदाहरण दृष्टव्य है -

स्थायी - जिन डाटो रग, मानो गिरधारी पोरी बात, जिन डाटो रग मानो गिरधारी, अब सास सुनेगी देगी गारी।"

अन्तरा - गिरि कैलास को बास हम छाड़यो, हम अबला अति भारी भी सी सारी।

संचारी - डमक-डमक डमरू गत बाजत, गत सगीत विचारि ततकारी।

आभोग - 'हर रग' कहा कहूँ अब मै 'तोसों' अनगन दे ऊँ मैं गारी।

उक्त ठुमरी मे खमाज अग का खुलकर प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार एक सुपसिद्ध ठुमरी के गायक भैया गनपतराव के विषय मे श्री दिलीप चन्द्र वेदी का कहना है कि "ठुमरी गाने वालों के सरताज भैया गनपत राव और उनके शार्गि रशीद मौजूद्दीन खॉ साहब ने जब अमृतसर मे आकर गाया, तब हर शख्स झूम उठा।"[1]

स्व0 फैयाज खॉ, और मुश्ताक हुसैन खॉ ने भी ठुमरी गायन को बखूबी पेश किया। इसी प्रकार विन्ददीन, मुश्ताक हुसैन खॉ आदि की ठुमरियॉ भी प्रसिद्ध रही है।

1- उर्दू आजकल, अगस्त 1955, पृ0 36

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि ध्रुवपद, ख्याल, ठुमरी तथा टप्पा शैली के वाग्गेयकारो ने अपनी ररचनाओं मे शैली के अनुरूप स्वरों, शब्दों एव काव्य-तत्व का यथासभव विधान किया है। उनकी रचनाओं का उल्लेख प्रसगता यथा सभव पिछले अध्यायों एव उक्त विवेचन मे भी हम कर चुके है।

इन रचनाओं से यही प्रतीत होता है कि युगानुकूल एव क्षेत्रीयता के कारण इन पर कतिपय प्रभाव का पडना स्वाभाविक ही है।

6- **इन विभिन्न प्रकार की रचनाओं के आधार पर वाग्गेयकारों की रचना-शैली का आलोचनात्मक विवेचन -**

विभिन्न वाग्गेयकारों की विभिनन रचनाओ के अध्ययन से ज्ञात हो जाता है कि प्राय सभी रचनाएँ शैली, कला, कौशल, गेयता इत्यादि की दृष्टि से महत्वपूण एव उपयोगी है।

प्राचीन कालान सागीतिक रचनाओं से पता चलता है कि उस काल मे सगीत कला का सम्बन्ध पूर्णतया धर्म के साथ जुडा हुआ था। इसे वैदिक राजाओं एवं मुस्लिम शासको की राज सभाओ मे प्रकारान्तर से स्थान मिलता रहा है। यहाँ यह बात अलग हे कि भारत की राजनैतिक सीमाओं के परिवर्तन के साथ ही साथ तत्युगीन रचना भी प्रभावित होती रही है क्योंकि वाग्गेयकार पर इसका असर कमोवेश पड़ना स्वाभाविक ही था। उन्हे शासको की, आश्रयदाताओं की रूचि का ख्याल रखना ही पडता था जो सगीत शैली मे भी बदलाव का कारण बनता रहा।

13वीं शताब्दी के पश्चात् इतिहास के पन्नों को पलटने से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण भारतीय सत्ता जब वैदेशिक हाथों मे आ गयी तो तात्कालीन संगीतज्ञों ने अपनी रचनाओं को गोपनीय रखने का प्रयास करना आरभ कर दिया, यहाँ तक कि अपनी विद्या के दान का पात्र वे अन्य लोगों को नहीं समझते थे। यही कारण है कि धीरे-धीरे उसी समय से हम रचनाओं मे अस्पष्टता की झलक पाते है।

वर्तमान शताब्दी मे आग्ल शासन के आगमन के पश्चात् एक सास्कृतिक पुनजीगरण (20वीं शताब्दी) उदित हुआ, फलत संगीत के क्षेत्र मे भी क्रियात्मक पक्ष के साथ ही शास्त्रीय अध्ययनों एव शोधकार्यों का सिलसिला शुरू हो गया, जिसके अन्तर्गत संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण और तुलना के क्षेत्र सामने आये।

इस सन्दर्भ मे कतिपय महत्वपूर्ण प्राचीन मध्य एव आधुनिक वाग्गेयकारों की रचनाओं के आधार पर समीक्षात्मक दृष्टिकोण की चर्चा करेगे। वस्तुत अच्छी आलोचना सदा कला की उन्नति मे योग देती है। आधुनिक युग मे विज्ञान ने जहाँ रेडियो एव सिनेमा, दूरदर्शन आदि के द्वारा सगीत को जन-जन तक सुलभ कर दिया है।

वाग्गेयकारों एव रचनाकारों को इससे आर्थिक लाभ तो हुआ ही है साथ ही उसकी प्रशस्ति एव यश कीर्ति भी प्रसरित होती रही है। दूसरी ओर आलोचना का विषय भी बने है। वास्तव मे किसी भी कलाकार की सुनकर केवल यह कह देना कि वह अच्छा अथवा बुरा है पर्याप्त नहीं होता। आलोचना का ध्येय होता है, अच्छाई एव कमियो को तर्कसम्मत ढग से प्रमाणित करना उसकी सार्थकता प्रतिपादित करना, तभी उसकी आलोचना सार्थक होगी।

आचार्य वृहस्पति के शब्दों मे कोई भी ऐसा कारण उत्पन्न करे, जिससे श्रोताओं की उस मानसिक स्थिति मे व्याघात हो, तो उस कारण की उत्पत्ति दोष है और यदि गायक अपने राग में उन विविधताओं की सृष्टि करता जाय, जिससे श्रोताओं की रागजन्य विशिष्ट मानसिक स्थिति मे प्रगाढ़ता निरन्तर बढती जाय, तो ऐसी विविधताओं की सृष्टि गायक का गुण है।"[1]

आधुनिक रचनाओ के सन्दर्भ मे एक बात कही जा सकती है कि कुछ अपवादों को छोडकर अधिकाश वाग्गेयकारों की रूचि 'वैचित्र्य' की ओर है और जिन हाथो मे आज 'कला' की न जाने कौन सी तुला है, वे भी इस वैचित्र्य के शिकार है।[2]

1- सगीत चितामणि, पृ0 417 (प्र0 खड)

2- तदैव, पृ0 419

जो गायक तानो पलटों अलकारों या लयकारी के फेर मे पडते है, तो वे अपने परिश्रम से श्रोताओं को चक्कर मे भले ही डाल दे, उनको तनमय, (तल्लीन) नहीं कर सकते।

प्राचीन विद्वानों की दृष्टि मे वर्ण विरोधी अलकारों का प्रयोग वर्जित है। यदि कोई अलकार उस 'वर्ण' का विनाशक है, तो वह रागविशेष के द्वारा उत्पन्न मानसिक स्थिति मे विघात उत्पन्न करेगा। किन्तु आज के उस्तादों मे यह कमी पायी जाती है। इससे उनकी लक्ष्यविहीनता प्रकट होती है।

तेरहवीं शताब्दी एव उससे पहले की सागीतिक रचनाओं मे स्वरों के द्वारा भावप्रकाशन की विधि निश्चित ही नहीं, अपितु उनकी स्वर विधि का आधार ही 'गीत' की भावाधारित पद्धति है। आदिकाल से ही सगीत का विकास होता चला आया है, असख्य नवीन-रागो का निर्माण भी होता गया किन्तु संगीतशास्त्र के सभी विचारकों की दृष्टि सगीत के भाव सम्बन्धी पक्ष पर ही रही थी। आज की शैली में रसात्मकता का प्राय अभाव सा परिलक्षित होता है। शुष्कता एव पांडित्यपूर्ण शैली दिखती है।

1400 ई0 तक ऐसे गायक मौजूद थे, जिन्हे सगीत मे भावात्मक एवं रसात्मकता का बोध था, उसका समय ऐसे गायक थे जिन्होंने अलाउद्दीन खिलजी जैसे पाषाणों को भी पिघला दिया था। उस समय के सगीतज्ञों का आधार 'मूर्च्छनापद्धति' थी जिसका सम्बन्ध 'राग' के शरीर को जन्म देने के साथ ही साथ उसकी आत्मा से है।[1]

आज के गायको का मुख्य लक्ष्य सिर्फ 'तैयारी' ही प्रतीत होता है, जिसके द्वारा वे श्रोताओं को या तो चकित कर देना चाहता है या फिर आतंकित। इसके कारण स्पष्ट है कि अधिकाश जनसमाज शास्त्रीय कहे जाने वाले संगीत से दूर भागता है।

इस सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि यदि 'तानसेन' के सगीत का आनद लेने के लिए श्रोता को तानसेन होना पडे तो संगीत-कला 'वर्गविशेष' के लिए उर्द्ध उससे लोकरञ्जन का दृष्टिकाण तिरोहित प्राय हो जायेगा।

वस्तुत संगीत के वास्तविक आनद के लिए तो 'मर्मज्ञता अथवा विद्वत्ता' उतनी अनिवार्य नहीं है किन्तु 'सहृदयता' अत्यावश्यक है।

'मूर्च्छना-पद्धति' के विषय मे तो आज लोग पूर्ण अरुचि प्रदर्शित करते हुए नजर आते है। 'रत्नाकर' जैसी सागीतिक रचनाओं की व्याख्या 'ताँबे से सोना बनाने की भाँति' समझा जाने लगा है। वस्तुत सगीत के भावपक्ष के उद्घाटन हेतु 'मूर्च्छना पद्धति' की रचनाओं का सबोध आवश्यक है।

आचार्य भरत ने कुछ विशिष्ट छद चुने थे, जिन्हे 'गेयपद' के रूप मे जाना जाता है। जयदेव, विद्या पति सूर और तुलसी की 'पद' कहलाने वाली रचनाएँ गेय छदो मे होने के कारण ही 'पद' कहीं जाती है, किन्तु जो छद केवल पाठ हेतु ही प्रयुक्त होते है वे पाठ्य कहे जाते है, जैसे- महाकाव्यों के छद।" वर्तमान युग का वाग्गेयकार छद की गेयता पर, स्वरयोजना की आवश्यकता पर प्राय न के बराबर ही विचार करता है।

इस दृष्टि से हम कह सकते है कि 'जयदेव, विद्यापति और सूर' जैसे मनीषी उत्तम वाग्गेयकार थे जैसा कि उनकी रचना शैली से स्पष्ट हो जाता है।

'अष्टछाप' के पदो मे भाषा व छन्दों का बाहुल्य है, राग और ताल उनके उपकारक है। ध्रुवपद, ख्याल इत्यादि मे राग और ताल की प्रधानता है, भाषा इनकी सहायिका है।

दरबारी जीवन यापन करने वाले गायकों वाग्गेयकारों के लिए पडितों एव कवियों का सम्पर्क सहज व सुलभ था। मुगल-शासन क दौरान जहाँ अच्छे विद्वानों व वाग्गेयकारों को सम्मान मिलता था, वहीं कुछ न्यूनताएँ व सकीर्णताए भी दृष्टिगत होती है। उस युग के गायक वाग्गेयकार, साहित्यिक भाव पक्ष को समझते थे। अक्षरशत्रुता अथवा शब्दार्थभक्षण पश्चात्कालीन अज्ञान का परिणाम है, जिसकी स्थिति आज तक बनी हुई है।

वाग्गेयकार 'प्रबधों' की रचना करता है, वह जिन प्रबन्धो को प्रजीत करता है, उरो गाना गायको का कार्य होता है। इस प्रकार वाग्गेयकारों के गुणों से हीन गायकों के द्वारा की हुई बंदिशें दोषपूर्ण मानी जायेगी। वर्तमान रचना शैली के सन्दर्भ मे यह तथ्य आलोचना का विषय बन जाता है।

'क्रमिक पुस्तक मालिका' मे संगृहीत बंदिशों मे प्राय अनेक दोषों का विवेचन प्राप्त होता है, यथा - शिष्टताहीन उक्ति (ग्राम्योक्ति), अशुद्ध शब्द प्रयोग, अप्रस्तुत वर्णन, गमक और पद जडत्व का होना, प्रबधज्ञान हीनता, रसों के अनुरूप राग-सर्जन के सम्बन्ध मे जानकारी का अभाव, असहृदयता, रीति भग, राग के शुद्ध रूप की भ्रष्टता, असामयिक गान, अश्राव्यता, लक्षण विरोधी 'मातु-(काव्यपक्ष) और धातु (गेयपक्ष) की रचना इत्यादि।[1] उस्तादों, खान्दानी उस्तादों की बंदिशों मे उक्त दोष पर्याप्त मात्रा मे मिलते है।

वस्तुत बंदिशे बनाने की अपेक्षा गायक से नहीं की जाती, वह वाग्गेयकार का ही कार्य हुआ करता है।

1- ग्राम्योक्तिरपशब्द तवप्रस्तुतस्तुति .. यो निन्द्यवाग्गेयकारक - उद्धृत

यह बात अलग है कि वाग्गेयकार अपनी रचना शैली मे कहाँ सफल हो सका है। गायक का कार्य तो उन बंदिशों को सीखना और ढंग से प्रस्तुत कर देना ही है।

सांगीतिक क्षेत्र मे प्रतियोगिता की भावना मतग के पूर्व ज्यादा पायी जाती थी जैसा तत्युगीन रचनाओं से सकेतित होता है। गोपाल नायक एव अमीर खुसरो का साक्षात्कार चौदहवीं शती के शुरू मे हुआ है, जिसका साक्ष्य गोपाल नायक की इस रचना से प्राप्त होता है -

यक दलन रे प्रबल्लनाद, सिघनाद
बल अपबल ववकअर, × × ×
गीत गावत नाइक गोपाल विद्याधर
साहिनिसाह अलावर्दी तपै डिलीनरेस
जाके वसुधा सुक्ति तु अ तक्कधर[1]

जियाउद्दीन वर्दी के अनुसार अलाउद्दीन ने विद्वानों के सम्मान की ओर ध्यान नहीं दिया। गोपाल नायक और अमीर खुसरो के पारस्परिक वाद की बात प्रक्षिप्त प्रतीत होती है, इसमे वास्तविकता नहीं प्रतीत होती है, इसमें वास्तविकता नहीं दृष्टिगत होती क्योंकि अलाउद्दीन मे सभापति होने की योग्यता नहीं थी और न ही उसकी सभा में गोपाल नायक की रचना शैली अथवा कला का मूल्याकन करने वाले सभ्य थे और न गोपाल नायक एव खुसरो की विद्या ही समान थी।[2]

उस युग में 'बादशाह' सगीत सम्मेलनो की आयोजना करते थे, ये लोग उपाधियों के लिए कलाकारों के नाम की सिफारिश किया करते थे। इन लोगों मे सभापति या

1- रागमाला - 86 आ

2- आचार्य वृहस्पति पृ0 438 संगीत चिन्तामणि (1)

तथ्यों के गुण कहा तक है, स्पष्ट है। कलाकारों मे चिन्तन तर्कशीलता-विवेक और सप्रदाय के मर्म का ज्ञान कहाँ तक विद्यमान है, यह स्पष्ट ही है। बंदिशें करने वाले आज भी असख्य है, किन्तु उनमे वाग्गेयकार की योग्यात किस सीमा तक है, कहना मुश्किल है। अगूठाछाप कलाकारों के जन्मजात उस्ताद' पुत्र भी है और शिष्य भी। इन्हे समझाया जाना कठिन है, कुछ देवियां है, जिनके सगीत पर भाग्य बनते-बिगडते है, ये इस युग की पचकन्याये है, इन्हे प्रणाम ही करना चाहिए।" आचार्य वृहस्पति का यह आलोचनात्मक दृष्टिकोण सर्वथा प्रासंगिक ही है।

मध्यकालीन रचनाओं के अवलोकन से पता चलता है कि मुहम्मदशाह रगीले के युग तक गायक लोग शब्द और अर्थ क शत्रु नहीं थे। उस युग तक निरक्षर होना गुणी होने का प्रमाण-पत्र नहीं समझा जाता था। उस युग मे रहीम सेन और तानसेन तृतीय जैसे कलावत कवित्त भी गाते थे। शुजात खाँ एव ख्याल गायक शाह दानियाल भी भक्ति गाते थे।[1]

वाजिदअली शाह के समय मे कलाकारो की अज्ञानतावश प्रभावपूर्ण गायन में कमी आती गयी, कहीं-कहीं किसी सीमा तक ख्याल, ध्रुवद, होली और सरगम रह गया था और उस गाने के कद्रदान भी कम रह गये थे। आचार्य देव से महाकवि व संगीतमर्मज्ञ अवध की दरबार के लिए स्वप्न हो गये थे। ठुमरी, दादरा, नकटा (नुक्ता) का प्रचार हो गया था। रईस लोगों की दृष्टि मे राग खटराग हो गयी थी।

र्हीन तानबाजी निष्प्रयोजन सिद्ध होती है, यही कारण है कि आज गाये जाने वाले निरर्थक ख्यालों से जनता दूर भागती है।

1- मुसलमान और भारतीय सगीत, पृष्ठ 79.

आज ख्याल की जो दुर्दशा हो गयी है, उसका सपूर्ण उत्तरदायित्व कलावतों पर ही होगा। इसी प्रकार बगाल, महाराष्ट्र आदि प्रदेशों के सगीत रसिकों द्वारा ध्रुवपद व ख्याल सीखने मे रुचि दिखायी गयी, तब उन्हे शब्द, अर्थ और उच्चारण से अपरिचित उस्तादो का सानिध्य मिला। उन्होंने अपने अहिन्दी भाषी शब्दों को समझा दिया कि शास्त्रीय गान मे अर्थ विचार करने की जरूरत ही नहीं है। फलत आलोचक तक संदिग्ध विचार वाले हो गये जैसा कि एक महाराष्ट्रीय आलोचक ने लिखा है -

' सगीत के उभरने के साथ शब्दार्थ पीछे छोड दिया जाता है, छोड दिया जाना चाहिए। सगीत को चाहिए कि उसे शब्दार्थ को खा जाय और शब्दार्थ को भी चाहिए कि वह खाया जाय।'[1]

वस्तुत आलोचकों का उक्त दृष्टिकाण सोचनीय है। इसी प्रकार बंदिशों के साहित्य को भ्रष्ट करने का उत्तरदायित्व भी शब्दार्थ की ओर ध्यान न देने वाले उत्तादों पर है, 'क्रमिक पुस्तक मालिका' में सग्रहीत किन्तु अर्थ की दृष्टि से अपूर्व एव भ्रष्ट बंदिशों के प्रचार का उत्तरदायित्व उस परंपरा के नेताओं पर है।

इस सन्दर्भ मे कहा जा सकता है कि आज भी सगीत ससार मे ऐसे व्यक्ति है जो नये मार्ग की खोज करते है, परन्तु अधिकाशत उनमें अध्ययन की कमी ही झलकती है। प्रचलित रागों मे ऐसे लोग मनमाना आचरण करते हैं उनकी बंदिशों की भाषा प्राय अशुद्ध ही होती है। इनके द्वारा आविष्कृत राग वस्तुत बीहड ही होते है। आज भारतीय सगीत को पुन गभीर चिंतन की जरूरत है। एक तत्वज्ञ अथवा विशेषज्ञ आचार्य (वाग्गेयकार) लोगो की बुद्धि के अनुसार विषय की सुबोधता हेतु विभिन्न शैलियों मे विभिन्न शब्दों का आश्रय लेकर उन्हें तत्व का बोध कराता है, परन्तु शैली

की विभिन्नता होन पर भी उसके कथन का तत्व शास्त्र का अविरोधी और शास्त्र द्वारा अभ्यनुज्ञात होता है। जिन भारतीय आचार्यों ने मध्ययुग मे अपने स्वरों के स्थान निश्चित किए, उन्होंने भी स्वरस्थापना का वास्तविक कारण स्वरसवादिता ज्ञान बताया है। तानसेन ने अपने ग्रन्थ 'सगीत सार' मे मूर्च्छना पद्धति को अपनाया है। ग्वालियर परंपरा के कलाकारों द्वारा सात स्वर गुप्त और सात स्वर प्रकट माने जाते थे। अनेक ध्रुवपदों मे कहा गया कि सगीत के तत्व को जिसने जान लिया उसी ने छिपाने का प्रयास किया। ग्वालियर परपरा के विशेषज्ञों ने ईरानी मुकाम पद्धति को भी कण्ठस्थ कर लिया और मूर्च्छना तत्व पर भी उनका अधिकार रहा। फलस्वरूप उनका दृष्टिकोण व्यापक हो गया। जो वाग्गेयकार केवल ईरानी पद्धति जानते थे उनमे उस दृष्टि का अभाव था। विभिन्न प्रकार के ठाठों अथवा मेलों से सम्बद्ध रागों मे विचित्रता एव जटिलसकर ईरानी दृष्टिकोण की देन था।

खुसरो, हुसैनशाह शर्की इत्यादि विचारक इस दिशा मे कार्य कर चुके थे। अकबर के युग में भी यह प्रवृत्ति विद्यमान थी। विभिन्न प्रकृति रागों के ये जटिलसकट लोकप्रिय कभी न हुए, क्योंकि ये मस्तिष्क के खेल थे, इनमे नैसर्गिकता का अभाव था। इस बात की जानकारी मिलती है कि कुशल गायकों का प्रयोग राजनीतिक स्वार्थों के लिए भी किया जाता था। जैसा वि शाहजहाँ ने खुशहाल खॉ और विसराम खॉ को राजनीतिक षडयन्त्र के कारण आनुवंशिक पद से च्युत कर दिया था।

तजोर वासी व्यकटमुखी ने कल्याणी और पतुवाराली जैसे रागों को तुरूष्कप्रिय (मुसलमानों को प्रिय) कहा है और इन्हे गीत व प्रबन्ध के लिए अयोग्य बताया है। उनके सम[illegible] भारत से बहार के लोगों मे प्रचलित रागों का आगमन हो रहा था। उन सबकी व्याप्ति के लिए उन्होंने बहत्तर मेलों की रचना, की जिन्हें बारह ध्वनियों का आधार प्राप्त था। ईरानी सगीत की बारह स्वरों पर आश्रित है। पुडरीक, श्रीकठ, रामामात्य

इन लोगो की पद्धति यद्यपि पूर्णतया अर्वाचीन थी, तथापि इस शैली का बलात् प्राचीन परिभाषाओं के साथ करने का हास्यास्पद प्रयत्न जारी था।

संगीत का स्वर्णिम काल -

व्रजभाषा के समर्थ कवियों में नयिका भेद, ऋतुवर्णन इत्यादि के माध्यम से मुगल सम्राटो पर व्यापक प्रभाव डाला था। मुहम्मदशाह के समय के उत्कृष्ट गायक कवित्तों और सर्वयो के मर्म को समझते थे और भावपूर्ण स्वर मे गाते थे। तत्युगीन वाग्गेयकारो की रचनाओं पर इसका गहरा असर पडा था।

कहा जा सकता है कि उस युग के कलाकार अक्षरशत्र् नहीं थे। अनेक गायिकाओ का सगीत पर इतना अधिकार था कि वे नवीन रागों का आविष्कार करती थीं। इन सभी दृष्टियों की यदि तुलना की जाय तो आजका युग पिछडा ही साबित होता है। स्व0 भातखडे जी का कथन तर्कसगत ही है कि पिछले दो सो वर्षो से हिन्दुस्तानी सगीत' की भवनति हुई है, स्वतत्रता के बाद भी संगीत का प्रचार बढा है, परन्तु उसका स्तर काफी गिरा हुआ है। सोचने योग्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न सागीतिक रचनाओं में, प्राचीन मध्य एव आधुनिक वाग्येयकारों की रचना शैलियों मे पर्याप्त साम्य-वेषम्य दृष्टिगत होता है। निसंदेह यह एक व्यापक विषय है। लेकिन इतना कह सकते है कि महमूद के आक्रमणों के फलस्वरूप उत्तर भारत मे कला के पनपने की स्थिति नहीं थी। सगीत और साहित्य जैसी अन्योन्याश्रित विद्याओं के मर्मज्ञ मुस्लिम प्रभावित क्षेत्रों को छोडकर चले गये। श्रुति-सिद्धान्त, जातिगान, ग्राम राग, नृत्य, रगमंच, प्रबध तथा तालों का वैज्ञानिक प्रयोग इस भाग से लुप्त हो गया। खुसरो के पास भारतीय संगीत के वैज्ञानिक स्वरूप को समझने के साधन न थे। अपनी सास्कृतिक श्रेष्ठता के ख्यापन हेतु तत्कालीन लोगों

ने खुसरो पद्धति को प्रश्रय दिया। हिन्दू वाग्येयकार भी आर्थिक विवशता वश उस शैली को अपनाने को बाध्य हुए परन्तु परपरागत गायन की कुछ रटट भी उनके पास सुरक्षित रही। शास्त्रीय ज्ञान इस वर्ग से लुप्त हो चुका था। खुसरो की शैली लोकप्रियता हासिल न कर सकी।

पन्द्रहवीं शताब्दी एव सोलहवीं शताब्दी के बीच ध्रुवपद शैली का जन्म हुआ जो सरलता एव विषय के कारण लोकप्रिय रही। इससे पहले रस और भाव के स्थान पर रागो के रूप और ध्यान की उद्भावना हो चुकी थी।

अकबर के दरबारर मे ध्रुवपद शैली का जोर-शोर से प्रसार था। इस समय के दरबारी कलावत भी प्राय शास्त्रीय न थे। कालान्तर मे मुहम्मदशाह रगीले द्वारा शर्की की ख्याल शैली का पुनरूत्थान किया गया जबकि अवध के नवाब आसफउद्दौला के समय मे टप्पा शैली अस्तित्व मे आयी। वाजिद अली शाह के समय मे ठुमरी, दादरा और गजल नामक रचना शैलियों की कद्र की गयी थी।

इस सन्दर्भ मे हम आचार्य वृहस्पति के विचारों को साभार प्रस्तुत कर सकते है, तदनुसार[1] सैकडा वर्षो से सगीत कला जनता की सहचरी न रहकर व्यक्तियों के हाथ की कठपुतली हो गयी। जहाँ राज सभी का इसे आश्रय मिला, वहाँ वह स्वय भी सामतो और नरेशो के भ्रू-विलास पर नाचने वाली हो गयी। उन्होंने जो कुछ भी अच्छा युग परिवर्तन इसमे किया, उनके आश्रित कलाकारो ने उसकी दाद दी। × × × × सामने प्रशसाओ के पुल बाँधे गये है और पीछे खिल्ली उडायी गयी है। गुणियों ने आश्रयदाता नरेशो की जिन सूझो को आजीविका के लिए अपने अभ्यास में स्थान दिया वे उनकी

1- सगीत चिन्तामणि, पृ0 405 (प्रथम खण्ड)

सतति के गले का हार बन गयी और उनसे पीछा छुडाना कठिन हो गया।

आधुनिक युग मे अनेक सागीतिक रचनाएँ की तो गयी है किन्तु उनमे प्रचीन आदर्शों का प्राय अभाव ही दृष्टिगत होता है। हलांकि कतिपय नवीन रागो, तालों और वाद्यो की सृष्टि हुई है, तथा अलकारप्रियता बढी है, परन्तु सगीत का वास्तविक लक्ष्य तो लुप्तप्राय ही हो गया है। गीत वाद्य और नृत्य सभी पक्षों मे भावशून्यता सी दृष्टिगत होती है, श्रुतियाँ ओर तदाधारित ग्राम चर्चा का विषय रह गये है। प्रबन्ध रचना का कार्य निरक्षर वाग्गेयकारों के हाथ मे रहने के कारण सामतयुगीन प्रबध प्रबन्धत्व से शून्य है, गति विराम और पद्यत्व के प्राय वे शत्रु है। समालोचकों और शास्त्रज्ञों के लिए सगीत सुनने, आनद लेने, समझने और आलोचना करने की वस्तु है, परन्तु जन साधारण के लिए केवल सुनने और आनद लेने की वस्तु ही है।

आज आवश्यकता है गभीरतापूर्वक विचार करने की ताकि शास्त्रीय सगीत पुन जीवन्त हो सके।

सप्तम अध्याय

सप्तम अध्याय

। शोध कार्य का निष्कर्ष एव उपलब्धि :-

भारतवर्ष सदा से ही अपने सास्कृतिक वैशिष्ट्य के लिये विश्वविख्यात रहा है प्राचीनतम् इतिहास भी हमारी विभिन्न कलाओ के मम्मान का गुणगान करता है। हमारे यहा सगीत सदैव से ही धर्म से अनुप्राणित रही है सभ्यता के आरम्भ मे वैदिक सगीत की जा अनेक मुखी लोक धाराये प्रचलित थीं, उन्हे सबसे पहले भरतमुनि ने शास्त्रीय दृष्टि से सुसगठित किया और सगीत शास्त्र की स्थापना का स्तुत्य कार्य किया। तदुपरात अनेक स्वनाम धन्य आचार्यों ने सगीत कला का व्याख्यान किया। वास्तव में सगीत का प्रभाव क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, जो सार्वभौमिक और सार्वजनीन भी है।

भारत वर्ष मे सगीत को वैज्ञानिक रूप मे नियोजित किया गया और सगीत के शास्त्रीय पक्ष का विधान किया गया। शनै शनै सगीत मे अनेकानेक नवीन आयाम जुडते गये, आचार्यों द्वारा समस्त सागीतिक शास्त्र की निधि को द्विगुणित किया जाता रहा। चूकि सगीत सभ्यता और सस्कृति के साथ सम्बद्ध रहा है, फलत· समय समय पर अनेक प्रकार के सास्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक और धार्मिक प्रभाव भी इस पर पडते रहे ह।

भारतीय सगीत अत्यन्त प्राचीन है जिसका ज्ञान हमे वैदिक एव पौराणिक ग्रन्थों से होता है। वैसे तो भारत के सास्कृतिक इतिहास की दृष्टि से वैदिक युग ही प्राचीनतम युग है किन्तु ईसा के बीस - पच्चीस हजार वर्ष पूर्व सृष्टि का विकास हो चुका था। जैसा कि उत्खनन से प्राप्त प्राचीन मूर्तियों व शिला लेखो की प्राप्ति

से स्पष्ट हो जाता है, उक्त साक्ष्यो से भारतीय सगीत का प्रार्दुभाव सृष्टि के अर्विभाव के साथ ही हो चुका था। इन तथ्यो से सिद्ध होता है कि भारतीय सगीत विश्व का प्रथम सगीत है, जिससे प्रेरणा लेकर अन्य देशो का सगीत विकसित हुआ।

भारतीय मनीषियो की दृष्टि में प्रत्येक विद्या का ध्येय श्रेय के साथ प्रेम भी रहा है। पुरूषार्थ चतुष्ट्य धर्म, अर्थ, काम, व मोक्ष की प्राप्ति हेतु समस्त विद्याये साधन स्वरूप थीं। वात्स्यायन ने कामशास्त्र को भी चरम परम लक्ष्य की पूर्ति का साधन माना है।

सगीत हमारे देश मे यज्ञो का एक अनिवार्य अग था। हमारे ब्रह्मा गाते हैं, विष्णु मृदग बजाते हैं और शकर डमरू बजाते, नाचते गुनगुनाते हैं। सरस्वती जहा एक ओर वीणावादिनी हैं वहीं पार्वती नृत्य विशारदा हैं। नाद के द्विविध रूपो साहित्य एव सगीत का लक्षण माना जाता रहा है। साहित्य एव सगीत कला से रहित व्यक्ति को पशुवत माना गया है -

साहित्य सगीत कला विहीन

साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीन [1]

भारतीय मनीषियो, ऋषियो ने सृष्टि का प्रादुर्भाव नाद ब्रहम से माना है, जो ऊकार वाचक है और इसी से सगीतोत्पत्ति भी हुई।

भारतीय सगीत के अन्तर्गत गायन वादन एव नृत्य तीनो का समावेश होता है - सगीत वाद्यं तथा नृत्यं त्रय सगीतमुच्यते'[2]

---

1. आचार्य भतृहरि।
2. सगीत रत्नाकर

इसमें गायन सर्वोपरि है, स्वर ताल शुद्ध उच्चारण और हाव भाव शुद्ध मुद्रा के साथ गाया जाने वाला ही वास्तविक संगीत है- सम्यक् प्रकारेण यद्गीयते सत्संगीत्।" जो संगीत वेदो में मार्गण अथवा अन्वेषण का परिणाम है उसे मार्ग कहा गया है यह मार्ग संगीत शाश्वत नियमों से बद्ध एवं अपरिर्वतनीय है। इसका लक्ष्य मात्र मनोरंजन ही नहीं अपितु मोक्ष की प्राप्ति है। लोक रूचि के अनुसार परिवर्तित होने वाला संगीत देशी कहा जाता है। एक वह जिसका प्रयोग धार्मिक समारोहों पर पारमार्थिक दृष्टि से किया जाता रहा और दूसरा वह जिसका प्रयोग लौकिक समारोहों पर केवल मनोरंजन की दृष्टि से किया जाता रहा है। वैदिक काल में दोनों धारायें समानान्तर रूप मे उपलब्ध होती है। मध्यकालीन परिभाषा के अनुसार एक मार्गी रहा तो दूसरा देशी। प्रथम को 'सामगान' कहा गया तो दूसरे को गान्धर्व की संज्ञा दी गयी है। यही गान्धर्व संगीत रामायण तथा महाभारत काल तक मार्ग का स्वरूप लेता है।

शास्त्रकारों द्वारा कला एवं उससे उद्भूत होने वाले आनंद ने कार्यकारण सम्बन्ध ढूॅंढने का प्रयत्न किया गया है। इस दृष्टि से उन्हे आनंदप्रदायी नियमों का अन्वेषक कहा जा सकता है, सृष्टा नहीं। तात्पर्य यह है कि शास्त्र सम्पूर्ण संगीत के नियामक नहीं माने जा सकते। वस्तुत नादसौन्दर्य जनित आनन्द अनंत है, और उसकी अभिव्यक्ति के साधन भी अनंत हैं।[1]

इस प्रकार शास्त्रकारों ने जो निरन्तर चिन्तन व अनुसंधान किया, उसके फलस्वरूप विभिन्न नियमोपनियमों व सिद्धातों की भी सृष्टि होती रही लेकिन यह सीमा बद्ध नहीं है, यह तो नवीन चिन्तन की ओर ले जाने हेतु एक प्रेरणा प्रदायक दीपक ही है ताकि सर्वथा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभाए अग्रसर हो सकें। "क्षणे-क्षणे

---

1. आचार्य बृहस्पति - संगीत चिन्तामणि पृ0 386

यन्नवता मुपैति तदेव रूप रमणीयताया. इसी लिये तो कहा गया है। अत स्पष्ट है कि पूर्वजों के ज्ञान भडार का ज्ञान प्राप्त करते हुए उसे और अधिक बढ़ाने का प्रयास करते रहना चाहिए। इस दृष्टि से मार्ग और प्राचीन देशी सगीत के स्वरूप और प्रकारो का जानने का प्रयत्न होना ही चहिए। इसका आशय यह हुआ कि सगीत मात्र मनोरजन एव अर्थोपार्जन के ध्येय तक ही सीमित होना चाहिए।

सगीत, सभ्यता और सस्कृति परस्पर सहसम्बद्ध रहे हैं, अत. स्वाभाविक ही है कि सास्कृतिक, सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक प्रभाव सगीत विद्या पर पड़ते रहे है। अपनी भौगोलिक सीमाओं के कारण भारतवष अन्य देशो से अलग प्रतीत होता है। उत्तर में हिमालय दक्षिण में हिन्दमहासागर, पूर्व में जटिल पर्वत श्रेणिया त पश्चिम में पर्वतीय दर्रों की स्थिति में भारत मे विदेशियों का आना जाना प्राय हाता ही रहा है। फलस्वरूप उभय पक्षीय प्रभाव सास्कृतिक, कलात्मक दृष्टि से न्यूनाधिक रूपेण आवश्य पड़ता रहा। यही कारण है कि उत्तरी भारत के क्षेत्रो मे ईरानी सगीत की छाप दृष्टिगत हो जाती है।

इसी प्रकार प्राकृतिक प्रथकत्व के कारण उत्तर पृथकता के दर्शन होते हैं। आर्यों, मुस्लिमों एवं अन्य लोगों के सक्रमण के कारण उत्तर भारतीय सगीत पर भी असर पडा फिर भी यह कहने मे कोई संदेह नहीं कि भारतीय कला, संस्कृति व सगीत ने अपने मूलानद स्वरूप को कदापि विलुप्त नहीं होने दिया।

दक्षिण भारत का संगीत मुख्य रूप से कर्नाटकी सगीत के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। दक्षिण भारत वैदेशिक सत्ता से आक्रात नहीं हुआ, यही कारण है उत्तर भारत की तुलना में वहां का सगीत वैदिक कालीन सगीत की भाँति मौलिकता लिये हुए आज दृष्टिगत होता है।

विदेशी शासकों के हाथों सत्ता की बागडोर आ जाने पर भारतीय सगीत के रूप में विकृति उत्पन्न होने लगी, जैसा कि पिछले आध्यायों में प्रसगत सुस्पष्ट किया गया है। सल्तनत काल से लेकर मुगलों के काल तक सगीत मे निरंतर परिवर्तन, नवीनता, सम्मिश्रण के तत्व सम्मिलित होते गये। वस्तुत हजार वर्ष पूर्व वैदेशिक कलाओ का जो रूप भारत वर्ष मे आया, उसे राज्याश्रय प्रदान किया गया और उनके विशेषज्ञ सम्मिलित किये गये इस सम्बन्ध आचार्य बृहस्पति महोदय का कथन समीचीन है कि " लोकरूचि के अनुसार कलाओ मे स्वाभाविक विकास उसकी प्रगति कहलाता है, परन्तु पिछले एक सहस्त्र वर्षों मे भारतीय कलाओ विशेषतया सगीत के साथ जो कुछ हुआ, उसका कारण, लोकरूचि नही, अपितु आक्राता जाति का आग्रह मात्र था।[1] वर्तमान समय मे अनुसधान किये जा रहे हैं और प्राचीन सागीतिक तत्वो के स्वरूप एव विवेचन की महती आवश्यकता भी है, ताकि हमारी सास्कृतिक विरासत, पूर्वजों की आस्था, सहित्य, सगीत, कलाए सुरक्षित रह सकें और जीवन के चरम परम लक्ष्य की प्राप्ति सभव हो सके ऐसा हमारा विचार है।

वाद्य यत्रो का सगीत में महत्व निरपद है। तत एव सुषिर वाद्यों में गीत की उत्पत्ति होती है, अवनद्ध वाद्य उसका उपरजन करते हैं और धन वाद्यों का कार्य गीत को लयानुरूप नापना अथवा नियंत्रित करना होता है। स्पष्ट है कि वाद्य के चारो प्रकारगीत के उपकारक तत्व के रूप मे सगीत की श्री वृद्धि करते हैं। वाद्यो का प्रयोजन गीत का अनुकरण और वादक मुख्य कर्तव्य गायक के दोष को छिपाना बताया गया है। वह पूर्णत संगति देकर गीत के प्रभाव को बढ़ा देता है। इसके साथ ही वाद्य का स्वतंत्र प्रयोग भी संभव है, किन्तु यह स्वतंत्र वादन शुष्क वादन

---

1. सगीत चिन्तामणि प्र0 ख0 387

की कोटि मे आता है, जिसे सागीतिक भाषा मे विद्वानों ने 'गोष्ठी' की सज्ञा दी है। वाद्यों के निर्माण तथा वादन कला के सन्दर्भ मे शारगदेव ने विस्तार के साथ चर्चा की है।

सगीत मे सरसता प्राणभूत तत्व कही जा सकती है। काव्य की ही भाँति सगीत का प्रयोजन इस परिपाक रहा है। प्राचीन सगीताचायी से लेकर शारंगदेव पर्यन्त सभी सगीतज्ञों ने इस तथ्य की पुष्टि की है। भरतादि सभी सगीताचार्यों ने अपनी जातियों और रागों मे उससे सम्बन्धित रस का वर्णन करते हुए अशस्वर को मुख्यत स का अभिव्यजक प्रतिपादित किया है। नि सदेह गहन अनुसधान के अनन्तर भारतीय सगीत विद एव कलाममर्ज्ञो ने यह निर्धारित किया है कि रसाभिव्यना के लिये किस स्वर का प्रयोग आधारित स्वर के रूप मे होना चाहिए। इसकी महत्ता एव भारतीय सगीत मे उसकी अनिवार्यता जैसे विषयों पर पूर्व अध्यायों मे चर्चा की जा चुकी है। प्रस्तुत शोध प्रबध मे निम्नानुसार विषयवस्तु का विवेचन किया गया है।

प्रथम अध्याय मे -

सगीत की महत्ता, परिभाषा, उत्पत्ति, महत्व, सगीत एव सस्कृति, प्रतिपादित विषय का उद्देश्य का विवेचन है।

द्वितीय अध्याय मे -

शास्त्रीय सगीत, उसके विविध तत्व, शास्त्रीय सगीत की महत्ता, शास्त्रीय सगीत एवं प्रायोगिक सगीत का सबध, संगीत एव शास्त्रीय सगीत मे परस्पर भेद का वर्णन है।

तृतीय अध्याय मे -

शास्त्रीय सगीत के वाग्गेयकार, वाग्गेयकार की परिभाषा, वाग्गेयकार के गुण, सगीत मे स्वर और शब्द का सम्बन्ध, सगीत मे काव्य का स्थान, वाग्गेयकारों की रचना का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय मे -

वाग्गेयकारों की जीवनी, ध्रुवपद शैली के वाग्गेयकार, ख्याल शैली के वाग्गेयकार, ठुमरी शैली के वाग्गेयकार, टप्पा शैली के वाग्गेयकारों का परिचात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय मे -

वाग्गेयकारों की ध्रुवपद, ख्याल, ठुमरी एव टप्पा शैली की रचनाओं का परिचय उपलब्धता के आधार पर दिया गया है।

षष्ठ अध्याय में -

प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक वाग्गेयकार तथा उनकी रचनाएँ, प्राचीन मध्य और आधुनिक वाग्गेयकारों की तुलना, विविध शैलियों के वाग्गेयकारों की रचनाओं मे शैली के अनुरूप स्वर, शब्द तथा काव्य का प्रयोग तथा विभिन्न प्रकार की रचनाओं के आधार पर वाग्गेयकारों की रचना शैली का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत है।

सप्तम अध्याय मे -

उपसहार, शोधकार्य का निष्कर्ष एव उपलब्धि एव सहायक ग्रंथ सूची दी गई है।

इस प्रकार उक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि भारतीय सगीत का इतिहास अत्यन्त ही प्राचीन रहा है, जो उत्कर्ष उत्तरोत्तर शिखर को छूता हुआ, कालातरीय झझावाटो को झेलता हुआ, भी किसी न किसी रूप में अद्यावधि भी भारतीय जनमानस में विद्यमान है।

2. **सदर्भ ग्रंथ सूची**

1. भाव रगलहरी प्रथम भाग - रचयिता - गायन-वादनाचार्य प0 बलवत राय गुलाबराय भट्ट (भावरग) प्राध्यापक श्री कला सगीत भारतीय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रकाशक (रचयिता) वितरण - मोती लाल बनारसी दास - नेपाली खपरा, वाराणसी। (1964 ई0)

2. नाद-रूप - श्री कला सगीत भारतीय का0वि0वि0 प्रथम दशकपूर्ति समारोह परिशिष्ट (1950-51 - 1960-61)

3. अभिनव गीताजलि (5 भाग) प0 रामाश्रय झा (रामरग) प्रकाशक- संगीत सदन प्रकाशन - 134, साउथ मलाका, इलाहाबाद -1

4. सगीत कला बिहार - अखिल भारतीय गार्धव महाविद्यालय मण्डल मुबई, प्रकाशन - जनवरी (1999)

5. राग विहार - तृतीय भाग - लेखक - पं0 विनायक नारायण पटवर्धन , प्रका0 सगीत गौरव गथमाला, पुणे - 1954 ई0

6. सक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर - सपादक - रामचद्र वर्मा।

7. सगीत बोध - म0प्र0 हिन्दी ग्रथ अकादमी, भोपाल।

9. भक्ति का विकास - मुशी राम शर्मा ।

10. गीता

11. भारतीय सगीत शास्त्र - तुलसीदास देवागन म0प्र0 हिन्दी ग्रथ अकादमी, भोपाल।

12. ध्वनि और सगीत

13 भारतीय सगीत वाद्य।

14. नाट्यशास्त्र - आचार्य भरत।

15. प्रणव भारती - ओंकार नाथ ठाकुर।

16. सगीत का वृहद इतिहास।

17. वैदिक वागमय - बलदेव उपाध्याय ।

18. वेद का स्वरूप और प्रामाण्य।

19. रामायण मीमासा ।

20. भरत भाष्यम् ।

21. वैदिक सगीत - ढठिराज बापट शास्त्री ।

22. पद्म पुराण ।

23. स्कंद पुराण - काशीखण्ड।

24. बाल्मीकि रामायण ।

25. महाभारत आदिपर्व।